राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

तीर्थ चिन्तन में देवत्व की भावना : तीर्थों का दैवीकरण

❑ प्रोफेसर श्यामधर सिंह

प्रस्तुत शोध पत्र में 'तीर्थचिन्तन में देवत्व की भावना : तीर्थों का दैवीकरण' विषय पर धर्मशास्त्रीय पद्धति से विचार-विमर्श किया गया है। भारतवर्ष में पवित्र तीर्थस्थानों ने अति महत्वपूर्ण योगदान किया है। विशाल एवं लम्बी नदियाँ पर्वत एवं वन सदैव पुण्यप्रद एवं दिव्यस्थल कहे गये हैं। प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में तीर्थ एवं तीर्थयात्राओं से समाज एवं स्वयं तीर्थयात्रियों को बहुत लाभ होते थे। यद्यपि भारतवर्ष कई राज्यों में विभाजित था और लोग भाँति-भाँति के सम्प्रदायों एवं उपसम्प्रदायों के अनुयायी थे, किन्तु तीर्थयात्राओं ने भारतीय संस्कृति एवं देश की महत्वपूर्ण मौलिक एकता की भावना को सम्बर्द्धित किया। पवित्र अथवा तीर्थस्थलों पर देवों का निवास रहता है। अतः इस भावना से उत्पन्न स्पष्ट लाभ एवं विश्वास के कारण प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने तीर्थों की यात्राओं पर बल दिया। आज भी भारत के तीर्थ अपनी पावनता का परिचय दे रहे हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर आज भी भारत के मानव लक्षावधि संख्या में नित्य तीर्थयात्रा के लिए जाते हैं। 'तरति अनेन इति तीर्थम्' अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्य इस अपार संसार से तर जाय, उसी को तीर्थ की संज्ञा हमारे धर्माचार्यों ने दी है। वे तीर्थ अलौकिक हैं, स्वर्ग के सोपान हैं और भगवान् की विविध लीलाओं के स्मारक होने से भगवनमय हैं। वे तीर्थ दर्शन, सेवन, मज्जन, स्मरण एवं अभिगमन मात्र से चित्त-शुद्धि करने वाले हैं। इसका मुख्य कारण है भारतीय महर्षियों की तपस्या। उन्होंने अपनी तपःशक्ति द्वारा भारत वसुन्धरा के रजःकणों में ऐसे पावन तत्वों को सन्निविष्ट कर दिया है कि उस रज को मस्तक पर धारण करने मात्र से सम्पूर्ण पाप-ताप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे भगवान् भास्कर के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। कथ्य है कि तीर्थ एवं तीर्थयात्रा भारतीय शोध अध्येताओं के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण विषय है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से तो इस विषय पर शोध करने की महती आवश्यकता है।

आरम्भ से ही हिन्दू संस्कृति तीर्थ प्रधान-संस्कृति रही है। तीर्थों का इतिहास वस्तुतः भारतीय जीवन का इतिहास है जिससे हम अपने अतीत की गौरवमयी गाथा और नियामक सूत्रों का निर्देश और सन्देश प्राप्त करते हैं। तीर्थ एक ऐसा व्यापक शब्द है जो सामने आते ही हिन्दू जाति या समाज का इतिहास और उसके जीवन की भूमिका प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। इससे हिन्दुओं को प्रेरणा और प्रकाश उपलब्ध होता है। तीर्थ मोक्ष प्राप्ति और प्रगति में सहायक होता है। तीर्थों को लेकर भारतवासी सारे देश में घूमते रहते थे। भारत देश की इस विशिष्टता पर जितना गर्व उत्तरवासी भारतीयों का था उतना ही गौरव और अभिमान दक्षिण वाले भी रखते थे। उत्तरभारत में विरचित विष्णुपुराण में एक श्लोक आता है :

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूले भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।
(विष्णु पुराण २:३:२४)

अर्थात् देवगण भी गान करते हैं कि भारतभूमि में जन्म लेने वाले धन्य हैं। स्वर्ग और उपवर्ग-कल्प इस देश में देवता भी देवत्व को छोड़कर मनुष्य योनि में जन्म लेना चाहते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में भी यही भाव और भी अधिक विलक्षण रूप में दुहराया गया है :

अहो अमीषां किमकारिशोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयंहरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्द सेवौपयिकं स्पृहा हिनः।।
(श्रीमद्भागवत् ५:१९:२१)

देवता भारतीय मनुष्यों के सौभाग्य पर ईर्ष्या करते हुए कहते हैं, अहा! इन लोगों ने न जाने कौन-से ऐसे शुभ कर्म किये थे जिनके फलस्वरूप इन्हें भारतभूमि के प्रांगण में मानव-जन्म सुलभ हुआ है। लगता है, भगवान् स्वयं इन पर प्रसन्न हो गये थे। भगवान् की सेवा के योग्य ऐसा जन्म पाने की इच्छा तो हमारी भी होती है।

कहने का अर्थ यह है कि तीर्थ वस्तुतः संकुचित नहीं, अपितु विशद, महान् और उदात्त भावना से प्रकाशमान होता है। संसार में जितने भी धर्म हैं, उनमें तीर्थ का अपना महत्व और स्वत्व तो है ही, किन्तु हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति में तीर्थ की अपनी विशेष महत्ता और सत्ता रही है।

सभी धर्मों में कुछ विशिष्ट स्थलों की पवित्रता पर बल दिया गया है और वहाँ जाने के लिए धार्मिक व्यवस्था बतलायी गयी है या उनकी तीर्थयात्रा करने के विषय में प्रशंसा के वचन कहे गये हैं। हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू धर्म में तीर्थ एवं तीर्थयात्रा की प्रधानता है। प्रत्येक हिन्दू का विश्वास है कि भगवत् प्राप्ति के मार्ग में तीर्थ बहुत बड़े सहायक हैं। तीर्थ स्वयं ही देवता हैं। गंगादि दिव्य नदियाँ साक्षात् देवता होने के साथ-साथ भगवान् से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध हैं। अस्तु

❑ सेवानिवृत्त प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

तीर्थों का महत्व अनन्त है।

इस्लाम धर्म में हर मुसलमान के लिए पाँच धार्मिक कृत्य निर्धारित किये गये हैं। ये कृत्य हैं : कलमा पढ़ना, नमाज पढ़ना, रोज़ा रखना, जकात और हज अर्थात् तीर्थों में जाना। पहले ये तीर्थ केवल मक्का और मदीना में थे। अब सन्तों की समाधियों को भी मुसलमान तीर्थ मानते हैं। इसी तरह बौद्धों के चार तीर्थ-स्थल हैं; लुम्बिनी (रुम्मिनदेई), बोधगया, सारनाथ एवं कुशीनारा, जो क्रम से भगवाकन् बुद्ध के जन्म स्थान, सम्बोधि स्थल (जहाँ उन्हें सम्बोधि का ज्ञान प्राप्त हुआ था), धर्मचक्र-प्रवर्तन स्थल (जहाँ उन्होंने पहला धार्मिक उपदेश दिया था) एवं निर्वाण स्थल (जहाँ उनकी मृत्यु हुई थी) के नाम से प्रसिद्ध हैं (देखिए महापरिनिब्बानसुत्त)। ईसाइयों के लिए जेरुसलम सर्वोच्च पवित्र स्थल है, जहाँ ऐतिहासिक कालों में बड़ी-से-बड़ी सैनिक तीर्थयात्राएँ की गयी थीं।

भारत वर्ष में पवित्र स्थलों ने तीर्थों के सन्दर्भ में अति महत्वपूर्ण योगदान किया है। विशाल एवं लम्बी नदियाँ, पर्वत एवं वन सदैव पवित्र स्थल, तप स्थल, शक्ति स्थल, दिव्य स्थल एवं अलौकिक स्थल कहे गये हैं। ये अलौकिक स्थल ही तीर्थ स्थलों को प्रतिबिम्बित करते हैं। ऐसे तीर्थस्थलों की यात्रा महान् अभ्युदय कराने वाली होती है। अस्तु संसार बन्धन से मुक्ति पाने के लिए, भगवत्प्राप्ति के लिए तीर्थाटन करना आवश्यक है। पद्मपुराण, पातालखण्ड में कहा गया है कि :

तीर्थेषु लभ्यते साधू रामचन्द्रपरायणः।
यद्दर्शनं नृणां पापराशिदाहा शुशुक्षणिः।।
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, १६:१०-१२;१४-१७)

अर्थात् तीर्थदर्शन मनुष्यों की पाप-राशि जला डालने के लिए अग्नि का काम करता है। शास्त्रों में बार-बार कहा गया है कि :

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्।
न तेन किंचिदप्राप्तं तीर्थानिगमनाद् भवेत्।।

अर्थात् जो काम, क्रोध और लोभ को जीतकर तीर्थ में प्रवेश करता है, उसे तीर्थयात्रा से कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती। यह भी कहा गया है कि :

तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये।
सर्वद्वन्द्वसहा धीरास्ते नराःस्वर्गगामिनः।।

अर्थात् जो यथोक्ति विधि से तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वों का सहन करने वाले वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं। इस प्रकार भारतीयों का जीवन प्राचीन काल से तीर्थगत उत्कण्ठा से अनुप्राणित रहा है जिसमें नैतिक आदर्शों, मूल्यों, आचारगत अभिव्यक्तियों तथा जगन्नियन्ता के प्रति समर्पण की भावना का सन्निवेश था। सम्पूर्ण देश और समाज तीर्थ की विशाल छाया में क्रियाशील रहा है। प्रत्येक भारतीय तीर्थयात्रा कर लौकिक उत्कर्ष के साथ-साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त करता था। तीर्थयात्रा के समय उसके समस्त कर्त्तव्य और कर्मज्ञान-समन्वित और श्रद्धासिक्त होकर धर्म से ही उत्प्रेरित और गतिमान होते थे। संसार में भारत ही ऐसा देश है जिसने विश्व के कल्याण के लिए चलते-फिरते तीर्थों की कल्पना की है। हिन्दू धर्म ही ऐसा विलक्षण धर्म है जिसमें डंके की चोट पर कहा गया है कि तीर्थ लौकिक और पारलौकिक जीवन में सुख प्रदान करने का एक सद्मार्ग हैं।

तीर्थ भारतीय संस्कृति का मूलाधार हैं। तीर्थों की महिमा वेदों एवं पुराणों में गायी गयी है। तीर्थ भारतीय सभ्यता का सार है। वह हिन्दुओं का सनातन धर्म है। वह भगवत् प्राप्ति का मार्ग है तथा देवों, ऋषियों, महर्षियों, साधुओं एवं महात्माओं के तपोमय ज्ञान की उपलब्धि है। सच पूछिये तो तीर्थ एवं तीर्थाटन का उपदेश भारत में इतने दिनों से दिया जा रहा है कि शेष विश्व भारत को तीर्थ एवं निवृत्ति का देश ही मान बैठा है। अन्य धर्मों पर हिन्दू मतों के प्रभावों की व्याख्या के सिलसिले में हिन्दू तीर्थ की भी बरबस याद आ जाती है। अन्य धर्मों में तीर्थ का जो रूप देखते हैं वह हिन्दू तीर्थों के प्रभावों को अपने भीतर पचाये हुए हैं। मालूम होता है, जब हिन्दू धर्म में प्रतिपादित तीर्थ एवं तीर्थयात्रा समाज को बहुत आकृष्ट करने लगी, तभी अन्य धर्मों, जैसे- बौद्ध धर्म, जैन धर्म, ईसाईयत एवं इस्लाम आदि ने अपने धर्म से बढ़कर उसे कबूल कर लिया। अस्तु हिन्दू तीर्थ की विचारधारा स्फटिक के समान उज्ज्वल होकर विश्व के अन्य धर्मों में प्रकट हुई। तीर्थ की विशेषता है कि उपनिषदों के आध्यात्मिक सिद्धान्त तीर्थयात्रा में सामाजिक जीवन पर लागू किये गये हैं। उपनिषदों ने वैराग्य को तो मुक्ति का साधन माना, किन्तु शूद्रों को मुक्ति पाने का अधिकार नहीं दिया, क्योंकि वे वेद एवं उपनिषद् पढ़ नहीं सकते थे। बौद्ध एवं जैन धर्मो ने निर्वाण या मुक्ति का वादा तो सबके लिए किया, किन्तु, उन्होंने भी एक शर्त लगा दी कि श्रमण या संन्यासी हुए बिना मुक्ति किसी को नहीं मिलेगी। तीर्थ मुक्ति का दरवाजा सबके लिए खोलती है और यह भी कहती है कि गृहस्थी का काम करते हुए भी तीर्थाटन द्वारा आदमी मोक्ष पा सकता है। तीर्थो ने सद्गृहस्थों के भगवत्प्राप्ति के लिए कीर्तन, श्रवण, वन्दन और पूजन के लिए एक सुस्थान दे दिया, क्योंकि भगवान् का ज्ञान काम-लोभ-वर्जित साधु-संग से होता है और साधु मिलते हैं तीर्थों में।[1] अस्तु तीर्थ में साधुओं का दर्शन बड़ा पवित्र होता है; क्योंकि साधु तीर्थ रूप ही हैं।

तीर्थ तो काल पर फल देते हैं पर साधु-समागम का फल तो तुरन्त ही मिलता है। कहा गया है -

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थ फलति कालेन सद्यः साधुसमागमः।।

इस प्रकार तीर्थ सद्गृहस्थों का उपनिषद् है और साधुओं का दर्शन ही समस्त सिद्धियों का परम कारण है।[२] तीर्थों में भक्ति बीज अंकुरित, पुष्पित और पल्लवित होते हैं। चूँकि बौद्ध मत ने भक्ति के सभी दरवाजे बन्द कर दिये थे, इसलिए तीर्थयात्रा के परिणामस्वरूप वह वैदिक धर्म के हृदय में जोरों से बढ़ने लगी। तीर्थ में देवताओं की प्रसन्नता के लिए पापाचार करने का उपदेश नहीं है, बल्कि यहाँ तो भगवान् का पूजन पुष्प और पत्र से करने के लिए कहा गया है। अस्तु तीर्थयात्रा हिन्दू धर्म में मोक्ष प्राप्ति का सर्वमान्य साधन है। हिन्दू धर्म के जो भी व्याख्याता और सुधारक भारत में जन्मे, उन्होंने अध्यात्म सिद्धि के लिए, महान् अभ्युदय की प्राप्ति के लिए तीर्थ एवं तीर्थयात्रा पर विशेष रूप से बल दिया।

तीर्थ : अर्थ और स्वरूप :

सामान्यतः तीर्थ शब्द का अर्थ है - 'एक पवित्र स्थान' जहाँ धर्मभाव से लोग परमार्थ की प्राप्ति के लिए जाते हैं। जैसे- हिन्दुओं के लिए काशी, अयोध्या, रामेश्वरम्, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार, द्वारका आदि अथवा मुसलमानों के लिए मक्का, मदीना आदि। वेदों एवं अन्य वैदिक संहिताओं में तीर्थ शब्द का प्रयोग बहुधा इसी अर्थ में हुआ है। ऋग्वेद (१०:३१:३) की इस सुक्ति "तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः" में तीर्थ शब्द का सम्भवतः यही अर्थ ध्वनित होता है। वैसे ऋग्वेद की कतिपय अन्य उक्तियों में 'तीर्थ' शब्द का प्रयोग मार्ग या पथ के रूप में किया गया है, यथा- "तीर्थे पौंस्यानि तस्थुः" (ऋग्वेद १:१६९:६), "तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको" (ऋग्वेद १:१७:११), "करन्न इन्द्रः सुतीर्थामयं च" (ऋग्वेद ४:२९:१३)। किन्तु, यह मार्ग भी पवित्र स्थलों (यज्ञीय स्थलों) की ओर ले जाने के लिए आया है। इसी तरह ऋग्वेद के कई सूक्तों में तीर्थ शब्द का अर्थ नदी, प्रपात, जलाशय आदि के अर्थ में भी आया है। वस्तुतः नदी के अर्थ में भी तीर्थ शब्द परमार्थ पथ के रूप को ही अभिव्यंजित किरता है। अस्तु हिन्दू धर्मशास्त्रों में तीर्थ की व्याख्या करते हुए इसे परमार्थ पथ या परलोक का मार्ग, यथार्थ परमतत्त्व की प्राप्ति या जानने का मार्ग कहा गया है।

परमार्थ क्या है? अपनी ओर से इसकी व्याख्या न कर हम रामचिरतमानस, विनयपत्रिका, दोहावली आदि ग्रन्थों में गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्वयं जहाँ-जहाँ जिस रूप में इसकी चर्चा की है उसी रूप को साकार रूप में हम यहाँ प्रस्तुत करना चाहेंगे। रामचरितमानस में उन्होंने संसार के प्रपंच से विरक्त लोगों को ही 'परमार्थी' कहा है, यथा, 'एहि जग जामिन जागहिं योगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।' (२:६३), 'परमारथ पहिचानि मति लसति विषय लपटानि। निकसि चितातें अधजरित मानहुँ सती परानि।।' अर्थात् परमार्थवेत्ता विषय में लिप्त नहीं होता। 'सखा परम परमार्थ एहू। मन क्रम वचन रामपद नेहू।' अर्थात् मन, कर्म, वचन से श्री रामजी के चरणों में प्रेम होना ही 'परम परमार्थ' है। 'राम ब्रह्म परमारथ रूपा। राम नाम प्रेम परमारथ को सार रे।।' (विनयपत्रिका ६८) अर्थात् श्रीराम और श्रीरामनाम ही परमार्थ है। 'परमार्थ' पद परम और अर्थ दो शब्दों से मिलकर बना है। इस प्रकार 'परमार्थ का तात्पर्य है परम अर्थ और 'अर्थ' का तात्पर्य है वस्तु। इस प्रकार सबसे परम (श्रेष्ठ) जो वस्तु है वही 'परमार्थ' है। सर्वश्रेष्ठ अर्थ क्या है? जो अजर, अमर, अविनाशी, अनादि, अनन्त, सत्य इत्यादि विशेषणों से युक्त हो वही 'सर्वश्रेष्ठ अर्थ' है। अब उस 'परमार्थ रूपी' श्री रामजी की प्राप्ति के लिए जितने भी साधन कहे गये हैं, उनको 'परमार्थ पथ' कहा जाएगा। इस सन्दर्भ में परमार्थ सबसे उत्कृष्ट पदार्थ सारवस्तु, परमतत्त्व या यथार्थ तत्त्व की प्राप्ति या जानने का मार्ग है। इसी अर्थ में ही ऋग्वेद में तीर्थ शब्द अभिव्यंजित हुआ है। अस्तु परमतत्व की प्राप्ति का मार्ग ही तीर्थ है। अस्तु तीर्थ को परिभाषित करते हुए हम कह सकते हैं कि तीर्थ अलौकिक सत्ताओं से सम्बन्धित विश्वासों एवं व्यवहारों को एकीकृत करने का एक ऐसा पवित्र स्थल है जहाँ लोग परमार्थ प्राप्त करने के लिए धर्म विहित कर्म सम्पादित करते हैं।

तीर्थ उपासना, कर्मकाण्ड और ज्ञान का त्रिविध रूप है। ये तीनों ही भगवत् प्राप्ति के मार्ग में बहुत बड़े सहायक हैं। चूँकि तीर्थ पवित्र होता है, अस्तु तीर्थ-स्थलों पर देवों का निवास रहता है। इस भावना से उत्पन्न स्पष्ट लाभ एवं विश्वास के कारण प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने तीर्थों की यात्रा पर बल दिया है। धर्मशास्त्रों ने डंके की चोट पर कहा है कि 'तरति अनेन इति तीर्थम्' अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्य इस अपार संसार से तर जाय, उसी को तीर्थ के नाम से सम्बोधित किया गया है। तीर्थ अलौकिक है, मोक्ष के मार्ग हैं, स्वर्ग के सोपान हैं और ईश्वर की विविध लीलाओं के स्मारक होने से ईश्वरमय हैं। तीर्थों के रजकणों के ऐसे पवित्र तत्व समाविष्ट हैं कि उसके एक कण को मस्तक पर धारण करने मात्र से मनुष्य के पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार भगवान् सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। इसीलिए धर्मशास्त्रकारों ने तीर्थ को 'तरति पापादिकं यस्मात्' कहकर सम्बोधित किया

है अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्य पापादि से मुक्त हो जाय, उसे तीर्थ कहते हैं।

तीर्थों में पवित्रता की भावना का उत्कर्ष : पद्मपुराण में तीर्थों की पवित्रता के सन्दर्भ में कहा गया है कि जिस प्रकार मानव शरीर के कुछ अंग, यथा दाहिना हाथ या कर्ण, अन्य अंगों से अपेक्षाकृत पवित्र माने जाते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के कुछ स्थल पवित्र माने जाते हैं। तीर्थ निम्नलिखित तीन कारणों से पवित्र माने जाते हैं :

(१) स्थल की कुछ आश्चर्यजनक प्राकृतिक विशेषताओं के कारण,

(२) किसी जलीय स्थल की रमणीयता, तेजस्विता के कारण, या

(३) किसी तपःपूत ऋषि या मुनि के यहाँ (स्नान करने, तपः साधना करने आदि के लिए) रहने के कारण।

अतः तीर्थ का अर्थ है वह स्थान या स्थल अथवा जलयुक्त स्थान (नदी, प्रपात, जलाशय आदि) जो अपने विलक्षण स्वरूप के कारण पुण्यार्जन की भावना को जागृत करें।[३]

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि जहाँ प्राचीन काल के सत् पुरुष पुण्यार्जन करने के लिए रहते थे, वे स्थल तीर्थ हैं। मुख्य बात महान पुरुषों के समीप जाना है, तीर्थयात्रा करना तो गौण है।[४]

मेरे विचार से तीर्थ-स्थल की पवित्रता के निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं :

(१) वैदिक धर्म ग्रन्थ एवं अन्य वैदिकोत्तर धर्मशास्त्रों द्वारा तीर्थों की अलौकिकता एवं दिव्यता की अभिव्यंजना;

(२) देवताओं, ऋषियों या तपस्वियों द्वारा तीर्थों में देवत्व की भावना का बीजारोपण;

(३) जलीय स्थल की अनुपम रमणीयता एवं तेजस्विता;

(४) स्थल की कुछ आश्चर्यजनक असीम प्राकृतिक शक्ति का अनुभव;

(५) भगवान् का स्वयं अवतारीय स्थल, देवताओं विशेषकर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव महान् ऋषियों व सन्तों का अवतरण स्थल अथवा उनके द्वारा निर्मित तीर्थ स्थल।

वैदिक साहित्य एवं वैदिकोत्तर धर्मग्रन्थों से तीर्थ-स्थलों की अलौकिकता एवं दिव्यता सुस्पष्ट होती है। इन ग्रन्थों में विदित होता है कि आर्यों ने तीर्थों को दैवीय आधार पर कल्पित किया तथा दैव के रूप में उन्हें स्वीकार कर उनके दैवीकरण की संयोजना की। यही नहीं, प्रत्येक तीर्थ के दैविक वैशिष्ट्य की भी उद्भावना दैवीकरण के आधार पर की गई। उन्होंने तीर्थों में उन सभी अलौकिक गुणों और आचारों का दिग्दर्शन किया जो किसी देवता में दृष्टिगत होते हैं। कहीं-कहीं स्थान की अलौकिकता, कहीं-कहीं गंगा, यमुना तथा सरस्वती आदि अलौकिक नदियों, कहीं-कहीं ऋषि-मुनियों तथा संत महात्माओं के तपोमय आश्रमों और कहीं-कहीं स्वयं भगवान् के अद्भुत अवतारों से तीर्थ स्थलों में देवत्व की भावना भक्ति-धारा माधुर्योपासना के रस में समाहित है। सप्त प्रधान तीर्थों, जैसे- अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारका को मुक्ति प्रदान करने वाला तीर्थ कहा गया है। अयोध्या की अलौकिकता भगवान् श्रीराम का अवतारीय स्थल होने के कारण, मथुरा की अलौकिकता भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण, माया या हरिद्वार की अलौकिकता विष्णु-चरण से निकली हुई माँ गंगा का द्वार होने के कारण, काशी की अलौकिकता एवं दिव्यता भगवान् विश्वनाथ के कारण, कांची की अलौकिकता भगवान् शिव एवं विष्णु के सानिध्य के कारण, अवन्तिका की अलौकिकता भगवान् महाकाल के कारण और द्वारका की अलौकिकता भगवान् द्वारिकानाथ (श्रीकृष्ण) के कारण है।

वेदों में प्रायः सभी पवित्र नदियों की अद्भुत महिमा का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में सामान्य रूप से सभी नदियों एवं विशिष्ट रूप से गंगा, यमुना और सरस्वती आदि पावनतम नदियों को दैविक शक्ति-पूर्ण होने से पूर्जाह माना गया है। इन नदियों की बार-बार स्तुति की गयी है। ऋग्वेद (७:४६) के चार मन्त्रों में ऐसा आया है 'ता आपो देवीरिह मामवन्तु' अर्थात् 'दैवी जल हमारी रक्षा करें।' (ऋग्वेद, ७:४६:१ जलों को 'पुनानाः' अर्थात् पवित्र करने वाला) कहा गया है। ऋग्वेद (७:४६, १०:६ एवं १०:३०) में कुछ ऐसी स्तुतियाँ हैं जो देवतास्वरूप जलों को सम्बोधित हैं।[५] वे मनुष्य को न केवल शरीर रूप से पवित्र करने वाले कहे गये हैं, प्रत्युत सम्यक् मार्ग से हटने के फलस्वरूप संचित दोषों एवं पापों से छुटकारा देने के लिए भी उनका आवाहन किया गया है। तैत्तिरीय संहिता (२:६:८/३) में यह उद्घोषणा की गयी है कि सभी देवता जलों में केन्द्रित हैं (आपो वै सर्वा देवताः) अथर्ववेद (१:१३३:१) में जलों को शुद्ध एवं पवित्र करने वाला कहा गया है और सुख देने के लिए उनका आवाहन किया गया है। ऋग्वेद (५:५३:६, १०:६४:६ एवं १०:७५:५-६) में लगभग २० नदियों का आवाहन किया गया है।

ऋग्वेद (८:६:२८) में पर्वतों की घाटियाँ एवं नदियों के संगम को पवित्र एवं देवों का निवास स्थल माना गया है। कालिदास ने कुमारसम्भव (१:११) में हिमालय को देवात्मा (देवों के निवास से सजीव) कहा है। हिमाच्छादित पर्वतों, प्राणदायिनी

विशाल नदियों एवं बड़े वनों की सौन्दर्य शोभा एवं गरिमा सभी लोगों के मन को मुग्ध कर लेती है और यह सोचने को प्रेरित करती है कि उनमें कोई देवी सत्ता है और ऐसे परिवेश में परम ब्रह्म आंशिक रूप से अभिव्यंजित रहता है। ऋग्वेद (१०:१४६:१) में विशाल वन (अरण्यानी) को देवता के रूप में सम्बोधित किया गया है। वामन पुराण (३४:३-५) ने कुरुक्षेत्र के सात वनों को पुण्यप्रद एवं पापहारी कहा है। ये सात वन निम्नलिखित हैं : काम्यकवन, अदितिवन, व्यासवन, फलकीवन, सूर्यवन, मधुवन एवं पुण्यशील वन।

गौतम धर्म सूत्र (१६:१४), बोधायन धर्म सूत्र (३:१०:१२) एवं वशिष्ट धर्म सूत्र (२२:१२) में कुछ विशिष्ट स्थानों, जैसे- पर्वतों, नदियों, पवित्र सरोवरों, तीर्थ-स्थलों, ऋषि-निवासों, गौशालाओं एवं देवों के मन्दिरों को पुनीत एवं पापनाशक माना गया है। वायुपुराण (७७:१:१७) एवं कूर्मपुराण (२:३७:४६-५०) का कथन है कि हिमालय के सभी भाग पुनीत हैं। गंगा सभी स्थानों में पुण्य (पवित्र) है, समुद्र में गिरने वाली सभी नदियाँ पुण्य हैं और समुद्र सर्वाधिक पवित्र है। पद्मपुराण (भूमिखण्ड ३६:४६-४७) का कथन है कि सभी नदियाँ चाहे वे ग्रामों से या वनों से होकर जाती हैं, पुनीत हैं और जहाँ नदियों के तट का कोई तीर्थनाम न हो उसे विष्णुतीर्थ कहना चाहिए। महाभारत एवं पुराणों में भी तीर्थों की महिमा गायी गयी है। महाभारत (वनपर्व : ८२:१३-१७) में तीर्थयात्रा को यज्ञों से उत्तम माना गया है। (तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशेष्यते)। किन्तु वनपर्व (८२:६-१२) एवं अनुशासन पर्व (१०८:३-४) ने तीर्थयात्रा से पूर्ण पुण्य प्राप्त करने के लिए उच्चनैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों पर बहुत बल दिया गया है। ऐसा कहा गया है कि - जिसके हाथ, पाँव, मन सुसंयत है, जिसे विद्या, तप एवं कीर्ति प्राप्त है वही तीर्थयात्रा से (पूर्ण) फल प्राप्त कर सकता है। जो प्रतिग्रह (दान ग्रहण आदि) से दूर रहता है, जो कुछ मिल जाय उसमें सन्तुष्ट रहता है एवं अहंकार से रहित है, वह तीर्थ फल प्राप्त कर सकता है। जो अकल्कक (प्रवंचना या कपटाचरण से दूर) है, निरारम्भ है (अर्थात् धन कमाने के लिए भाँति-भाँति के उद्योगों से निवृत्त है) लध्वाहारी (कम खाने वाला) है, जितेन्द्रिय है, अर्थात् जो अपनी इन्द्रियों के संयम द्वारा पापकर्मों से दूर रहता है, और वह अक्रोधी भी है, सत्यशील है, दृढ़वती है, अपने समान ही अन्यों को जानने-मानने वाला है, वह तीर्थयात्राओं से पूर्ण फल प्राप्त करता है।[६] इसका तात्पर्य यह है कि जिन्हें ये विशेषताएँ नहीं प्राप्त हैं वे तीर्थयात्रा द्वारा पापों का नाश कर सकते हैं किन्तु जो इन गुणों से युक्त है वे और भी अधिक पुण्यफल प्राप्त कर सकते हैं। स्कन्दपुराण (काशीखण्ड, ६:३) ने दृढ़तापूर्वक कहा है कि - "जिसका शरीर जल से सिक्त है उसे केवल इतने से ही स्नान किया हुआ नहीं कह सकते हैं, जो इन्द्रियसंयम से सिक्त है (अर्थात् उसमें डुबा हुआ है), जो पुनीत है, सभी प्रकार के दोषों से मुक्त एवं कलंक रहित है, केवल वही स्नात (स्नान किया हुआ) कहा जा सकता है।" यही बात अनुशासन पर्व (१०८:६) में भी कही गयी है। वायुपुराण में आया है कि - "पाप कर्म कर लेने पर यदि धीर (दृढ़संकल्प या बुद्धिमान), श्रद्धावान एवं जितेन्द्रिय व्यक्ति तीर्थयात्रा करने से शुद्ध हो जाता है, तो उसके विषय में क्या कहना जिसके कर्म शुद्ध है? किन्तु जो अश्रद्धावान् है, पापी है, नास्तिक है, संशयात्मा है (अर्थात् तीर्थयात्रा के फलों एवं वहाँ के कृत्यों के प्रति संशय रखता है) और जो हेतुद्रष्टा (व्यय के तर्कों में लगा हुआ) है - ये पाँचों तीर्थफलभागी नहीं होते।[७]

स्कन्दपुराण (१:१:३१:३७) का कथन है कि पुनीत स्थान (तीर्थ), यज्ञ एवं भाँति-भाँति के दान मन की शुद्धि के साधन हैं (अर्थात् इनसे पाप कटते हैं)। पद्मपुराण (४:८०:६) में आया है कि - "यज्ञ, व्रत, तप एवं दान कलियुग में भले प्रकार से सम्पादित नहीं हो सकते; किन्तु गंगा-स्नान एवं हरिनाम-स्मरण सभी प्रकार के दोषों से मुक्त हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३:२७३:७ एवं ६) में बहुत ही स्पष्ट कहा गया है कि "जब तीर्थयात्रा की जाती है तो पापी के पाप कटते हैं, सज्जन की धर्मवृद्धि होती है; सभी वर्णों एवं आश्रमों के लोगों को तीर्थ फल देता है।[८]

मुनियों, तपस्वियों एवं ऋषियों के आश्रम तीर्थ-स्थल के रूप में विख्यात हैं। यथा -

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहिं रामप्रद अति अनुरागा।।
तापस समदम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना।।
सन्त तुलसीदास, रामचरितमानस : बालकाण्ड, ४३:१-२

भरद्वाज आश्रम अतिपावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन।।
तहाँ होई मुनि रिषय समाजा। जाहि जे सज्जन तीरथ राजा।।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरिगुन गाहा।।
मानस, बालकाण्ड ४३:६-८

विश्वामित्र महा मुनि ग्यानी। बसहिं विपिन सुभ आश्रम जानी।।
मानस बालकाण्ड २०६:२

देखत वन सर सैल सुहाए। बाल्मीकि आश्रम प्रभु आए।।
मान अयो. १२४:५

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ।। मानस अरण्य काण्ड २:४

जो स्थान पवित्र और सुन्दर होता है वहाँ मुनियों के मन को भाता है। यथा-

आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा।।
मानस वालकाण्ड १२५:२
सुचि सुन्दर आश्रम निरखि हरषे राजिव नैन।।
मानस अयोध्या दो- १२४
इधर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में -
खग मृग विपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं।। मानस अयो. १२४:८
धर्मग्रन्थों में भगवान् के अवतारीय स्थलों, जन्मभूमियों, देवताओं व ऋषि-महर्षियों, सन्तों और महात्माओं के अवतरण-स्थलों के रूप में स्वीकार किया गया है। उदाहरणस्वरूप, मानसकार व सन्त सिरोमणि तुलसीदास जी महाराज की स्थापना की है- जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं।। मानस बालकाण्ड ३४:६
जिस दिन भगवान् श्रीराम का जन्म होता है उस दिन अयोध्या में न केवल समस्त तीर्थ ही आ जाते हैं, वरन् सुर, नर, मुनि, नाग और खग आदि उपस्थित होकर श्रीराम जन्म-महोत्सव को सफल बनाते हैं। जरा देखें, सन्त तुलसीदास भक्ति की धारा में अनुराग से डुबकी लगाते हुए ग्रन्थारम्भ-स्थल तथा रामजन्म भूमि होने के नाते अयोध्या (अवधपुरी) की महिमा का वन्दन किस प्रकार करते हैं -
बंदौ अवधपुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि।।
मानस बाल १६:१
अवधपुरी यह चरित प्रकासा। मानस बाल ३४:५
राम धमदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि।।
चार खानि जगजीव अपारा। अवध तजे तनु नहिं संसारा।।
सब विधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धि प्रद मंगल खानी।।
मानस बालकाण्ड ३५:३-५
यों तो भगवान् के चरण जहाँ-जहाँ गये हैं, वे सभी स्थान तीर्थ ही हैं। तनिक संत तुलसीदास की इन पंक्तियों का रसास्वादन कीजिए जिसमें कहा गया है कि -
अवध तहाँ जहाँ राम निवासू। तहई दिवस जहँ भानु प्रकासू।।
मानस अयो. ७४:३
जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तेहि समान अमरावति नाहीं।।
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा।।
परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी।।
बृहद्धर्मपुराण के पूर्वखण्ड में इस सन्दर्भ में निम्नलिखित भाव व्यक्त हुआ है -
वनवासगतो रामो यत्र-यत्र व्यवस्थितः।
तानि चोक्तानि तीर्थानि शतमष्टोत्तर क्षितौ।।
(वृहद्धर्मपुराण, पूर्व खण्ड १४:३४)

तीर्थराज प्रयाग के बारे में मानसकार लिखते हैं -
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराज दीख प्रभु जाई।।
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी।।
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेश देस अति चारू।।
छेत्र अगम गढ़-गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहि प्रतिपच्छिन्ह पावा।।
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा।।
संगमु सिंहासन सुठि सौहा। छत्रु अखयबटु मुनि मन मोहा।।
जँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुःख दारिद भंगा।।
मानस बाल १०५:२-८
को कहि सकई प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ।।
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुखसागर रघुवर सुखु पावा।।
कहि सिय लषनहि सखहि सुनाहूँ। श्रीमुख तीरथराज बढ़ाई।।
करि प्रनाम देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा।।
एहि विधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी।।
मानस बाल १०६:१-५
नैमिषारण्य के बारे में मानसकार का उद्गार है - 'तीरथ वर नैमिष विख्याता।'
काशी के बारे में 'जीवन मुकुति हेतु जनु काशी' काशी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करौं बिसोकी।। कहकर सम्बोधित किया गया है। इसी तरह चित्रकूट, भरतकूप, पंचवटी, उज्जयिनी, रामेश्वरम् आदि तीर्थों की महिमा का मानसकार ने बार-बार गुणगान किया है।
हिन्दू तीर्थों की अगणित संख्या है। इनकी कोई निश्चित संख्या नहीं है। मत्स्यपुराण (११०:७), नारदीयपुराण (उत्तर, ६३:५३-५४), पद्मपुराण (४:८६, १६-१७) एवं (५:२०, १५०), वराहपुराण (१५६:६-७), ब्रह्मपुराण ;२५:७-८) एवं (१७५:८३) आदि में तीर्थों की संख्याओं का उल्लेख किया गया है। मत्स्यपुराण के अनुसार ३५ कोटि तीर्थ हैं जो आकाश, अन्तरिक्ष और भूमि में पाये जाते हैं और सभी गंगा में अवस्थित माने जाते हैं। भारत में जितने भी तीर्थ हैं वे प्रायः सभी किसी न किसी देवी या देवता से, अलौकिक सत्ताओं से, ऋषियों व महान् पुरुषों से ही बने हैं। उदाहरणस्वरूप, श्रीभागीरथी गंगा एक महान् तीर्थ है। श्रीमद्भागवत् के नवम् स्कन्ध के नवें अध्याय में वर्णित है कि महाराज भगीरथ के तप-प्रयास एवं भगवान् शंकर की कृपा से भूतल पर गंगा प्रवाहित हुईं। उस परमपावनी गंगा के स्पर्श मात्र से राजा भगीरथ के पितर-सगर पुत्र स्वर्ग को चले गये। इसलिए उस स्थान का नाम 'गंगासागर तीर्थ' हुआ। राजा भगीरथ एवं शंकर के प्रभाव से पापमुक्त करने के कारण ही गंगा एक प्रधान तीर्थ मानी जाती है। काशी, मथुरा, अयोध्या, रामेश्वरम्,

बदरिकाश्रम, जगन्नाथपुरी, द्वारिका, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, ऋषिकेश, पुष्कर एवं प्रयाग आदि तीर्थों की महिमा उनकी अलौकिकता एवं देवत्व के कारण ही है। मत्स्यपुराण का कथन है कि वायु ने घोषित किया है कि ३५ कोटि तीर्थ हैं जो आकाश, अन्तरिक्ष एवं भूमि में पाये जाते हैं और सभी गंगा में अवस्थित माने जाते हैं। वायुपुराण के अनुसार तीर्थों की संख्या साढ़े तीन करोड़ है, किन्तु बाराहपुराण के अनुसार वायु, हनुमान, बाली, सुग्रीव, ब्रह्मा, लोमश, मार्कण्डेय आदि देवों, ऋषियों, सिद्ध महात्माओं ने तीर्थों की संख्या की गणना ६६ अरब के रूप में की है।[९] वामनपुराण (४६:५३) का कथन है कि ३५ करोड़ लिंग हैं। ब्रह्मपुराण (२५:७-८) का कहना है कि तीर्थों एवं पुनीत धार्मिक स्थलों की इतनी बड़ी संख्या है कि उन्हें सैकड़ों वर्षों में भी नहीं गिना जा सकता।[१०] ब्रह्मपुराण (१७५:३१-३२) में ही दैव, असुर, आर्ष एवं मानुष तीर्थों को क्रमशः सत्ययुग, त्रेता, द्वापर एवं कलि नामक युगों से सम्बन्धित माना गया है।

धर्मशास्त्र में तीर्थ पर जो साहित्य उपलब्ध है वह अपेक्षाकृत सबसे अधिक विशद् है। वैदिक साहित्य को छोड़कर महाभारत एवं पुराणों में कम से कम ४०,००० श्लोक तीर्थों, उपतीर्थों एवं उनसे सम्बन्धित किंवदन्तियों के विषय में ही प्रणीत हैं। वनपर्व (अध्याय ८२-१५६) एवं शल्यपर्व (अध्याय ३५-५४) में ही ३९०० के लगभग केवल तीर्थयात्रा सम्बन्धी श्लोक हैं। यदि कुछ ही पुराणों का हवाला दिया जाय तो ब्रह्मपुराण में ६७०० श्लोक (इसके सम्पूर्ण अर्थात् १३७८३ श्लोकों का लगभग अर्धांश) तीर्थों के विषय में, पद्मपुराण के प्रथम पाँच खण्डों के ३१,००० श्लोकों में ४००० श्लोक तीर्थ-सम्बन्धी हैं, वराहपुराण में कुल ९६१४ श्लोक हैं जिनमें ३१८२ श्लोक तीर्थ के विषय में हैं। इसें १४०० श्लोक केवल मथुरा के विषय में हैं और मत्स्यपुराण के १४००२ श्लोकों में १२०० श्लोक तीर्थ-सम्बन्धी हैं। इसके अतिरिक्त, निम्न निबन्ध एवं तीर्थ-सम्बन्धी ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। लक्ष्मीधर के कल्पतरु का तीर्थ विवेचन काण्ड; हेमाद्रि की चतुर्वर्ग चिन्तामणि का तीर्थखण्ड (जो अभी उपलब्ध नहीं हुआ है); वाचस्पति (१४००-१४८०ई.) के तीर्थ-चिन्तामणि, नृसिंहप्रसाद (लगभग १५०० ई.) का तीर्थसार; नाराण भद्र का त्रिस्थलीसेतु (१५५०-१५८० ई.); टोडरानन्द (१५६५-१५८९ ई.) का तीर्थप्रकाश; भट्टोजि (लगभग १६२५ ई.) का त्रिस्थलीसेतु सार संग्रह; नागेश का त्रिस्थलीसेतु सार संग्रह; नागेश या नागोजी का तीर्थेन्दुशेखर। बहुत से तीर्थ सम्बन्धी ग्रन्थ अभी प्रकाशित नहीं हैं जिनमें अनूप सिंह (बीकानेर) की आज्ञा से प्रणीत अनन्त भट्ट का तीर्थरत्नाकर सम्भवतः सबसे बड़ा है। इसके अतिरिक्त, विशिष्ट तीर्थों पर भी पृथक्-पृथक् ग्रन्थ हैं। यथा- विद्यापति (१४००-१४५० ई.) का गंगावाक्यावली नामक ग्रन्थ सुरेश्वराचार्य का काशीमृतिमोक्ष-विचार' रघुनन्दन की गयाश्राद्ध-पद्धति एवं पुरुषोत्तम क्षेत्र तत्त्व। इस स्थल पर हमने प्रकाशित ग्रन्थों का ही विशेष उल्लेख किया है।

ब्रह्मपुराण ने तीर्थों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है : दैव (देवों द्वारा उत्पन्न), आसुर (जो गय, बलि जैसे असुरों से सम्बन्धित है), आर्ष (ऋषियों द्वारा संस्थापित), यथा- (प्रमास, नर-नारायण) एवं मानुष (अम्बरीस, मनु, कुरु आदि राजाओं द्वारा निर्मित), जिनमें प्रत्येक पूर्ववर्ती अपने अनुवर्ती से उत्तम हैं।[११] ब्रह्मपुराण ने विन्ध्य के दक्षिण की छः नदियों और हिमालय से निर्गत छः नदियों को देवतीर्थों में सबसे अधिक पुनीत माना है, यथा- गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका एवं वितस्ता। इसी प्रकार काशी, पुष्कर एवं प्रभास देवीतीर्थ हैं (तीर्थप्रकाश, पृ. १८)।

तीर्थों की अलौकिकता एवं अभिरामता : तीर्थों की अलौकिकता और अभिरामता के प्रति भारतीय मनीषियों का आकर्षण था। वे तीर्थों में स्थित प्राकृतिक वस्तुओं एवं दिव्य शक्तियों को आश्चर्यचकित होकर अत्यन्त स्नेह और आनन्दपूर्वक देखते थे। प्राची में उदित होने वाले प्रातःकालीन सूर्य की अभिराम किरणों तथा रात्रि में सोम की सुधायुक्त शीतल रश्मियों को देखकर वे प्रफुल्ल हो उठते थे। उन्होंने प्रकृति की इन विविधताओं को अनेकानेक देवताओं में कल्पना करके विवृत किया तथा उनके अनुग्रह से संसार के कार्यकलाप के संचालन की बात स्वीकार की। उन्होंने यह माना कि प्रकृति की शक्ति को देवता ही नियन्त्रित करते हैं। अतः उन देवताओं को प्राकृतिक दृश्यों के अधिष्ठाता के रूप में माना गया एवं भौतिक जगत् की उत्पत्ति के लिए उनकी कल्पना की गयी। इस कल्पना ने दो प्रक्रियाओं को गति दी। एक यह कि इन देवताओं के तीर्थ स्थलों पर एकत्रित होकर लोग उनके वहाँ प्रकटीकरण के प्रयोजनों का परिचय प्राप्त कर सकें तथा साथ ही उनसे प्रेरणा एवं प्रकाश पा सकें। इसी श्रद्धा-भावना से सान्निध्य का प्रयास किया जाता है और इसी प्रयोजन से चार धामों - (१) बद्रीनाथ, (२) रामेश्वरम्, (३) द्वारकापुरी एवं (४) जगन्नाथपुरी; सप्तपुरी - (१) अयोध्या, (२) मथुरा, (३) मायापुरी (हरिद्वार), (४) काशी, (५) कांची, (६) अवन्तिका (उज्जैन) एवं (७) द्वारिकापुरी; सप्त पुण्य धाराओं या नदियों - (१) गंगा, (२) यमुना, (३) गोदावरी, (४) सरस्वती, (५) कावेरी, (६) नर्मदा एवं (७) सिन्धु; सप्त क्षेत्रों - (१) कुरुक्षेत्र (पंजाब), (२) हरिहर क्षेत्र

(सोनपुर, बिहार), (३) प्रभास क्षेत्र (वेरावल-सौराष्ट्र), (४) रेणुकाक्षेत्र (मथुरा), (५) भृगुक्षेत्र (भँरुच), (६) पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथपुरी), (७) शूकरक्षेत्र, (सोरो - उ.प्र.); द्वादश ज्योतिर्लिंग (शिवलिंग) - (१) सोमनाथ (गुजरात-सौराष्ट्र), (२) मल्लिकार्जुन (कृष्णा, आन्ध्र प्रदेश), (३) महाकालेश्वर (उज्जैन, मध्य प्रदेश), (४) ओंकारेश्वर (रेवा, मध्य प्रदेश), (५) वैद्यनाथ (जसीडिह, बिहार), (६) भीमशंकर (महाराष्ट्र), (७) रामेश्वरम् (चेन्नई), (८) नागेश्वर (द्वारिका-सौराष्ट्र) (६) विश्वेश्वर (वाराणसी, उत्तर प्रदेश), (१०) त्रयम्बेश्वर (नासिक, महाराष्ट्र), (११) केदारेश्वर (उत्तराखण्ड), एवं (१२) घुश्मेश्वर (मनमाड, महाराष्ट्र); द्वादश देवी शक्तिपीठ- (१) कामाक्षी (काँचीपुरम्), (२) भ्रामरी (मलयागिरी), (३) कुमारी (केरल-मलाबार), (४) अम्बाजी (आनर्त-गुजरात), (५) महालक्ष्मी (करबीर, कोल्हापुर), (६) कालिका (उज्जैन, मालवा), (७) ललिता (प्रयाग), (८) विंध्यवासिनी (विंध्याचल), (६) विशालाक्षी (वाराणसी), (१०) मंगलावती (गया, बिहार), (११) सुन्दरी (बंगाल) एवं (१२) गुह्यकेश्वरी (नेपाल); पंचकाशी - (१) वाराणसी, (२) गुप्तकाशी, (३) उत्तरकाशी, (४) दक्षिण काशी एवं (५) शिवकाशी, तथा पंचसरोवर - (१) बिन्दु सरोवर, (२) नारायण सरोवर, (३) पम्पा सरोवर, (४) पुष्कर सरोवर, और (५) मानसरोवर के रूपों में व्यापक तीर्थतन्त्र विकसित हुए हैं।

दूसरा यह कि विशेष पवित्र अवसरों या पर्वों पर लोग एकत्रित होकर देवताओं के सान्निध्य एवं उनके दिव्यदर्शन से आध्यात्मिक ऊर्जा या दैवी शक्ति प्राप्त कर सकें। तीर्थ स्थलों पर देव-दर्शनों की इस सनातन परम्परा का परिणाम है कि आज भी कुम्भ मेला के अवसर पर प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिक में तथा भगवान् राम एवं कृष्ण की जन्मभूमि, जैसे- अयोध्या एवं मथुरा में लाखों-करोड़ों धर्मपिपासातुर लोग एकत्रित होकर श्रीराम-कृष्णनाम जपरूपी सर्वश्रेष्ठ यज्ञ और प्यस्विनी नदियों के पवित्र जल में स्नान कर तथा उसके जल का पान कर अपनी मनःकामना पूरा करते हैं और इस सुखमय साधन से सहज ही में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - ये चारों फल विशेष रूप से अपने विश्वास, प्रेम और नाम बल पर प्राप्त करते हैं। माघ महीने में प्रयाग में त्रिवेणी के तट पर, जब अगणित धर्मशील धर्मात्मा, धर्माचार्य, धर्माधिकारी, धर्माध्यक्ष पर्णकुटी बनाकर दारूण ठण्ड में, ये साधनाव्रती एक माह तक निवास करते हैं, तब इन्हें 'कल्पवासी' कहा जाता है, क्योंकि ये 'कल्पवासी' माघ में महीने भर त्रिवेणी तट पर संयम और नियम के साथ वास करते हैं एवं तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं जिसे 'कल्पवास' कहते हैं। सचमुच में ये लोग ईश्वरोन्मादी होते हैं। तभी तो एक रामोन्मादी भक्त एक तीर्थस्थल (काशी) का सेवन करने के सन्दर्भ में कहता है -

सेइअ सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलिकासी।
समानि सोक-संताप-पाप-रुज, सकल सुमंगल-रासी।।
मरजादा चहुँओर चरनबर, सेवत सुरपुर-बासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम, सिवलिंग अमित अबिनासी।।
चारित चरित करम कुकरम करि, मरत जीवगन धासी।
लहत परमपद प्य पावन, जेहि चहत प्रपंच उदासी।।
कहत पुरान रची के सब निजकर-करतूति कला-सी।
तुलसी बसि हरपुरी रामजपु, जो भयो चहै सुपासी।।

देखें श्रीगोस्वामी तुलसीदास, विनयपत्रिका, काशी-स्तुति, पद संख्या २२

फिर चित्रकूट स्तुति में उसी रामोन्मत्त भक्त की तनिक इन पंक्तियों का रसास्वादन कीजिए :

सब सोच-विमोचन चित्रकूट। कलिहरन करन कल्यान बूट।।१।।
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल। कानन विचित्र बारी बिसाल।।२।।
मंदाकिन-कालिनि सदा सींच। बरबारि, विषम नर-नारि नीच।।३।।
रस एक रहित-गुन-करम-काल। सियराम लखन पालक कृपाल।।८।।
तुलसी जो रामपद चहिय प्रेम। सेइय गिरि करिनिरुपाधि नेम।।६।। विनय पत्रिका चित्रकूट स्तुति - २३

तीर्थों में देवत्व की भावना : प्राचीन भारतीय धार्मिक चेतना में तीर्थों में देवों की श्रेष्ठता और महत्ता स्वीकार की गयी है। सर्वत्र तीर्थों को देवत्व के रूप में अभिव्यक्त किया गया तथा उसमें देवत्व के तत्व अन्तर्निहित माने गए। अस्तु तीर्थ ईश्वराधनपरक थे। तीर्थ-स्थलों में रहकर लोग देवाराधन एवं तपोमय जीवन व्यतीत कर विशिष्ट देवों से सान्निध्य स्थापित करने में अपने अस्तित्व को भूल जाते थे। तीर्थों में तपश्चर्या करके देवों से वरदान माँगना, ऋद्धि-सिद्धि एवं चारों फलों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति करना तीर्थों की महत्ता और गरिमा को प्रकट करता है। भारत के चारों कोनों पर चार धाम, सप्तपुरियाँ, द्वादश ज्योतिर्लिंग एवं द्वादश शक्तिपीठ आदि सभी तीर्थभूमि देवभूमि हैं। बद्रीनाथ, रामेश्वरम्, द्वारका एवं जगन्नाथपुरी, हरिद्वार, कन्याकुमारी, तिरुपति बालाजी, सोमनाथ, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, देवात्मा हिमालय, मथुरा, काशी, अमरनाथ, वैष्णवदेवी, ज्वालामुखी, ऋषि परम्परा का अभिनव संस्करण शान्तिकुंज आदि तीर्थों के देवत्व के बारे

में कौन नहीं जानता। ये सभी तीर्थ आध्यात्मिक शक्ति प्रवाह के ध्रुवीय केन्द्र माने जाते हैं। हिमालय का हृदय कहे जाने वाले उत्तराखण्ड में देवों एवं ऋषियों का जिस रूप में अवतरण हुआ, उनसे पुरातन काल से लेकर अब तक के सभी उच्चस्तरीय ऋषि-मुनि, साधु-महात्मा, योगी एवं सिद्धपुरुष यहाँ रहकर दिव्य एवं अलौकिक प्रेरणाओं की सुगन्ध प्राप्त करते रहे हैं। इसीलिए उत्तराखण्ड के क्षेत्र को देवों का घर अर्थात् देवघर माना जाता रहा है। बद्रीनाथ और केदारनाथ में मानों विष्णुत्व एवं शिवत्व साथ-साथ खेलता हुआ दीख पड़ता है। वह मानो पुकार कर कहता है कि हमारी सांस्कृतिक विभिन्नता में एकता निवास करती है। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इस देश की ओर से संसार की सांस्कृतिक विभिन्नता में एकता स्थापित हो सके और हम विष्णुशक्ति एवं शिवशक्ति को अच्छी तरह पहचान सकें?

भारतीय आध्यात्मिकता का गौरव और उपनिषदीय तथा पौराणिक सूझों का वैभव उत्तराखण्ड के चार छोटे धामों जैसे- गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, केदारनाथ एवं बद्रीनाथ में स्पष्ट दीख पड़ता है। इसी तरह मानसरोवर, कैलाश, अमरनाथ, क्षीरभवानी, हरिद्वार, ऋषिकेश, कुरुक्षेत्र, ब्रजमण्डल (मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, गोवर्धन, नन्दगाँव, वरसाना) प्रयाग, चित्रकूट, नैमिषारण्य, अयोध्या, विन्ध्याचल, काशी की भूमि अनादि काल से परम पावन मानी गयी है। लगता है उनके रहस्यवाद, उनके धर्म-दर्शन से युगों-युगों तक लोगों को प्रेरणा की सुगन्ध आती रहेगी।

महर्षि वादरायण व्यास ने बद्रीनाथ धाम के निकट वसोधारा स्थान पर व्यास गुफा में बैठकर सम्पूर्ण महाभारत, श्रीमद्भागवत, ब्रह्म-सूत्र एवं अन्य धर्मग्रन्थों की रचना की थी। वेद तो ईश्वरीय कृति हैं, लेकिन विषयानुसार इसका विभाजन करके वेद के संहिता का सम्पादन स्वयं महर्षि वेदव्यास ने ही किया था। उनके लेखक गणेशजी थे। कहते हैं आदिशंकराचार्य ने महर्षि वेदव्यास का इसी गुफा में दर्शन किया था। ऐसी लोकमान्यता है कि आज भी अव्यक्त रूप में महर्षि व्यास इसी गुफा में विद्यमान हैं। शरीर और मन की दिव्य शक्तियों को उभारने की योगसाधना पातंजली ने रुद्रप्रयाग स्थान पर की थी। याज्ञवल्क्य ने यज्ञ विधान का आविष्कार त्रियुगी नारायण क्षेत्र में किया था। विश्वामित्र ने आद्य शक्ति गायत्री का साक्षात्कार सप्तसरोवर स्थान में किया था। भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर उतारने की साधना गंगोत्तरी में भगीरथ शिला पर बैठकर की थी। चरक ने वनौषधियों का अन्वेषण करके आयुर्वेद का आविष्कार केदारनाथ में किया था। ऋषि वशिष्ठ का कार्य-क्षेत्र देव-प्रयाग के समीपवर्ती आश्रम में रहा। च्यवन ऋषि, कणाद ऋषि, परसुराम, महर्षि कण्व आदि अलौकिक पुरुषों का तपश्चर्या का क्षेत्र उत्तराखण्ड ही रहा है। गंगा इसी क्षेत्र में अवतरित हुईं। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के अध्याय १० श्लोक ३१ में स्वयं कहा है कि ''स्रोतसामस्मि जाह्नवि'' अर्थात् नदियों में भागीरथी गंगा मैं हूँ। भगवद् स्कन्ध ११ अध्याय १६ में वर्णित है कि ''तीर्थानांस्रोतसां गंगा'' अर्थात् तीर्थों में गंगा सबसे श्रेष्ठ है। कहा गया है कि -

तीर्थानां तु परं तीर्थ नदीनामुत्तमा नदी।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि।।

नारद तथा सप्तऋषियों ने तपस्थली हिमालय की छाया और गंगा की गोद में बनायी थी। यह भी कहा जाता है कि तपोमय जीवन व्यतीत करने के लिए भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अयोध्या से इस क्षेत्र में आये थे। कर्मपुराण (४७) में कहा गया है कि ''यत्र गंगा महाभागा स देशस्तत्तपोवनम्। सिद्धक्षेत्रन्तु तज्ज्ञेयं गंगातीरं समाश्रितम्।।''

महाभारत के बाद उत्तराखण्ड में जो तीर्थ जीर्ण-शीर्ण हो गये थे उनका पुनरुद्धार करने की प्रेरणा जगद्गुरु आद्यशंकराचार्य को हुई और उन्होंने कठिन परिश्रम कर उन तीर्थों को पुनः स्थापित किया। शंकर को यह प्रेरणा चैतन्य महाप्रभु से प्राप्त हुई। चैतन्य महाप्रभु ने वृजभूमि के विस्तृत पुण्य क्षेत्रों को अपने योग बल से पहचानकर उनका जिर्णोद्धार कराया था। आदिशंकराचार्य भी चैतन्य महाप्रभु के पदचिन्हों पर चलकर दक्षिण भारत से उत्तराखण्ड आये और यहाँ उन्होंने लुप्त देवतीर्थों को पुनर्स्थापित किया।

बद्रीनाथ में भगवान् विष्णु ने स्वयं तपस्वी का रूप धारण कर घोर तप किया था। हरिद्वार से लगभग तीन मील आगे सप्त सरोवर नामक स्थान पर गंगा के बीच में बैठकर सप्तर्षियों ने तप किया था। ब्रह्माजी ने हरिद्वार में यज्ञ सम्पादित किया था। दक्ष प्रजापति ने कनखल (हरिद्वार) में यज्ञ किया था और उनकी पुत्री सती अपने पति भगवान् शिव का अपमान सहन न करके इसी यज्ञ-कुण्ड में कूद पड़ी थीं। देव प्रयाग में वराह भगवान् का वास हुआ था। दुँढ़ प्रयाग तीर्थ में गणेशजी ने तप किया था। त्रियुगी नारायण में नारायण मन्दिर के अतिरिक्त, लक्ष्मी, अन्नपूर्णा और सरस्वती की स्थापना है। कहते हैं शिव-पार्वती विवाह भी यहीं हुआ था। उस विवाह की अग्नि एक चतुष्कोण कुण्ड में अभी तक चलती रहती है। सोन प्रयाग में मन्दाकिनी एवं वासुकी गंगा है। वासुकीगंगा का निवास इसी गंगा के तट पर था। सोन प्रयाग से आधा मील आगे वह स्थान है जहाँ शिव ने गणेश का सिर काटा था और

फिर हाथी का सिर लगाया।

केदारनाथ वह तीर्थ-स्थल है जहाँ पाण्डव अपने परिवारजनों की हत्याजनित पाप से मुक्ति के लिए प्रायश्चित-क्रम में भगवान् शिव का दर्शन करना चाहते थे। भगवान् शिव पाण्डवों से रुष्ठ थे। वे उन्हें पाप-मुक्त नहीं करना चाहते थे। पाण्डवों की दृष्टि से बचने के लिए भगवान् शंकर ने महिष का रूप धारण कर लिया और महिष दल में सम्मिलित हो गये। भगवान् शंकर को खोजने का काम पाण्डवों ने भीम के ऊपर छोड़ रखा था। भीम ने किसी तरह जान लिया कि अमुक महिष ही भगवान् शंकर हैं। वह उनके पीछे दौड़े। भीम से बचने के क्रम में भगवान् शंकर पाताल लोक में प्रवेश करने लगे। यह घटना गुप्त काशी क्षेत्र में हुई। अतः इस क्षेत्र को ऐसी संज्ञा प्राप्त है। पाताल-लोक गम्यमान भगवान् शंकर का पृष्ठभाग भीम ने पकड़ा और उन्हें दर्शन देने के लिए बाध्य कर दिया। इसके बाद लोक में महिष के पृष्ठ-भाग की पूजा होने लगी। केदारखण्ड में भगवान् शंकर के महिष रूप के पृष्ठ-भाग का विग्रह स्थापित है। चूँकि यह विग्रह महिष के पृष्ठभाग का प्रतीक है। अतः पत्थर के ढूहे के रूप में दिखाई पड़ता है।

रुद्रनाथ के समीप वैतरणी नदी बहती है। लोक विश्वास है कि यमलोक में जाते समय जीव को रास्ते में वैतरणी नदी मिलती है। गरुणपुराण में यह वर्णन आता है। कहते हैं गोपेश्वर के पास ही अग्नि तीर्थ है। कामदेव का निवास यहीं था। समाधिस्थ भगवान् शंकर की समाधि भग्न करने के अपराध में उन्हें यहीं भष्म होना पड़ा। कामदेव की पत्नी रति ने यहाँ तप किया था। इसलिए वहाँ रतिकुण्ड भी है।

रुद्रप्रयाग में नारदजी ने तप करके संगीत सिद्धि प्राप्त की थी। अगस्त मुनि ने जहाँ अपना सुप्रसिद्ध नवग्रह अनुष्ठान किया था वह उन महर्षि के नाम पर 'अगस्त मुनि' क्षेत्र कहलाने लगा। गुप्तकाशी के पूर्व मन्दाकिनी नदी के दूसरी पार राजा बलि ने तप किया था, यहीं बलिकुण्ड है। ऊखीमठ में राजा मान्धाता ने तप किया था। नन्दप्रयाग से आगे विरही नदी के तट पर सती विरह में दुःखी भगवान् शंकर ने अपने शोक को शान्त करने के लिए तप किया था।

देव प्रयाग रघुवंशीय राजा दिलीप, रघु और अज की तपस्थली रही है। महर्षि वशिष्ठ तीर्थ भी यहीं हैं। कहते हैं महर्षि वशिष्ठ ने यहीं तप किया था। कल्पेश्वर के समीप दुर्वासा ऋषि का स्थान था। जोशीमठ आदिशंकराचार्य की तपोभूमि है। यहीं उन्होंने उपनिषदों पर भाष्य लिखा। यहाँ उन्होंने ज्योतिर्पीठ की स्थापना की। बद्रीनाथ में बद्रीश्वर की स्थापना की। शंकराचार्य ने स्वयं तीर्थयात्रा की थी। वे तीर्थयात्रा के दौरान केदारनाथ, विश्वेश्वर, सोमनाथ, व्यंकटेश्वरम्, ओंकारेश्वर, महाकाल, नागेश, वैद्यनाथ, रामेश्वरम्, मल्लिकार्जुन, भीमशंकर आदि सभी तीर्थ स्थलों पर जाकर इन देवों के सामने नतमस्तक हुए थे। बद्रीनाथ की तीर्थयात्रा के दौरान उन्होंने भगवान् बदरिकेश्वर की मूर्ति का उद्धार कर बदरिकाश्रम में एक मन्दिर का निर्माण करके उसमें इस मूर्ति की स्थापना की। तीर्थयात्रा के दौरान ही वे काशी आये थे। यहाँ कई कुत्तों के साथ आते हुए एक चाण्डाल से उनकी मुठभेड़ होती है। वे उसे 'दूरं गच्छ' का आदेश देते हैं। चाण्डाल शास्त्रार्थ पर उतर आता है। आचार्य शंकर शास्त्रार्थ में पराजित हो जाते हैं। चाण्डाल स्वयं भगवान् शंकर हैं। भगवान् शंकर आदिशंकराचार्य को ब्रह्मसूत्र पर टीका लिखने की प्रेरणा देते हैं। भगवान् शंकर भाष्य लिखने का आशीर्वाद देते हैं और उनके मरण-योग को टालकर उनकी आयु में १६ वर्ष का विस्तार करते हैं। इसके बाद आचार्य शंकर प्रयाग में त्रिवेणी पर आते हैं। यहाँ उनके आने का उद्देश्य कुमारिल भट्ट से शास्त्रार्थ करना था। कुमारिल भट्ट प्रायश्चित क्रम में तुषानल में धीरे-धीरे अपने आपको जला रहे थे। उन्होंने आचार्य शंकर से कहा कि यदि उन्हें शास्त्रार्थ करना ही है तो वे माहिष्मती नगरी जाँय। वहाँ उनके शिष्य मण्डन मिश्र रहते हैं। शंकर माहिष्मती नगरी चल देते हैं। वे किन्हीं से मण्डन मिश्र का निवास स्थान पूछते हैं। लोग बताते हैं कि जिस घर के दरवाजे पर तोते इस प्रश्न पर शास्त्रार्थ कर रहे हों कि जगत् नित्य है अथवा अनित्य, वेद में स्वतः प्रमाण्य है अथवा परतः प्रामाण्य, वही मण्डल मिश्र का निवास स्थान है। आचार्य शंकर मण्डन-मिश्र के निवास-स्थान पर पहुँचते हैं। शास्त्रार्थ प्रारम्भ होता है। निर्णायिका बनती हैं मण्डल मिश्र की पत्नी भारती। भारती अपने पति और आचार्य शंकर को माला पहनाती है। यह माना जाता है कि जिसका माला सूख जायेगा वह पराजित समझा जायेगा। मण्डन मिश्र की माला सूख जाती है। वे पराजित माने जाते हैं। शर्त के अनुसार वे शंकराचार्य के शिष्य हो जाते हैं और उनका नाम हो जाता है सुरेश्वराचार्य। भारती शारदा हो जाती हैं। शारदा के नाम पर द्वारिका में शारदापीठ की स्थापना होती है।

जोशीमठ से छः मील आगे तपोवन है। कहते हैं यहाँ व्यासजी का वेदाश्रम था। शुकदेवजी का आश्रम भी यहाँ से निकटस्थ ही था। पाण्डुकेश्वर में पाण्डवों के पिताश्री राजा पाण्डु, उनकी पत्नी कुन्ती और माद्री की तपस्थली थीं। यहीं कुन्ती ने देवताओं का आह्वान करके पाँचों पाण्डवों को जन्म दिया था। यहाँ से ६ मील आगे हनुमान चट्टी है जो वृद्ध हनुमानजी की तपस्थली रही है। यहीं हनुमानजी ने भीम का अहंकार दूर

किया था। यहाँ भीम द्वारा हनुमान जी की पूँछ उठायी न जा सकी। अन्ततोगत्वा उन्होंने हनुमानजी को पहचाना और क्षमा माँगी। कर्ण प्रयाग में कर्ण ने सूर्य का आराधन करके कवच और कुण्डल प्राप्त किया था। उत्तरकाशी जमदग्नि ऋषि और परसुराम की तपस्थली रही है। परसुराम ने यहीं तप करके पृथ्वी को २१ बार अत्याचारियों से विहीन कर देने की शक्ति प्राप्त की थी। जड़-भरत का स्वर्गवास यहीं हुआ था। उनकी समाधि अब भी मौजूद है। नचिकेता की तपस्थली भी यहीं रही है। सिखधर्म के गुरु गोविन्द सिंह ने जोशीमठ के पास हेमकुण्ड में २० वर्षों तक कठोर तप किया था। स्वामी रामतीर्थ की दृष्टि से यह भू-भाग अत्यन्त सुन्दर था। पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे सिद्ध पुरुष की तपस्थली भी हिमालय क्षेत्र ही रहा है। अन्य सिद्ध पुरुषों, अवतारीय पुरुषों, महायोगियों, महायोगियों, महातपस्वियों का साधना क्षेत्र भी यहीं रहा है। कैलाश शिखर पर शिव-पार्वती आज भी विद्यमान है। ऐसी धर्मशास्त्रों की मान्यता है। इस प्रकार उत्तराखण्ड में हिमालय का भू-भाग देवों का घर है। वस्तुतः यह सम्पूर्ण क्षेत्र तपोवन है। श्रीमद्भागवत् में (स्कन्द बारह, अध्याय २) हिमालय क्षेत्र को सिद्धपुरुषों का निवास-स्थल बताया गया है। यहाँ सूक्ष्म शरीरधारी आत्माएँ विचरण करती रहती हैं, ऐसा सिद्धपुरुषों का कहना है। कहते हैं महर्षि नारद भगवान् विष्णु से वार्ता करने, विचार-विमर्श करने, स्वर्गलोक, सम्भवतः इसी पथ से जाया करते थे। पौराणिक कथा के अनुसार राजा दशरथ को इन्द्र द्वारा सहायता के लिए बुलाना अर्जुन का इन्द्रलोक जाना, दधीचि का देवगणों को अस्थि दान ये सब घटनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि स्वर्गलोक कहीं यहीं स्थित रहा होगा।

हिमालय के तीर्थों की श्रृंखला में चार परमपावन तीर्थों का उल्लेख किया जा सकता है : (१) मानसरोवर-कैलाश तीर्थ, (२) अमरनाथ, (३) यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ एवं बद्रीनाथ, तथा (४) दामोदर कुण्ड, मुक्तिनाथ और पशुपतिनाथ। ये परमपावन तीर्थ भगवान् के दिव्य धाम हैं। मानसरोवर एकावन शक्तिपीठों में एक पीठ है। कहते हैं सती की दाहिनी हथेली इसी में गिरी थी। हिमालय की पर्वतीय यात्राओं में मानसरोवर कैलाश की यात्रा ही सबसे कठिन है। महाभारत, वनपर्व ८२ तथा पद्मपुराण आदिखण्ड २१:८ में कहा गया है कि मानसरोवर में स्नान करने से मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है।

वाल्मीकीय रामायण में वर्णित है कि विश्वामित्र राम से कहते हैं, हे राम! मानसरोवर कैलास पर्वत पर ब्रह्मा की इच्छा से निर्मित है। मन से निर्मित होने के कारण इसका नाम मानस सर या मानसरोवर है। यथा-

कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं परम्।
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः।।
(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड २४:८)

कैलास हिमालय पर्वत की एक चोटी है जो मानसरोवर के उत्तर में है। मानसरोवर से कैलास की दूरी लगभग २५ मील उत्तर है।[१२] यहाँ शिव-पार्वती का निवास माना जाता है। इसीलिए इसे शिवलोक कहते हैं। श्रीमद्भागवत् (४:६) में इसे भगवान् शंकरका निवास तथा अत्यन्त रमणीय बतलाया गया है। यहाँ मनुष्यों का निवास सम्भव नहीं है। यहाँ औषधि, तप, मन्त्र तथा योग आदि उपायों से सिद्धि को प्राप्त हुए और जन्म से ही सिद्ध देवता नित्य निवास करते हैं; गन्धर्व ओर अप्सरादि सदा वहाँ बने रहते हैं।

जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः।
जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा।।
(श्रीमद्भागवत् ४:६:९)

स्कन्दपुराण, काशीखण्ड अ० १३ तथा हरिवंश अ० २०२ (दाक्षिणात्यपाठ) में इसका उद्भव विष्णु के नाभिपद्म से होना बताया गया है। देवीभागवत् तथा श्रीमद्भागवत् ५:१६:२२ में इसे देवताओं, सिद्धों तथा महात्माओं का निवासस्थल कहा गया है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने कैलास का अद्भुत वर्णन करते हुए कहा है कि कैलास भगवान् शंकर का दिव्य धाम है।

परम रम्य गिरिबर कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू।।
मानस बाल. १०५.८

सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिवृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहि सिव सुखकंद।।
मानस बालकाण्ड दोहा १०५

हरिहर बिमुख धर्म रति नाहीं। ते नर सपनेहुँ नहिं जाहीं।।
मानस बालकाण्ड १०६:१

मानसरोवर के ही निकटस्थ राक्षसताल है। कहते हैं लंकाधिपति रावण ने यहीं खड़े होकर देवाधिदेव भगवान् की आराधना की थी।

कैलास की आकृति विराट शिवलिंग जैसी है जो मानो पर्वतों के एक षोडशदल कमल के मध्य स्थित है। कैलास शिखर आस-पास के समस्त शिखरों से ऊँचा है। इसकी परिक्रमा ३२ मील की है जिसे यात्री प्रायः तीन दिनों में पूरी करते हैं। कैलास के शिखर की ऊँचाई समुद्र स्तर से २२,००० फीट कही जाती है। कैलास के दर्शन एवं परिक्रमा करने पर जो अद्भुत अनुभव होता है वह स्वयं अनुभव की वस्तु है। गूंगे के गुड़

की स्वाद की भाँति है। कैलास के शिरोभाग पर भगवान् शंकर का निवास है। अतः वे कैलासनाथ कहलाते हैं। कैलासनाथ का दर्शन मनुष्यों के लिए दुर्लभ है। ये अगोचर हैं।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा विरचित रामचरितमानस में उत्तरकाण्ड दोहा ६१ के बाद की चौपाइयों थीं- 'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किये जोग तप ज्ञान विरागा।।१।। उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह कागभसुंडि सुशीला।।२।। राम भगति पथ परम प्रवीना। ज्ञानी गुन गृह बहुकालीना।।३।। रामकथा सो कहइ निरन्तर। सोदर सुनहिं विविध विहंग बर।।४।।' में कहा गया है उत्तर दिशा में एक सुन्दर नील पर्वत है। वहाँ सुशील काकभुशुण्डिजी रहते हैं जो रामभक्ति मार्ग में अत्यन्त प्रवीण हैं, ज्ञानी हैं, गुणधाम हैं और बहुत काल के (पुराने) हैं। वे निरन्तर श्रीरामचन्द्रजी की कथा कहते हैं और तरह-तरह के अनेक सुन्दर श्रेष्ठ पक्षी आदर सहित सुनते हैं। मानसकार इसे अपनी इस रचना में पहिले (५६:७) में भी कह आये हैं। 'गिरि सुमेरू उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुन्दर भूरी।।' (५६:७) जो पार्वती जी से कहा था वही यहाँ भी कह रहे हैं। भारतवर्ष के दक्षिण में भी एक नील गिरि है। उसका ग्रहण न हो इसलिए उत्तर दिसि लिखते हैं। 'दूरि' लिखने का भाव यह है कि भारत वर्ष के उत्तर किंपुरुषवर्ष है और उसके भी उत्तर हरिवर्ष है और उससे भी उत्तर इलावृतवर्ष है, जिसके मध्य में मेरुपर्वत है। इलावृत्त के बाद रम्यकवर्ष पड़ता है। इलावृतवर्ष और रम्यकवर्ष की सीमा नीलगिरि है। इन पर्वतों की द्रोणियाँ भौमस्वर्ग कलाती है, वे धर्मात्माओं के निवास स्थान हैं। वहाँ पापी किसी तरह पहुँच नहीं सकते। यथा- "शैलानामन्तरे द्रोणाः सिद्धवारणसेविताः। भौमा ह्यते स्मृताः स्वर्गा धर्मिणामालया मुने। नैवेषु पापकर्माणो यान्ति जन्मषतैरपि।।" काकभुशुण्डिजी का यह परम पवित्र आश्रम अगोचर है। अभी भी यह खोज की वस्तु है।

भारत में ऐसे अनेक दिव्य आश्रम, दिव्य स्थल हैं जहाँ अविद्या-माया नहीं जाती। यथा- जेहि आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत। व्यापिहि तहँ न अविद्या जोजन एक प्रजंत।।' अस्तु भारतवर्ष में ऐसा कोई तीर्थ नहीं है जहाँ जाने से अबिरल भक्ति प्राप्ति न होती हो। ऐसे तीर्थों में परमात्मा या ईश्वर का वास होता है। इसमें कोई दो राय नहीं है। ऐसे तीर्थों को देखकर, ऐसे तीर्थों में स्थित सर, नदी, समुद्र आदि में स्नान-जलपान करने से मानव का मोह, अनेक प्रकार के संशय और भ्रम दूर हो जाते हैं। वहाँ के मन्दिरों में देवों का दर्शन अत्यन्त पवित्र और दुःख-समूह का नाश करने वला होता है। यथा- 'नाथ कृतारथ भएऊँ मैं तब दरसन खगराज।' देखिये श्रीभरद्वाजजी श्रीभरतजी से क्या कहते हैं - 'सब साधन कर सुफल सुहावा। लषन राम सिय दरसन पावा।। तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा' (२:२१०)। इससे स्पष्ट है कि तीर्थों में सर्वत्र देवत्व की भावना झलकती है।

इस प्रकार हमारे देश के तीर्थों में लोकोत्तर अध्यात्मिक विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। यहाँ का प्रत्येक प्रदेश, नगर और ग्राम तक में तीर्थ विद्यमान हैं और प्रत्येक तीर्थ में देवताओं का वास है। यह देव-प्रधान तीर्थों की ही विशेषता है कि भारतीय मनुष्य तीर्थ-वास और तीर्थ-यात्रा से जिस आध्यात्मिक वास को लेकर आता है उसके सुवास से दूसरे व्यक्ति भी उसी तरह सुवासित हो जाते हैं, जिस प्रकार एक दीप से सहस्रों दीप प्रज्वलित हो जाते हैं। कहना न होगा कि भारत के सभी छोटे-बड़े सहस्रों तीर्थ आज धर्म और आध्यात्मिक साधना के विद्यापीठ बने हुए हैं और सच्चे तीर्थयात्री एक कुशल अध्यापक के रूप में लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में महनीय भूमिका अदा करते हैं। स्कन्दपुराण में इस रहस्य का उद्घाटन करते कहा गया है :

तीर्थानामपि तत्तीर्थे विशुद्धिर्मनस परा।

इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि तीर्थयात्री का मानस मल-विक्षेप आवरण के निराकरण की भूमिका में रहता हुआ धीरे-धीरे निःश्रेयस के पथ का पथिक बन जाता है और इस पथिक का भगवान् के चरण-कमलों में अविचल व निरन्तर प्रेम अर्थात् - तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुन्दर।। प्रस्फुटित हो जाता है। कहना न होगा कि इसी प्रेम-वारि से आभ्यंतरिक मल का नाश होता है और जो इस प्रेम-वारि से स्नान करता है, वह सारे संसार को तीर्थमय कर देता है। पद्मपुराण में बहुत ही सुन्दर शब्दों में कहा गया है -

तीर्थानां च परं तीर्थ कृष्णनाम महर्षयः।
तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतंकृष्णनाम यैः।।

पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड, ५०:१७

तभी तो मानसकार ठोक-ठोककर चेतावनी देते हैंः

तीरथ अमित कोटि सम पावन।
नाम अखिल अध पूग नसावन।। मानस उत्तरका. ९२:२

अस्तु यह तीर्थ लोक-परलोक दोनों को निवाहने वाला तथा सब सिद्धियों को देने वाला है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण (३:२७३:७ एवं ८) ने बहुत ही स्पष्ट कहा है कि जब तीर्थ यात्रा की जाती है तो पापी के पाप कटते हैं। सज्जन की धर्मवृद्धि होती है, सभी वर्णों एवं आश्रमों के लोगों को तीर्थ फल देता है।[१३]

सन्दर्भ

१. स हरिर्ज्ञायते साधुसंगमात् पापवर्जितात्। येषां कृपातः पुरुषा भवन्त्यसुखवर्जिताः।। ते साधवः शान्तरागाः कामलोभविवर्जिताः। बुवन्तिं यन्महाराज तत् संसारनिवर्तकम्।।
तीर्थेषु लभ्यते साधू रामचन्द्रपरायणः। यद्दर्शनं नृणां पापराशिदाहाशुशुक्षणिः।।
तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसारभीरुभिः। पुण्योदकेषु सततं साधुश्रेणिविराजिषु।।
पद्मपुराण, पातालखण्ड १९:१०-१२, १४-१७

२. सुरर्षे त्वं हि धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः।
साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम्।।
श्रीमद्भागवत महापुराण, १:७९

३. यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः। तथा पृथिव्या उद्देशाः केचित पुण्यतमाः स्मृताः।।
प्रभावादद्भुताद भूमेः सलिलस्य च तेजसा। परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृताः।।
पद्मपुराण (उत्तर खण्ड) २३७:२५-२७

४. मुख्या पुरुषयात्रा हि तीर्थयात्रानुषंगतः। सद्भिः समाश्रितो भूप भूमिभागस्तथोच्यते।।
स्कन्ध पुराण १:२१

५. इदमापः प्रवहत यहिके च दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्।।
ऋग्वेद १०:९:८

६. देखिए : वनपर्व (८२:९-१२), तीर्थकल्पतरु (पृ. ४-५), तीर्थप्रकाश (पृ. १३), और देखिए वनपर्व (९२:११ एवं ९३:२०-२३)। ये वनपर्व के श्लोक पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, २३७:३०-३२) में आये हैं; सभी स्कन्दपुराण (काशीखण्ड ६:४८-५१) में उद्धृत हैं।

७. देखिए : वायुपुराण (७७:१२५ एवं १२७); तीर्थकल्पतरु (पृ. ५-६); वाचस्पतिकृत तीर्थचिन्तामणि (पृ. ४); ये श्लोक स्कन्दपुराण (काशीखण्ड, ५९:५२-५३) में भी आये हैं।

८. पापानां पाशमनं धर्मवृद्धिस्तथा सताम्। विज्ञेयं सेवितं तीर्थं तस्मात्तीर्थपरो भवेत्।।
सर्वेषामेव वर्णानां सर्वाश्रमनिवासिनाम्। तीर्थं फलप्रदं ज्ञेयं नाम कार्या विचारणा।।
विष्णुधर्मोत्तर पुराण (३:२७३-७ एवं ९)

९. षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च। तीर्थान्येतानि...............।। गणितानि समस्तानि वायुना जगदायुषा। ब्रह्मणा लोमशेनैव नारदेन ध्रवेण च।।
जाम्बवत्याश्च पुत्रेण नारदेन हनूमता। क्रमिता वालिना चैव बाह्यमण्डलरेखया।। अन्तरा भ्रमणेनैव सुग्रीवेण महात्मना। तथा च पूर्व देवेन्द्रैः पंचभिः पाण्डनन्दनैः।।
योगसिद्धैस्तथा कैश्चिन्मार्कण्डेयुमुखैरपि।
वाराहपुराण १५९:७-११

१०. चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। देवानि मुनिशार्दुल आसुराण्यारुषणि च।।
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः। ब्रह्मविष्णु शिवैर्देवै निर्मितं देवमुच्यते।।
ब्रह्मपुराण ७०:१९-१९
देखिए तीर्थप्रकाश, पृ० १८, जिसमें ब्रह्मपुराण ७०:३०-३५ में उल्लिखित १२ नदियों अर्थात् देवतीर्थों के नाम दिये गये हैं।

११. चतुर्थविधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। वैवानि मुनिशार्दूल आसुराण्यारुषाणि चा।।
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः। ....ब्रह्मविष्णुशिवैर्देवेनिर्मितं दैवमुच्यते।। ब्रह्मपुराण (७०:१९-१९); तीर्थप्रकाश (पृ. १८, जिसमें ब्रह्मपुराण ७०:३०-५५ में उल्लिखित १२ नदियों अर्थात् देवतीर्थों के नाम दिये गये हैं)। तीर्थों की व्याख्या के लिए देखिए ब्रह्मपुराण (७०:३३-४०)।

१२. महाभारत, वनपर्व, १३९:४१ (६ योजन ऊँचा) १५३:१, १५८:१५-१८, मत्स्यपुराण १२१:२-३, ब्रह्माण्डपुराण, ४:४४:९५

१३. पापानां पापशमनं धर्मवृद्धिंस्तथा सताम्। विज्ञयं सेवितं तीर्थ तस्मात्तीर्थपरोभवेत्।। सर्वषामेव वर्णानां सर्वाश्रमनिवासिनाम्। तीर्थ फलप्रदं ज्ञेयं नाम कार्या विचारणाः।।
विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३:२७२:७ और ९)

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

प्रोफेसर ए.के. सेन का आर्थिक चिंतन और उसकी भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए प्रासंगिकता

❑ **डॉ. ओ.पी. मिश्र**

अर्थशास्त्र के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले पहले भारतीय प्रोफेसर अमर्त्य सेन, जिन्हें भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से भी सम्मानित किया गया, एक महान अर्थशास्त्री होने के साथ-साथ एक महान मानवतावादी विद्वान हैं। उन्होंने लोक-कल्याणकारी अर्थशास्त्र में अवधारणा का प्रतिपादन किया इस नाते उन्हें कल्याणकारी अर्थशास्त्र का जनक कहा जाता है। प्रोफेसर सेन ने लोकतंत्र, गरीबी, भूख, आकाल, उपेक्षित लोगों, शिक्षा, स्वास्थ्य संसाधनों का वितरण, स्त्री-पुरूष समानता आदि विषयों पर अनेक पुस्तकें तथा सैंकड़ों शोध पत्र लिखे जो विश्व की ख्याति प्राप्त पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। प्रस्तुत लेख प्रोफेसर सेन के आर्थिक चिंतन और भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए उसकी प्रासंगिकता को उजागर करने का एक प्रयास है।

प्रोफेसर अमर्त्य कुमार सेन भारत के पहले अर्थशास्त्री हैं जिन्हें १९९८ में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उनके गरेवान की लौट पर अंकित था "The Royal Swedish Academy of Sciences has decided to award the 1998 Bank of Sweden Prize in Economic Science in Memory of Alfred Nobel to Professor Amartya Sen, Trinity College, U.K. (Citizen of India) for his contribution to welfare Economies. प्रोफेसर सेन के पूर्व भी कल्याणवादी अर्थशास्त्र का प्रतिपादन ''प्रोफेसर एलफ्रेड मार्शल, जॉन ए.हाब्सन, प्रोफेसर आर्थर सेसिल पीगू ने अपने ग्रन्थों क्रमशः 'Principles of Economics', 'Economics and Ethics' तथा 'The Economics of Welfare' में किया था किन्तु वह विवेचन बहुत स्पष्ट और व्यापक नहीं था। प्रोफेसर सेन के कल्याणकारी अर्थशास्त्र का प्रतिपादन और विश्लेषण इतना व्यापक है कि वह विश्व की प्रत्येक अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी है। इसीलिए नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रोफेसर रोबर्ट सोलो ने उन्हें अर्थशास्त्र का अन्तःकरण 'Conscience of Economics' कहा और विश्व के अद्धोन्नत देशों में उन्हें गरीबों का अर्थशास्त्री माना गया। सन् १९३० में सी.वी. रमन को प्रकाश के विकिरण के लिए विज्ञान में नोबेल पुरस्कार मिला था। सेन को १९९८ में समृद्धि के विखराब के लिए उक्त पुरस्कार मिला। उनके आर्थिक दर्शन का लक्ष्य है कि समृद्धि का ऐसा विकिरण/उजाला हो जो हर घर का अंधेरा मिटाए।

उक्त प्रतिष्ठित पुरस्कार अमर्त्य सेन को पूर्व में प्राध्यापन और प्रकाशित साहित्य (२० ग्रन्थ) से अर्जित प्रतिष्ठा के आधार पर मिला था। ट्रिनिटी कॉलेज से पीएच.डी. पाने के बाद वे १९५६-५८ में जादवपुर विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर, १९५७-६३ में ट्रिनिटी कॉलेज में फेलो, १९६३-७१ की अवधि में डेल्ही स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के प्रोफेसर, १९७१-७७ में लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के प्रोफेसर, १९७७-८० न्यूफील्ड कॉलेज, ऑक्सफोर्ड में प्रोफेसर १९८०-८७ में डुमन्ड प्रोफेसर ऑफ पॉलीटीकल इकानोमी, आक्सफोर्ड, १९८७-९८ में लैमन्ड प्रोफेसर ऑफ इकानोमिक्स एण्ड फिलॉस्फी, हारवर्ड वि.वि. और १९९८ में मास्टर, ट्रिनिटी कॉलेज रहे थे। १९७० में उनका प्रथम महत्वपूर्ण ग्रन्थ Collective Choice and Social Welfare प्रकाशित होते ही वे विद्यार्थियों, विद्वानों और नीति निर्माताओं के बीच आदर के पात्र हो गए। उन्होंने सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों जे. के. गालब्रेथ, पॉल सैमुअल्सन और सोलो के बीच अपना स्थान बना लिया। प्रोफेसर सेन पर भारतीय दर्शन का प्रभाव पड़ा था। उन्होंने अर्थशास्त्र पर एक ऐसी दृष्टि से चिंतन किया जो दृष्टि पश्चिम के पास नहीं हैं। पश्चिम का आर्थिक चिंतन मानवीय मूल्यों को कोई स्थान नहीं देता। वहां आवश्यकता से अधिक अंडो पर रोड रोलर चलाया जाता है और अतिरिक्त अनाज समुद्र में डलवा दिया जाता है। पश्चिमी देश अपनी समृद्धि में विश्व के गरीब देशों को भागीदार भी बनाना नहीं चाहते। जिसे सहायता (Aid) कहा जाता है वह ऋण (Loan) होता है जिसका भुगतान विकासोन्मुख देशों को करना पड़ता है। प्रोफेसर सेन का मत है कि अकाल, भुखमरी, कुपोषण आदि प्राकृतिक समस्याएं नहीं हैं। यह समस्याएं

❑ **सेवा निवृत्त प्राचार्य, सी.जी.एम. (पी.जी.) कालेज सीतापुर (उ.प्र.)**

आधुनिक अर्थशास्त्र की देन हैं।

व्यक्ति की गरिमा न पूंजीवादी देशों और न समाजवादी देशों में सुरक्षित है। प्रोफेसर सेन का आर्थिक चिन्तन ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः'' के उदात्त तथा मानवतावादी आदर्श पर आधारित है। वे व्यक्ति को केवल पेट ही नहीं बल्कि मन, मस्तिष्क और हृदय भी मानते हैं। उनका मत है कि व्यक्ति को केन्द्र बिन्दु मानकर उसके सर्वांगीण विकास की व्यवस्था करना अर्थशास्त्र का लक्ष्य और अर्थशास्त्री का दायित्व है।

१६७० में प्रकाशित 'Collective Choice and Social Welfare' में उन्होंने बताया कि आर्थिक निर्णय सामूहिक पसंद से होने चाहिए क्योंकि वे व्यक्तियों के अधिकार क्षेत्र के अनुरूप होते हैं। इससे विकास में सभी का सहयोग प्राप्त होता है और व्यक्ति का गौरव अक्षुण्ण रहता है। प्रजातंत्रात्मक देशों में ऐसा आसानी से हो जाता है किन्तु जहां प्रजातंत्र के स्थान पर शासन की अन्य पद्धति है वहां थोड़े से व्यक्तियों द्वारा निर्णय होते हैं और वे जनता पर थोप दिए जाते हैं। १६७३ में उनकी पुस्तक 'On Economic Inequality' प्रकाशित हुई। उन्होंने बताया कि आर्थिक असमानता आर्थिक विकास में बाधा डालती है और समाज में अमीर और गरीब के बीच खाई उत्पन्न होने से देश की एकता और प्रभुसत्ता के समक्ष प्रश्नचिन्ह लग जाता है। असमानता की डिग्री जानने के लिए यह भी जरूरी है कि गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों के मध्य असमानता की जानकारी प्राप्त की जाएं। इसे सेन इंडेक्स की संज्ञा दी गई है।

प्रोफेसर सेन ने अपनी पुस्तक 'Choice of Techniques' में विकासोन्मुख देशों के लिए उत्पादन हेतु उपयुक्त तकनीक पर भी विचार किया। उन्होंने सुझाव दिया कि जिन देशों में जनसंख्या अधिक है उन्हें श्रमपरक तकनीक (Labour-Intensive Technique) को अपनाना चाहिए। ऐसे देश अर्धबेकारी और छद्‌म बेकारी से भी ग्रस्त हैं। इन स्थितियों को उन्होंने निम्नलिखित दो रेखाचित्रों द्वारा स्पष्ट किया:-

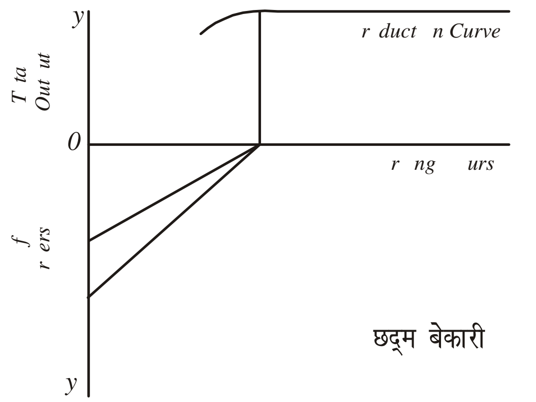

छद्‌म बेकारी

OY अक्ष पर कुल उत्पादन और OY' अक्ष पर श्रमिक संख्या चिन्हित है। श्रमिकों की संख्या N' से बढ़ाकर N" की गई है। इसके बावजूद कुल उत्पादन OL ही रहता है। समानान्तर उत्पादन वक्र भी यही बताता है।

निम्नलिखित रेखाचित्र में अर्धबेकारी को प्रदर्शित किया गया :-

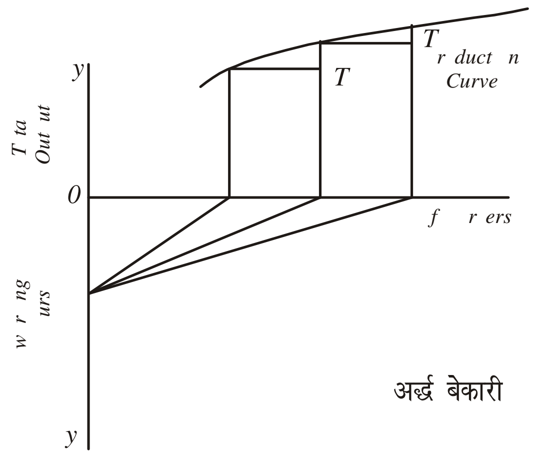

अर्द्ध बेकारी

श्रमिकों की संख्या बढ़ने पर उनकी सीमान्त उत्पादकता घटी है। श्रमिक को उनकी शक्ति भर काम नहीं मिला। बहुत धीरे से ऊपर जाता उत्पादन वक्र इसी दशा का संकेतक है। P'T' का क्षेत्र PT से कम है।

१६८१ में सेन की पुस्तक 'Poverty and Famines : An Enquing on Entitle and Deprivation' से गरीबी और अकाल पर चिंतन की दिशा बदल गई। १६४३ में पड़े बंगाल

के अकाल को उन्होंने अपनी किशोरावस्था में देखा था। उस अकाल में ३० लाख लोग मरे थे। उस समय सेन अकाल पीड़ितों के दर्द का ही अनुभव कर सके थे, उसका समाधान बताने का ज्ञान नहीं था। १९५९-६१ में चीन में अकाल पड़ा जिसमें ३ करोड़ लोग अकाल काल कवलित हुए। १९७२-७४ में इथोपिया तथा १९७४ में बंगलादेश में अकाल पड़ा। उस समय अर्थशास्त्रियों की धारणा थी कि अन्नाभाव के कारण अकाल पड़ते हैं। प्रोफेसर सेन ने इस धारणा का खण्डन किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि अकाल तब भी पड़ते थे जब खाद्यान्नों का उत्पादन यथेष्ठ था। कई बार सूखे की स्थिति में किसान अपनी फसल बेंच नहीं सकते थे और गांव/शहर में रहने वालों को काम नहीं मिलता था। पैसे के अभाव में किसानों और मजदूरों का भूखों मरना स्थावाभिक था।

परम्परागत विचार से हटकर प्रोफेसर सेन ने बताया कि अकाल खाद्यान्नों के दोषपूर्ण वितरण, खाद्यान्नों के निर्यात और बेकारी के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। यदि सरकार खाद्यान्नों को अतिरिक्त क्षेत्र से लेकर अभाव क्षेत्र में आवश्यकतानुसार वितरित कर दे और करती रहे तो अकाल पड़ने की सम्भावना कम हो जाएगी और यदि अकाल पड़ गया है तो अकाल की भयंकरता कम हो जाएगी। केन्द्र या प्रदेश सरकारें अकाल को नजरअंदाज करते हुए (यह गैर-प्रजातांत्रिक देशों में सम्भव है) धनार्जन के लिए दूसरे देश या अपने ही देश के दूसरे प्रदेश/प्रदेशों को खाद्यान्न का निर्यात करती हैं तो अकाल की भयावहता बढ़नी स्वाभाविक है। विश्व का १/२ से अधिक भाग गरीबी, बेकारी और गंदगी से ग्रस्त है। सेन का मत है कि ऐसे देशों को अपनी जनसंख्या वृद्धि गति कम करनी चाहिए, उत्पादन हेतु श्रमपरक तकनीक अपनानी चाहिए और देशवासियों में विकास की इच्छा को जागृत करना चाहिए। प्रोफेसर लेविस ने अपनी पुस्तक 'Theory of Economic Growth' में विकास के लिए विकास की इच्छा (Desire to Develop) पर बल दिया है। इसी कारक के बल पर द्वितीय विश्वयुद्ध में ध्वस्त जर्मनी और जापान जैसे देश आज तनकर खड़े हैं। यदि देश विकसित है तो बाढ़ और सूखे की स्थितियों में भी नागरिकों के पास क्रयशक्ति होगी और वे खाद्यान्न जुटाने में सक्षम होंगे। आजादी पाने तथा आर्थिक नियोजन अपनाने के बाद भारत में अकाल नहीं पड़ा क्योंकि आर्थिक विकास से मध्यम वर्ग और निम्नवर्ग की आय/क्रयशक्ति बढ़ी और वे खाद्यान्न खरीदने में समर्थ रहे। बंगाल का १९४३ में जैसा अकाल स्वतंत्र भारत में नहीं पड़ा। स्पष्ट है कि आर्थिक विकास और अकाल में नकारात्मक सम्बन्ध होता है।

प्रोफेसर सेन का मत है कि अकाल की स्थिति से निपटने में मीडिया और विपक्षी दल की सक्रिय भूमिका रहती है। जहां शासन की प्रजातांत्रिक पद्धति है वहां अकाल से आसानी से लड़ा जा सकता है किन्तु जहां अधिनायकवादी और साम्यवादी शासन पद्धति होती है वहां अकाल से लड़ना आसान नहीं होता है। प्रजातंत्रात्मक देशों (अमेरिका और भारत) में यदि कहीं बाढ़, भूकंप और सूखे के कारण अकाल की सम्भावना दिखती है तो वहां का प्रिंट और इलेक्ट्रिक मीडिया (समाचार पत्र, रेडियो और टीवी) सक्रिय हो जाता है। सोती सरकार जाग जाती है और प्राकृतिक आपदाओं के शमन हेतु पूरे मन से प्रयास करती है। प्रोफेसर सेन ने अकाल के निराकरण में सरकार के विपक्षी दल की भूमिका को भी सराहा है। बाढ़, सूखा आदि की स्थिति में विपक्षी दल सरकार का ध्यान आकृष्ट करता है और यदि सरकार कोई कदम नहीं उठाती है तो विपक्ष संसद या विधानसभा चलने नहीं देता। १.५-२ वर्ष पूर्व उत्तराखण्ड में जल प्रलय के समय विपक्ष ने ऐसी ही सशक्त भूमिका निभाई थी।

१९९१ में भारत ने नई आर्थिक नीति अपनाई। प्रोफेसर सेन ने इसका विरोध नहीं किया। उन्होंने बताया कि इस नीति का लाभ अधिकतम व्यक्ति तभी उठा सकते हैं जब देश में शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, भूमि सुधार, सामाजिक सुरक्षा, पोषण, लैंगिक समानता को बढ़ावा मिले। इससे व्यक्ति इतना सक्षम हो जाएगा कि वह सरकारी योजनाओं का लाभ उठा सकेगा और प्रतिस्पर्धा में ठहर सकेगा। संक्षेप में मानव पूंजी का विकास नहीं आर्थिक नीति की सफलता की प्रथम और प्रमुख शर्त है। जिन देशों में शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की सुविधाओं पर ध्यान दिया वे सशक्त देश हो गए। चीन, जापान, ताइवान, सिंगापुर आदि ऐसे ही देश हैं। भारत और पाकिस्तान के द्वारा ऐसा न करने पर नई आर्थिक नीति आशानुकूल सफल नहीं हो सकी।

प्रश्न उठता है कि प्रोफेसर सेन का अर्थशास्त्र भारत के लिए कितना प्रासांगिक और उपयोगी है? यह दुर्भाग्य का विषय है कि देश में इतने बड़े अर्थशास्त्री की सेवाएं नहीं ली गई। पाकिस्तान ने अपने महान अर्थशास्त्री मकबूल-उल-हक की प्रतिभा का लाभ उठाया। यदि पिछली और वर्तमान केन्द्र की सरकार ने इन्हें वित्त मंत्री बनाया होता तो देश की नई आर्थिक नीति ज्यादा सफल होती और हम विकसित देशों की पंक्ति में आ खड़े होते।

हमारे देश में बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, असम आदि ऐसे

प्रदेश हैं जहां खाद्यान्न का अभाव रहता है। कभी-कभी वहां के अति पिछड़े वर्ग के लोग, चूहा, सांप, खरगोश आदि खाने को विवश होते हैं। यदाकदा भोजन के लिए मारकाट होती है। बच्चों के लिए बने दोपहर के भोजन के लूट लिए जाने के समाचार भी प्रकाशित हुए हैं। प्रोफेसर सेन के सुझाव के आधार पर केन्द्र सरकार पंजाब और हरियाणा से खाद्यान्न को वहां भेजे। भूखे लोग शांत नहीं बैठते।

प्रोफेसर सेन ने बताया कि भारत उत्पादन बढ़ाने के लिए पूंजी परक तकनीक को कम महत्व तथा श्रम परक तकनीक को अधिक महत्व दे। उद्योगों में ही नहीं खेती में भी यंत्रीकरण बढ़ा है। खेतों की जुताई, फसल की सिंचाई, निराई, कटाई, मढ़ाई आदि यंत्रों से हो रही है। दुष्परिणाम यह हुआ कि गोवंश कम हो रहा है, भूमि की उर्वरा शक्ति क्षीण हुई है और परिवार के सदस्यों के लिए काम नहीं रह गया है। कृषि में अर्द्ध और छद्म बेकारी है।

भारत में नई आर्थिक नीति ने अनेक समस्याएं उत्पन्न की हैं। कृषि की उपेक्षा के कारण किसानों को काफी ऊँचा प्रतिशत का कर्जदार बना दिया है। लगभग ४ लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं। ४८ प्रतिशत किसान कृषि छोड़ने की मुद्रा में हैं। यदि कृषि और भूमि सुधार पर ध्यान दिया गया होता तो यह स्थितियाँ इतनी भयानक न होतीं।

प्राफेसर सेन के सुझाव के आलोक में शिक्षा के अवसरों में वृद्धि की जाय। शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने की भी आवश्यकता है। भले ही स्नातक तथा परास्नातक डिग्रीधारी हों किन्तु उनमें कोई कौशल नहीं हैं। प्रोफेसर सेन ने अपने आर्थिक चिन्तन में बताया कि भारत में स्वच्छता तथा स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि की जाए क्योंकि स्वस्थ व्यक्ति ही अधिक उत्पादन दे सकता है। प्रोफेसर सेन ने नारी सशक्तीकरण और लैंगिक समानता का सुझाव दिया है ताकि नारियाँ विभिन्न क्षेत्रों:- शिक्षा, चिकित्सा, पुलिस, प्रशासन, सेना आदि में अपना योगदान देकर भारत को आगे बढ़ा सकें।

प्रोफेसर सेन के आर्थिक चिन्तन में आंकड़ों पर नहीं आदमी पर बल है। भूखे, नंगे, बेकार और वंचित हमारी दया के पात्र नहीं हैं। वे भी विकास के लाभों के हकदार हैं। हमारी योजनाओं के केन्द्र बिन्दु ऐसे ही व्यक्ति होने चाहिए ताकि वे भी भारत की सम्पत्ति में अपनी साझेदारी समझें।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सेन का आर्थिक चिन्तन मानवतावादी है, कल्याणकारी है। उनके आर्थिक विचारों की उपयोगिता को हमारे नीति नियंत्रकों को समझना होगा क्योंकि उन पर अमल करना देश के लिए में होगा।

सन्दर्भ

1. Marshall, Alfred, 'Principles of Economics', Mac Millan & Co. London, 1920.
2. Hobson John A., 'Economics and Ethics', Heath & Co., Midigam, 1929.
3. Pigou A.C., 'The Economics of Welfare', Mac Millan & Co. London, 1920.
4. Sen, A.K., 'Collective Choice and Social Welfare', Holden Day, San Francisco, 1970.
5. Sen, A.K., 'On Economic Inequality', Oxford University Press, 1973.
6. San, A.K., 'Choice of Techniques', Oxford University Press, 1968.
7. Sen, A.K., 'Poverty and Famines', Oxford University Press, 1998
8. Lewis W.A., 'The Theory of Economic Growth', Taylor & Frances London, 2003.
9. San, A.K., 'Noble for Empowerment', The Economic Times, Vol. 38, NO. 193, Oct. 15, 1998.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

पूर्व मध्यकालीन भारत में कृषक संबंध (650-1200 ई.)

❑ डॉ० आशा कुमारी

'कृषक संबंध' का अभिप्राय सामाजिक-आर्थिक विकास के क्रमिक सोपानों में कृषि उत्पादन की प्रकृति एवं प्रकारों के निरूपण से है जिसमें कृषकों की भूमिका का सर्वांगीण विश्लेषण अपेक्षित है। पूर्व मध्यकालीन कृषक संबंध कृषि व्यवस्था में उत्पादन, वितरण, तथा उपभोग की एक विशिष्ट पद्धति से प्रभावित थे जिसे सामंतवादी व्यवस्था कहा जा सकता है जो मुख्य रूप से कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था में प्रकट होता है जिसमें एक वर्ग भूमिपतियों का होता है तथा दूसरा पराधीन किसानों का। इस व्यवस्था के अधीन भूमिपति सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक उपायों से, जिन्हें गैर-आर्थिक उपाय कहा जाता है, अतिरिक्त उत्पादन को हड़प लेते हैं। यह व्यवस्था सोपानबद्ध सम्पत्ति के स्वामित्व की जटिल संरचना को जन्म देती है जिसके निम्नतम स्तर पर कृषिदास तथा कृषक होते हैं। प्रस्तुत आलेख पूर्व मध्यकालीन भारत में इन्हीं कृषक-संबंधों के विस्तृत विश्लेषण का एक प्रयास है।

'कृषक संबंध' का अभिप्राय सामाजिक-आर्थिक विकास के क्रमिक सोपानों में कृषि उत्पादन की प्रकृति एवं प्रकारों के निरूपण से है जिसमें कृषकों की भूमिका का सर्वांगीण विश्लेषण अपेक्षित है। कार्ल मार्क्स[१] और एंजिल्स[२] ने सामाजिक विकास को उसके उत्पादन पद्धतियों से चिन्हित कर ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में हुए परिवर्तनों से सम्बद्ध कर विश्लेषित करने का प्रयास किया है। विश्लेषण की इस पद्धति को उन्होंने ऐतिहासिक भौतिकवाद की संज्ञा दी है तथा इसको ही उन्होंने 'इतिहास का वैज्ञानिक निरूपण' कहा है।[३] उत्पादन पद्धति को उत्पादन शक्तियों और उनके मध्य व्याप्त परस्पर उत्पादन सम्बन्धों और अधिशोषण के सभी क्रियाशील प्रकारों के समेकित स्वरूप से परिभाषित किया जा सकता है।[४] कार्ल मार्क्स के प्रसिद्ध कथन जिसमें उन्होंने समाज, उत्पादन पद्धति, उत्पादन सम्बन्ध और संस्थागत शोषण को निरूपित किया है निम्नवत् समझा जा सकता है - ''मानव समूह को तभी समाज कहा जा सकता है जबकि उस समूह के सभी सदस्य किसी न किसी प्रकार से एक दूसरे से जुड़े हों। यह सम्बन्ध वांशिक न होकर इस पर निर्भर हों कि वह व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप में कुछ उत्पादित करते हों तथा उत्पादित वस्तुओं का परस्पर विनिमय करते हों। किसी समाज को यह विशिष्टता देता है कि वह किस वस्तु को आवश्यक मान उसका संग्रहण अथवा उत्पादन करता है, किन औजारों से? दूसरों के उत्पादन का कौन उपभोग करता है?और किस अधिकार से, दैवीय अथवा वैधानिक?सम्प्रदाय और कानून सामाजिक सह-उत्पाद हैं। उत्पादन के यन्त्रों, भूमि तथा कभी उत्पादक के तन और आत्मा पर किसका स्वामित्व है? अधिशेष उत्पादन के वितरण पर किसका नियंत्रण है, जो आपूर्ति की मात्रा और प्रकार को भी नियमित करता है। समाज को उत्पादन के यही बंधन एक साथ संगठित करते हैं''[५] पुनश्चः, अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए आवश्यक संसाधनों के माध्यम से किए जाने वाले सामाजिक उत्पादन के संदर्भ में मनुष्य अनैच्छिक अथवा ऐच्छिक रूप में कतिपय निश्चित और आवश्यक सम्बन्धों से आबद्ध होते हैं जो उनकी भौतिक उत्पादन शक्तियों के विकास के सोपानों को निरूपित करते हैं। उत्पादन संबंधों का समेकित स्वरूप समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करता है, यह वह प्राथमिक आधार है, जिस पर न्यायिक एवं राजनीतिक अपर संरचनाओं का विकास होता है और जिससे निश्चित प्रकार की सामाजिक चेतना मुखातिब रहती है। अस्तित्व के लिए आवश्यक भौतिक संसाधनों के उत्पादन प्रकार ही सामाजिक, राजनैतिक और बौद्धिक जीवन की समस्त प्रक्रिया को निर्धारित करती है।[६]

भारतीय परिपेक्ष्य में उत्पादन पद्धतियों को परिभाषित करते हुए मार्क्स ने 'एशियाटिक मोड ऑफ प्रोडक्शन' की अवधारणा को प्रस्तावित किया, जिसे भारत के समस्त प्राक्-औपनिवेशिक काल में प्रभावी कहा गया। इसके अनुसार भारत में निरंकुश राज्य के अन्तर्गत ग्राम्य-स्तर तक उत्पादन राज्य के पूर्ण स्वामित्व एवं नियंत्रण में था। प्रशासकीय अधिकारियों, कर्मचारियों की बड़ी संख्या, एक वर्ग के रूप में, राज्य को ग्राम उत्पादित अधिशेष का संग्रहण करने में सहायता करती थी। इस उत्पादन प्रकार की विशिष्टताओं में व्यक्तिगत भू-स्वामित्व का अभाव, वाणिज्यिक केन्द्रों की अनुपस्थिति, तथा ग्राम्य समाजों का स्थानीय स्तर पर छितराया हुआ अस्तित्व आदि प्रमुख घटक थे हालाँकि

❑ प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

भारतीय परिपेक्ष्य में अधिकांशतः इतिहासकार इससे पूर्णतः सहमत नहीं हैं। तथापि, यूरोपीय ऐतिहासिक अनुभव के अनुरूप विश्व-स्तर पर उपर्युक्त मॉडल का आकलन करने पर, प्राचीन तथा मध्ययुगीन दो उत्पादन पद्धतियों के विकास की एक सामान्य प्रक्रिया को सभी ने स्वीकार किया है। प्राचीन से मध्यकाल की और संक्रमण के मूल में परिवर्तित उत्पादन सम्बन्ध मौलिक कारण थे। उत्पादन पद्धतियों के आधार पर प्राचीन भारतीय इतिहास को चार कालखण्डों में विभाजित किया जा सकता है। (१) व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा के पूर्व का काल अथवा प्राक्-सभ्यता काल, (२) सभ्यता के उदय से प्रथम शताब्दी ई६ तक का युग, (इस काल में समस्त भूमि पर सैद्धान्तिक रूप में राज्य का स्वत्व प्रभाव में था, भू-स्वामी वास्तविक स्वामी होते हुए भी सिद्धान्ततः राज्य को भूमि कर आदाता कृषक था, (३) भूमिदास प्रथा का आरम्भ प्रथम श० ई० में हुआ, जिसकी प्रमुख विशिष्टता थी राज्य द्वारा भूमिदान के क्षेत्र पर अपना आंशिक स्वत्व का भूमिदान भोगी के हक में हस्तांरण और (४) छठी श० ई० से बारहवीं श० ई० भूमिदान प्राप्तकर्त्ता को भू-खण्ड पर आर्थिक उपभोग के साथ-साथ प्रशासनिक-न्यायिक अधिकारों का पूर्ण हस्तांतरण।

'कृषक' का उद्भव प्रागैतिहासिक, नव-पाषाण काल में जलवायु परिवर्तन के उस काल में हुआ जब मानव ने आखेट और संग्रहण की अर्थव्यवस्था की आकस्मिकता के आगे स्वयं भोजन उत्पादन कर एक नवीन जीवन-शैली का सृजन किया। परन्तु कृषक का इतिहास सभ्यता के युग में आरम्भ हुआ, जब वह भू-स्वामी एवं भूमि कर आदाता दोनों बना। कृषि से जुड़े अन्य कार्य में लगे अन्य कृषक सरीखे कृषि-मजदूर अथवा कृषि दास इस काल में सामान्यतः मिलते हैं। नव-पाषाण युगीन कृषि क्रान्ति के फलस्वरूप कृषक जीवन आत्मनिर्भर ग्राम्य अर्थव्यवस्था के स्तर तक फला-फूला। धीरे-धीरे, अतिरिक्त कृषि उत्पादन (अधिशेष) का संकेन्द्रण कुछ उर्वर प्रदेशों में बड़ी मानव मस्तियों में होने लगा। यह बस्तियाँ अब अधिशेष के संग्रहण एवं उपभोग के केन्द्रों के रूप में विकसित होने लगी तथा अन्ततः इन बहुमुखी बदलावों ने कृषि की उत्पादन पद्धति में कृषक परिवार को एक उत्पादन इकाई के रूप में स्थापित किया। तकनीकी आधार पर समय-समय पर कृषि उत्पादन की वृद्धि के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। लेकिन उत्पादन पद्धति में छठी श० ई० पू० तक कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। छठी श० ई० पू० में आर्थिक सामाजिक क्षेत्रों में दूरगामी बदलाव पुनः देखने को मिलते हैं। अखिल भारतीय उपमहाद्वीप में यह परिवर्तन कृषि में लौह यन्त्रों के व्यापक उपयोग के कारण बड़े पैमाने की कृषि तथा बेहतर कृषि उत्पादन से जीवन अधिशेष का उपभोग नगरों के विकास की ओर होने से संबंधित थे। अधिशेष उत्पादन की ओर उन्मुख यह कृषि-अर्थव्यवस्था, कई शताब्दियों तक किंचित तकनीक, जनित बदलावों के बावजूद मौलिक रूप में समान बनी रही। मौर्योत्तर काल के पश्चात् प्रथम श० ई० से भूमि-व्यवस्था में कतिपय ऐसी नवीनताओं का समावेश किया जाने लगा, जिन्होंने आने वाली तीन शताब्दियों के उपरान्त गुप्तोत्तर काल में सामन्ती उत्पादन पद्धति का आधार तैयार किया तथा कृषक संबंधों के नए समीकरणों को गढ़ा।

गुप्तोत्तर काल से भारतीय समाज में परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी थी। लेकिन यह निश्चित करना कठिन है कि कब प्राचीन काल का अंत और मध्यकाल का आरम्भ हुआ। मध्यकाल के संबंध में यूरोप और एशिया में घटनाक्रम समान नहीं था। यूरोप में प्राचीन से मध्य काल की ओर संक्रमण मुख्यतः दास प्रथा का कृषि दास प्रथा में परिवर्तन था।[७] किंतु भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को इस दृष्टि से नहीं देखा जा सकता, क्योंकि भारत में उत्पादन न तो दास-प्रथा पर आधारित था और न ही समाज विदेशी आक्रमणकारियों से यूरोप की भाँति अभिभूत हुआ था। हालाँकि यह निश्चित है कि चौथी शताब्दी से सातवीं शताब्दी ई० के बीच भारत की राज्य व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और उसके समाज तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में कुछ बुनियादी परिवर्तन हुए। इसमें यह उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि परिवर्तन के इस दौर में भी कुछ तत्त्व प्राचीन और मध्य काल दोनों में समान रूप से विद्यमान रहे।

भारत में मध्य काल को केवल इस्लामी शासन की स्थापना से ही जोड़ कर देखना तथ्यों के विपरीत है। गुप्तकाल में ही राज्य-व्यवस्था का सामंतीकरण आरम्भ हो चुका था। जिस चीज ने प्राचीन भारतीय समाज को मध्यकाल में रूपांतरित किया, वह भूमि-अनुदान प्रथा थी। विभिन्न शासकों द्वारा जारी किए गये अधिकार पत्रों से ज्ञात होता है कि पुजारियों एवं पुरोहितों को भूमिदान पुण्य अर्जित करने के लिए दिए जाते थे, परन्तु इसके पीछे युग जनित विवशता का बहुत बड़ा हाथ था। यह विवशता कार्यक्रम की देन थी जिसका वर्णन पुराणों तथा कुछ अन्य ग्रंथों में किया गया है।

युग की परिस्थितियों में भूमिदान प्रथा को प्रोत्साहन दिया और भूमिदानों ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया। भूमि अनुदान प्रथा सामंती अर्थव्यवस्था का आधार बनी, और इसी ने अन्ततः प्राचीन काल को

मध्यकालीन भारत में परिवर्तित कर दिया।[८] इस प्रथा का उद्‌भव प्राचीन समाज व्यवस्था के आर्थिक आधार पर आए गंभीर संकट से हुआ। इस समय के वर्ण विभाजित समाज में वैश्य कहलाने वाले किसान तथा शूद्र कहलाने वाले श्रमिक उत्पादन में लगे रहते थे।[९] किन्तु चौथी श० ई० तक विभिन्न वर्ण या सामाजिक वर्ग अपने-अपने धर्म यानि निर्धारित कर्त्तव्यों से विमुख हो गए, विभिन्न स्रोतों में वर्णित किए गए हैं। निम्न वर्णों के लोगों ने उच्च वर्णों का स्थान प्राप्त किया और कर देना तथा श्रम रूप में सेवा देना बंद कर दिया। इससे वर्ण संकट की उत्पत्ति हुई। आम लोग भारी करों एवं वसूलियों के बोझ से परेशान थे, और राजा उन्हें संरक्षण देने के लिए तैयार नहीं थे। पुराणों के तीसरी-चौथी श० में लिखे ग्रंथों में इस युग को कलियुग कहा गया है।

इस संकट से उबरने के कई उपाय किये गए। इस स्थिति के निराकरण का सर्वाधिक उपयुक्त उपाय यह था कि पुरोहितों और राज्याधिकारियों को दान-दक्षिणा तथा वेतन-पारिश्रमिक पैसे या जिंस के रूप में न दिया जाए, बल्कि भूमिदान द्वारा दिया जाए। इस प्रथा के कारण दान में दिए गए क्षेत्रों में करों की उगाही तथा शांति-व्यवस्था का दायित्व अनुभोगियों के लिए चला जाता था। इस व्यवस्था से अनुर्वर क्षेत्रों को भूमिदान में देकर तथा निर्जन क्षेत्रों में भूमिदान भोगी ब्राह्मणों को बसाकर, राज्यहित में कृषि प्रसार तथा राज्य का सुदृढ़ीकरण किया जा सकता था। भूमिदान का पूर्वतम अभिलेखगत प्रमाण पहले सदी ई० पू० में मिलता है। प्रशासनिक अधिकारों के परिहार का सबसे पहला उदाहरण दूसरी श० ई० में गौतमी पुत्र सातकर्णि के बौद्ध भिक्षुओं को दिए गये दान में मिलता है। उन्हें दान में दी गई भूमि को 'आप्रवेश्यम्' (जिसमें राजा के सैनिकों का प्रवेश वर्जित है), 'अनावर्श्यम्' (जिसमें सरकारी अमले कोई जोर-जबरदस्ती नहीं कर सकते) तथा 'अराष्ट्रसविनयिकम्' (जानपद आरक्षियों के हस्तक्षेप से मुक्त) कहा गया है।[१०] चौथी शताब्दी ई. मध्य से ब्राह्मणों को ऐसे अनुदान देने के प्रसंगों में तेजी आ जाती है, जिनमें राजस्व के सभी स्रोत ग्रहीताओं को हस्तांतरित कर दिए जाते हैं। दूसरी शताब्दी तक अनुदान पत्रों में राजा द्वारा दान-भूमि पर केवल कुछ अधिकार ही गृहीताओं को दिए गए प्रतीत होते हैं जबकि वाकाटक राजाओं के दान पत्रों में जमीन के ऊपर तथा नीचे सभी स्रोतों से आय पर भू-स्वामी को पूर्ण स्वत्व हस्तांतरित किया गया है। गुप्तकालीन अभिलेखों में अनुदान-क्षेत्र में रहने वाले लोगों पर शासन करने के अधिकार का भी राजा द्वारा परित्याग कर दिया गया है। छठी श० के दान-पत्रों में राजा, परिवार, सम्पत्ति, व्यक्ति के विरुद्ध किए गये समस्त अपराधों के लिए दंड देने का अधिकार अनुदान भोगियों को दे देता है।

सातवीं श० ई० तक राजस्व उगाही के साथ-साथ, सामाजिक क्षेत्र में भू-स्वामी वर्ग का बोलबाला बढ़ रहा था। यह वर्ग राजा और सामान्य जन के बीच एक प्रभावशाली वर्ग के रूप में पनप चुका था। इस भू-स्वामी वर्ग में बड़ी संख्या में भूमिदान प्राप्त धर्मेत्तर लोग भी सम्मिलित थे। इस काल के अभिलेखों में सामंत, महासामंत, मांडलिक, महामाण्डलिक, आदि शब्दों का प्रयोग यह दर्शाता है कि सामंती व्यवस्था इस युग में पूर्ण-रूपेण विकसित हो चुकी थी। केन्द्रीय सत्ता के ह्रास के संकेत अनेक तथ्यों से ज्ञात होते हैं। राज्य की हृदय स्थली तक में करों की वसूली का अधिकार, अनुदान भोगियों को दे दिया जाना, राजा की चलंत राजधानी (स्कन्धावार अथवा जय स्कन्धावार), गढ़ों (दुर्ग), जैसी सामरिक, प्रभुसत्तात्मक प्रतीकों पर सामंतों, बड़े भूस्वामियों द्वारा बहुतायत से अधिकार आदि राजा की स्थिति में कमजोरी तथा प्रभुसत्ता के विकेन्द्रीकृत होने के प्रमाण हैं। इस प्रकार नई राजनीतिक प्रणाली का सूत्रपात हुआ।

कृषि की उन्नति तथा सामाजिक संघर्ष के कारण, शूद्रों की स्थिति में बदलाव आया। कृषि में संलग्न कृषक पट्‌टेदार थे जो भू-स्वामी को फसल का एक हिस्सा अदा करते थे। कौटिल्य ने शूद्रों का उल्लेख कृषक के रूप में किया है।[११] जन-जातीय इलाकों में किसान धार्मिक दान भोगियों के अधीन हो गए। इन क्षेत्रों में बटाईदारों, काप्तकारों को विशेष निर्देश दिए जाने लगे कि वह दान-क्षेत्र का परित्याग न करें।[१२] अब दान में दिए जाने वाले गाँव जनता-समृद्ध, धन-जन-सहित और सप्रतिवासी समेत कहलाने लगे।[१३]

सामंती व्यवस्था में शिल्पियों को छोटे-बड़े भू-स्वामियों के साथ बाँध दिया गया। इनके भरण-पोषण के लिए फसल की कटाई के समय जिन्स के रूप में वृत्ति दी जाने लगी। शिल्पी भी कृषकों की तरह ही अनुदान भोगियों के साथ बाँध दिए गये। इससे परवश कृषक और शिल्पी दोनों की ही गतिशीलता पर दुष्प्रभाव पड़ा, तथा वह एक प्रकार से 'कृषिदास' के समकक्ष माने जा सकते हैं। आत्म निर्भर ग्राम-अर्थव्यवस्था के विकास के क्रम में इस प्रकार के कृषक संबंधों को सामाजिक मानवविज्ञानियों ने 'जजमानी' व्यवस्था कहा है।

छठी शताब्दी से विदेश व्यापार में भारतीयों की भागीदारी लगभग नगण्य हो चुकी थी। रोम, ईरान, बैजन्तिया साम्राज्यों के साथ भारतीय रेशम का व्यापार बन्द हो चुका था। पश्चिमी देशों के साथ भारतीय व्यापार पर अरबों ने लगभग एकाधिपत्य स्थापित कर लिया था।[१४] छठी शताब्दी के बाद प्रायः तीन सौ

वर्षों तक व्यापार की अवनति की पुष्टि इस बात से होती है कि इस दौर में, स्वर्ण मुद्राएं लगभग नगण्य हो जाती है। व्यापार के ह्रास के कारण नगरों की अर्थव्यवस्था चरमरा गई। अनेक पुराने व्यापारिक नगर नष्ट हो गए।[१५] सीमित बाजार होने के कारण शिल्पी एवं व्यापारी गाँवों में जा बसे और खेती बाड़ी में लग गए।

पूर्व मध्यकालीन कृषक संबंध कृषि व्यवस्था में उत्पादन, वितरण, तथा उपभोग की एक विशिष्ट पद्धति से प्रभावित थे जिसे सामंतवादी व्यवस्था कहा जा सकता है जो मुख्य रूप से कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था में प्रकट होता है जिसमें एक वर्ग भूमिपतियों का होता है तथा दूसरा पराधीन किसानों का। इस व्यवस्था के अधीन भूमिपति सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक उपायों से, जिन्हें गैर-आर्थिक उपाय कहा जाता है, अतिरिक्त उत्पादन को हड़प लेते हैं। यह व्यवस्था सोपानबद्ध सम्पत्ति के स्वामित्व की जटिल संरचना को जन्म देती है जिसके निम्नतम स्तर पर कृषिदास तथा कृषक होते हैं। 'सोपानबद्ध सम्पत्ति' तथा 'विभाजित प्रभुसत्ता' विभिन्न वर्गों के परस्पर संबंधों का स्वरूप निर्धारित करती है। प्रभु-कृषक संबंध इस व्यवस्था का मर्म है और भू-सम्पदा के स्वामी, नियंत्रक या भोक्ता के द्वारा अपने काम के लिए उस सम्पदा का उपयोग इस प्रणाली का तत्त्व है।[१६]

सामंतवादी कृषक संबंध भू-स्वामियों के नियंत्रक वर्ग तथा किसानों के परवश वर्ग के मध्य विस्तृत सेवाओं एवं उत्पादन नियंत्रण तथा उपभोग की ऐसी व्यवस्था थी जिसमें अधिकारिता का नीचे से ऊपर आरोही क्रम तथा उपभोग में ऊपर से नीचे की ओर अवरोही क्रम था। वर्ग विभाजित प्राक्-पूँजीवादी समाजों में भूमि तथा कृषि-उत्पादन का महत्त्व सबसे अधिक होता है। किन्तु भूमि के वितरण तथा कृषि-उत्पादों के अधिग्रहण की विशिष्ट परिस्थितियाँ अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार की होती हैं। अलग-अलग क्षेत्रों के किसान अलग-अलग सीमा तक भू-स्वामियों के अधीन हो सकते हैं। कृषि, शिल्पों और जिन्सों के उत्पादन तथा वाणिज्य व्यापार में प्रगति और शहरीकरण के बढ़ने कृषक वर्ग के अंदर फर्क पैदा हो सकते थे। जो किसान अपने गुजारे से कुछ अधिक पैदा कर सकते थे वे भू-स्वामियों को श्रम के रूप में दी जाने वाली सेवाओं के एवज में नकद जमा करके अपनी आजादी खरीद सकते थे। परन्तु इसके लिए राज्य का अनुमोदन तथा एक विशेष बाजार अर्थव्यवस्था का सुलभ होना आवश्यक था।[१७] कृषि दासता सामंतवाद का पर्याय नहीं है। यह तो पराधीनता का एक रूप था, किसान जमीन से बँधा रहता था और उसे अपने प्रभु के खेत में काम करना पड़ता था। साथ ही जब किसान को राज्य और भू-स्वामी दोनों के प्रति निष्ठा रखनी है तो यह दोहरी पराधीनता का मामला बन जाता है।

पूर्व मध्यकालीन कृषक संबंध के विषय में यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है कि क्या किसानों को उत्पादन की स्वतंत्रता थी, क्योंकि उत्पादन के साधनों पर उसका पूर्ण नियंत्रण था।[१८] कृषक-भू-स्वामी संबंध की प्रक्रिया में कतिपय अन्य प्रश्न भी उठते हैं, जैसे- उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का क्या महत्त्व है?क्या उसमें उत्पादन से होने वाले लाभ के उपभोग का समावेश नहीं है? उत्पादन से होने वाली आय का कितना हिस्सा और कैसे भू-स्वामी तक हस्तांतरित होता है?भू-स्वामी को अधिशोषण की शक्ति का अधिकार उत्पादन साधनों की वजह से अथवा वैचारिक कारणों से है।

उत्पादन के साधनों पर किसका प्रभावी नियंत्रण था?इसको समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि भूमि के एक ही टुकड़े पर किसान के अधिकार निम्न श्रेणी के तथा भूस्वामी के अधिकार उच्च्य श्रेणी के हो सकते हैं। कर-लगान, बैठ-बेगार, बराबर मौके पर मौजूद अनुदान भोगियों का सतत् हस्तक्षेप - ये सभी बातें किसान के पास जमीन, श्रम, गाय-बैल, खेती के यन्त्र-औजार होते हुए भी, किसाने के नियंत्रण को कितना कारगर होने देंगी? किसान भरण-पोषण तो कर सकता है परन्तु अपने श्रम का पूरा उपभोग कर उत्पादन के अन्य साधनों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित नहीं कर सकता।

भूमिदान से संबंधित राजकीय सनदों में उत्पादन के साधनों पर भू-स्वामी को खासा नियंत्रण दिया गया है। भू-स्वामी किसानों से विभिन्न प्रकार के लगानों एवं करों की माँग करते थे, उनसे तरह-तरह के करों की वसूली करते थे। राज्य करों की माँग इसलिए करता है क्योंकि वह भू-स्वामी है। पूर्व मध यकाल में राजा जमीन का मालिक है।[१९] अब सनद के जरिए वह यह राजाधिकार अनुदान भोगी को सौंप देता है और उसके आधार पर अनुदान भोक्ता करों की माँग करता था। राजा 'भूमिद' अर्थात् भूमि का देने वाला है।[२०] भूमिदान के पुण्य का लाभार्थी केवल भू-स्वामी ही हो सकता है।[२१]

आरम्भ के भू-दान पत्रों में उपभोक्ता को केवल सामान्य अधिकार ही हस्तांतरित किए गए हैं, परन्तु बाद के भूमिदान सनदों में समस्त संभावित आय का अधिकारी दानभोगी को बना दिया गया है। उदाहरणार्थ, दानभोगी सभी प्रकार के करों, हर प्रकार की आय, समस्त आपात करों और इन सबके अतिरिक्त अपरिभाषित 'सर्व का उपभोग का अधिकारी बन जाता है।[२२] इसी प्रकार वह उचित और अनुचित कर[२३] नियत

और अनियत कर[२४] वसूल करने का हकदार है। भूमिदान भोगी को दान में प्राप्त भूमि में पहले से बसे हुए काश्तकारों को हटाकर नए काश्तकार बसाने का अधिकार था। वह दान में मिली भूमि दूसरे को भी दे सकता था।[२५] चोल काल में दान भोगी को नए प्रकार प्रकार के कर लगाने तथा पूर्व से चले आ रहे करों की दरों में परिवर्तन करने का अधिकार था। इससे स्पष्ट होता कि जमीन पर वास्तविक रूप में कृषक स्थापित था, परन्तु भू-स्वामी का अधिकार किसान से श्रेष्ठ था।

सातवीं सदी के बाद के अधिकतर अनुदानों में प्रदत्त गाँव के अन्तर्गत सभी प्रकार के संसाधनों जैसे निम्नस्थ भूमि, उर्वर भूमि, जलाशय, सभी प्रकार के वृक्ष और झाड़ियाँ, पगडंडियां और चारागाह स्पष्ट रूप से शामिल किए गये हैं। इन शर्तों के कारण कृषक को सुगमता से प्राप्त सहायक संसाधन पर भी अधिकार समाप्त हो गया, और उसकी स्थिति अधिक दयनीय हो गई। दसवीं शताब्दी ई० के बाद नकदी फसलों का महत्त्व बढ़ गया और सामुदायिक संसाधनों को भी सामान्य कृषक के उपभोग की हद के बाहर कर दिया गया। दानभोगियों को चरागाहों पर अधिकार दे दिए जाने से किसानों की कृषि उत्पादन की स्वतंत्रता में भारी कमी आई।

किसानों को भोक्ताओं के आदेश का पालन करने के लिए अधिकांश स्रोतों में कहा गया है।[२६] दान भोगी के यह अधिकार अत्यन्त व्यापक थे तथा यह उत्पादन के साधनों तथा प्रक्रियाओं को भी समाहित करते थे। दान भोगी को ऐसा निरंकुश अधिकार किसान को एक तरह से उसके हुक्म का गुलाम बना देता है। किसान की श्रम-शक्ति पर, जो उत्पादन का बड़ा साधन है, दान भोगी का सामान्य नियंत्रण स्थापित हो जाता है जिसका उपयोग भू-स्वामी अपने उन खेतों में, जिसका प्रबन्धन वह करता है, कर सकता है, अथवा अपने आडम्बरपूर्ण जीवन की कतिपय अनावश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए अथवा खास किस्म की नकदी फसलों और अनाज पैदा कराने के लिए कर सकता है।

भू-स्वामित्व के प्रश्न पर राजा को नैसर्गिक रूप में राज्य की समस्त भूमि का स्वामी बाना गया है। भूमि पर कब्जा तथा वैधानिक रूप में मालिकाना हक का प्रमाण आवश्यक माना गया है। यू० एन० घोषाल[२७] समस्त भूमि पर राज्य के मालिकाना हक को, के० पी० जायसवाल[२८] ने भूमि पर व्यक्तिगत रूप में उसका हक माना है जो उसको तैयार करता है अथवा उपभोग करता है। पी० वी० काणे[२९] महोदय ने राजा को सिद्धांततः समस्त भूमि का स्वामी माना है, परन्तु जिस भू-खण्ड पर कोई व्यक्ति अथवा समुदाय लम्बे समय से काबिज हो तथा उसका विकास, उपभोग करने के प्रमाण हों, तो मालिकाना हक उन्हीं का रहेगा। राजा को केवल उस भूमि से सामान्य भू-राजस्व की निर्धारण एवं वसूली का अधिकार होता था।[३०] बी० एन० एस० यादव कात्यायन स्मृति की दो सूक्तों, जिनका विस्तृत उदाहरण लक्ष्मीधर के राजधर्मकाण्ड में वर्णित है, के आधार पर भूमि पर राज्य एवं व्यक्ति दोनों का समवर्ती अधिकार माना है।[३१] आठवीं शताब्दी ई० में रचित नारद स्मृति पर असहाय की टीका में राज्य की समस्त भूमि को 'नरेन्द्रधन' अर्थात् राजा का निजी एवं पूर्ण स्वामित्व कहा गया है।[३२] ललनजी गोपाल[३३] जमीन के किसान द्वारा व्यक्तिगत स्वामित्व के सिद्धांत का समर्थन करते हैं। नारद-स्मृति के एक श्लोक को व्यवहारकाण्ड[३४] तथा विवादरत्नाकर[३५] उद्धृत् करते हुए राजा को तीन पीढ़ियों से अधिक लम्बे समय से निजी भू-खण्ड पर मालिकाना हक एवं कब्जा रखते हुए भी, भू-स्वामित्व के अधिकार से बेदखल करने के लिए अधिकृत किया है। यह दर्शाता है कि भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व को राज्य द्वारा निर्मूल किया जा सकता था। राजा को अधिकार था कि वह किसी भी व्यक्तिगत, सामूहिक अथवा सामुदायिक भू-स्वामित्व के दावे को खारिज कर सकता था। परन्तु राजा को किसानों को लम्बे समय से चले आ रहे भू-स्वामित्व एवं उनके घरों से बेदखल तभी करना चाहिये जब इसके अतिरिक्त कोई अन्य चारा न हो। राजतरंगिणी[३६] में काश्मीर के शासक जयपीड़ ने अपने लालच के वशीभूत होकर लगातार तीन वर्षों तक किसानों की समस्त पैदावार, यहाँ तक कि किसान के हिस्सा को भी हस्तगत कर लिया।

एक से अधिक स्वामियों का एक ही भू-खण्ड पर स्वामित्व होना यह दर्शाता है कि भूमि पर अलग-अलग प्रकार के स्वामित्व एक साथ ही आरोपित किए जा सकते थे। याज्ञवल्क्य, बृहस्पति तथा व्यावसायिक की स्मृतियाँ एक ही भूमिखण्ड में भू-अधिकारों के चार-चार सोपानबद्ध स्तरों का उल्लेख करती है। उदाहरण के लिए हमें एक ही स्थल पर महीपति, क्षेत्र स्वामिन, कर्षक, उपकर्षक या पट्टेदार का उल्लेख मिलता है। स्वामित्व और स्वत्व का अंतर भी स्पष्ट है। स्वामित्व भूदान-भोगी था जबकि कर्षक या क्षेत्रक लगान देने वाला किसान। गुप्तकाल में भी इसके प्रमाण हैं कि भूमि पर सोपानबद्ध अधिकारों और हितों का समावेश होता था। खरीद-बिक्री के सौदों में केवल राजा के ही नहीं वरन् उन स्थानीय अधिकारियों के हितों का भी उल्लेख हुआ है, जिनमें गाँव के बड़े लोगों का बोलबाला होता था। इसी प्रकार इनमें दानभोगियों तथा जमीन के

कब्जेदारों के अधिकारों का भी उल्लेख है।[३७]

जमीन पर सोपानबद्ध नियंत्रण का उदय उपसामंतीकरण की व्यापक प्रकृति के कारण विशेष रूप से आठवीं सदी में हुआ।[३८] यह बात उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों में देखने को मिलती है। चोलों के अधीन एक दौर में नौ भू-स्वामियों के पाँच-पाँच स्तर होते थे। उनमें शीर्ष पर राजा होता था। उसके बाद दान-भोगी स्थान था, जिसके नीचे दखलदार आता था। दखलदार जमीन को पट्टे पर उप-दखलदार को सौंप देता था, जो उसमें काश्तकार रैयत से खेती करवाता था।[३९] उपसामंतीकरण के कारण ऊपर से नीचे तक श्रेणीबद्ध भू-स्वामियों के वर्ग का जन्म हुआ, जो जमीन को जोतने बोने वाले असली किसान नहीं थे। यह प्रक्रिया मार्क्स के इस कथन से मेल खाती है कि सामंती उत्पादन की विशेषता अधिक से अधिक उपसामंतों के बीच भू-स्वामित्व का विभाजन है।[४०]

कृषि की जमीन के असमान कवतरण ने कृषक वर्ग में आंतरिक असमानता को जन्म दिया। छोटे-बड़े अनेक प्रकार के काश्तकारों की कृषक वर्ग में विद्यमानता के संकेत मिलते हैं। भू-स्वामियों के लिए प्रयुक्त किए गए सम्बोधन शब्दों से ही उनके स्तर एवं रुतबे का आभास होता है, जो निश्चित रूप से उनके भू-स्वामित्व दर्जे के समानुपाती थे। विभिन्न स्रोतों में ब्राह्मण, प्रमुख ब्राह्मण, महन्तर, महत्तम, उत्तम, क्षेत्र-स्वामी, कुटुम्बिन, क्षेत्रकर, कर्षक और कारुक आदि का प्रयोग हुआ है। बड़े भू-स्वामी जो अपनी पूरी जायदाद में स्वयं खेती नहीं कर सकते थे, ऐसी स्थिति में वह अपनी कुछ जमीन बटाईदार कृषकों से कृषि कराते थे। भूमिदान पत्रों में हलिक या हलवाहा शब्द का उल्लेख मिलता है।[४१] याज्ञवल्क्य के अनुसार कर्षक क्षेत्र स्वामी अथवा 'भू-स्वामी' की सेवा में नियत मात्र एक काश्तकार था।[४२] बंटाईदारों को 'आर्धिक', 'अर्द्धसीरिक' या 'अर्द्धसीरिन' कहा गया है। साहित्यिक स्रोतों में कीनाश[४३] शब्द का प्रयोग हुआ है। स्पष्ट है कि इन शब्दों से भूमि पर नियंत्रण का कोई बोध नहीं होता। स्वयं किसान शब्द 'कृशान' से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है हल चलाने वाला।[४४] मध्यकालीन ग्रन्थों में 'कृषिक' या काश्तकार शब्द का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। वृहत्संहिता में लागुलोपजीविनः शब्द का उल्लेख है[४५] जिसका अर्थ होता है हल के वाहन से जीविकोपार्जन करने वाला।

उत्पादन के साधनों पर किसान का कितना नियंत्रण था? यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है। किसान के लिए प्रयुक्त शब्दों में यह स्पष्ट दिखलाई देता है कि एक तो वह किसान है जो केवल कृषि-उत्पादन में संलग्न रहते थे। दूसरे, वह भू-स्वामी किसान है जो उत्पादन का केवल उपभोग करते थे। अतः यह माना जा सकता है कि उत्पादन में लगे किसानों का अपने उत्पादन स्रोतों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित नहीं था। विभिन्न प्रकार के स्वामित्वों का एक ही भू-खण्ड पर प्रचलन सबसे ऊपर राजा को अधिष्ठित करता है। राजा के लिए प्रयुक्त विभिन्न शब्द[४६] उसके भूमि पर सर्वोच्च स्वामित्व को स्थापित करते हैं।

कृषक-सम्बन्धों में पूर्वमध्य कालीन परिवर्तन मुख्यतः सामंती उत्पादन पद्धति के कारण संभव हुए। इसका आधार था उत्पादन के साधनों से किसान का नियंत्रण कमजोर होना या लगभग समाप्त हो जाना। उत्पादन के वे साधन जो अब तक किसानों के नियंत्रण में थे, उनपर बिचौलियों के अधिकार थोप दिए जाने से जटिलता पैदा हो गई। उत्पादन-संबंधों में कुछ व्यापक परिवर्तनों की दिशा समस्त मध्यकाल में उत्तरोत्तर रूप में किसान एवं राजा को कमजोर करती रहीं। सिद्धांततः भू-स्वामित्व के मामले में एक तो स्वयंस्रोत था, तथा दूसरा व्यावहारिक रूप में ऐसा भू-स्वामी जो न केवल भूमि पर काबिज था वरना उससे उत्पादन भी करता था। तथापि, राजा द्वारा थोपे गए (आरोपित) भू-स्वामित्व (मध्य में स्थित बिचौलिए) एक तरफ किसानों के अधिकारों का हरण कर रहे थे तथा दूसरी ओर राजा द्वारा प्रदत्त भूमिदान का राज्य के पक्ष के विपरीत दुरुपयोग। अनुदान क्षेत्र इस प्रकार केवल दानभोगियों की निजी जागीरें बनकर रह गए।

वाकाटक काल में ब्राह्मणों एवं मंदिरों को बड़े-बड़े भूमिदान दिए जाने का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है।[४७] प्रवरसेन ने चार सौ निवर्तन जमीन एक ही ब्राह्मण को दान में दी। फिर एक देवता को भी इतनी ही जमीन दी।[४८] उस काल में एक निवर्तन भूमि का सामान्य परिवार के भरण-पोषण के लिए काफी होती थी। इतने बड़े भू-खण्डों में यह ब्राह्मण स्वयं खेती नहीं कर सकते थे। इस प्रकार के भूमिदानों में भोक्ता का उत्पादन साधनों पर सीधे नियंत्रण को स्थापित किया। उत्पादन के साधनों पर भोक्ता का सामान्य नियंत्रण स्थापित होने का बड़ा कारण यह था कि उसे भूमि या गाँव के साथ अनुदान क्षेत्र में सामंती अधिकार भी दे दिए जाते थे। दानपत्र में भोक्ता को परिवार, सम्पत्ति, व्यक्ति आदि के विरुद्ध किए गए दसों अपराधों के लिए दण्ड देने[४९] और साथ ही दीवानी मुकदमों की सुनवाई करने[५०] के अधिकार भी प्रदान कर दिए जाते थे। राज्याधिकारियों के लिए उनके क्षेत्र में प्रवेश करना[५१] और उनके कार्य-प्रकार्य में किसी प्रकार का विघ्न डालना[५२] वर्जित था। गैर आर्थिक प्रकार के इन राजनीतिक, न्यायिक अधिकारों

से भोक्ता को किसानों का शोषण करने में मदद मिलती थी। अक्सर भोक्ता को अनुदान गाँवों का सभी प्रकार से उपभोग करने का अधिकार दिया जाता था। जैसा कि 'सर्वोपाय संयुक्तम्'[५३] पद से ध्वनित होता है। एक अन्य पद के अनुसार 'संभोग्या यावदिच्छा क्रियाफलम्'[५४] से स्पष्ट होता है कि भू-स्वामी इच्छा के अनुसार जब और जैसे चाहे उत्पादन प्रक्रिया में हस्तक्षेप कर सकता था। कुछ प्रसंगों में गाँव के समस्त संसाधनों के उपभोग का अधिकार 'स्वयंभोग समेत'[५५] दे दिया जाता था।

सामंती उत्पादन संबंधों को संरक्षित करने के लिए विभिन्न वैचारिक उपायों को अपनाया गया। राजा के उत्तराधिकारियों तथा शक्ति सम्पन्न तत्त्वों को दान की व्यवस्थाओं का पालन करने का निर्देश देने[५६] के साथ ही दान में गड़बड़ी पैदा करने का प्रयत्न करने वालों को दण्ड का भय दिखलाया गया है।[५७] दानपत्रों में बार-बार जीवन की अनिश्चितता की ओर संकेत किया गया है। लक्ष्मी की चंचलता का दान-पत्रों में उल्लेख बदलते उत्पादन संबंधों की वास्तविकता का सांकेतिक निरूपण है। एक विशिष्ट प्रकार की विचारधारा का प्रवर्त्तन इसलिए किया गया ताकि आरोपित उत्पादन संबंध और वितरण का नियमन भू-स्वामियों एवं सामंतों के पक्ष में किया जा सके। भू-स्वामी के स्वत्व की उत्तरोत्तर रूप से होने वाली सुदृढ़ता ने कालांतर में उन्हें इतना सशक्त किया कि भूमिदान को यह भोक्ता अपनी व्यक्तिगत जागीर समझने लगे।[५८]

दानपत्रों के संरक्षण एवं उन्हें दीर्घकाल तक सुपाठ्यरखने के लिए जिन क्षेत्रों में इनको भोजपत्र अथवा वल्कल अन्यथा ताड़पत्र पर जारी किया गया था, उनको ताम्र-पत्र के रूप में परिणत किया गया।[५९] दान पत्रों में वर्णित भू-खण्डों के सीमांकन एवं सुस्पष्ट दस्तावेजीकरण का उल्लेख विभिन्न क्षेत्रों में मिलता है। मध्यकालीन विधिवेत्ताओं ने स्वत्वाधिकारों के जटिल विन्यास से पार पाने के लिए भू-स्वामित्व की नवीन परिभाषाएँ गढ़ी। उदाहरण के तौर पर विज्ञानेश्वर ने 'मिताक्षरा' में संपत्ति की 'लोकभिस्वीकृति' के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।[६०] यह बदलते हुए उत्पादन संबंधों के आलोक में परस्पर विपरीत स्वत्व के दावों को समायोजित करने का सुगम उपाय सिद्ध हुआ, और जीमूतवाहन के दायभाग शास्त्रीय सिद्धांत की तुलना में अधिक लोकप्रिय हुआ।

पूर्व मध्यकालीन कृषक संबंधों के विषय में जो विद्वान सामंती उत्पादन पद्धति की विद्यमानता को नकारते हैं, उनका कहना है कि दान भोगियों को केवल अधिशेष की उगाही से मतलब था, उत्पादन से नहीं। लेकिन अधिशेष की उगाही और उसके वितरण के प्रश्न को उत्पादन पद्धति से अलग करके नहीं देखा जा सकता। सामंती उत्पादन पद्धति में श्रम और नकद अथवा जिंसों में चुकाए जाने वाले लगान के रूप में प्रभु का भाग होगा, और साथ ही किसान और प्रभु के बीच वितरण की ऐसी प्रणाली होगी जिसमें किसान आश्रित होगा और प्रभु उसका संरक्षक। किसान की जमीन में अनुदान भोगी का अपर-अधिकार अधिशेष की उगाही का आधार बन जाता है। गुप्त काल से पूर्व अधिशेष की उगाही राज्य के अमलों द्वारा करों के रूप में और पुरोहित-पुजारियों द्वारा दान-दक्षिण के रूप में की जाती थी। बुद्ध के काल में कुछ भू-स्वामी थे, जो दासों या भाड़े के मजदूरों की सहायता से अपनी खेती-बारी संभालते थे। कौटिल्यीय अर्थशास्त्र से बड़े राजकीय फार्मों की भी जानकारी मिलती है। लेकिन राजा का नियंत्रण छोटे इलाकों में ही कारगर हो सकता था। देश के बसे हुए इलाकों में मोटे तौर पर उत्पादन की स्वतंत्र कृषक इकाइयों की ही प्रधानता थी, जिन्हें एक सीमा तक बाजार व्यवस्था की सुविधा भी सुलभ थी। किंतु बाजार अर्थव्यवस्था इतनी सुदृढ़ नहीं थी कि सम्पन्न भू-स्वामी अपनी पूँजी का निवेश नए उद्यमों में करके लाभ कमा सकता, जिससे अंततः उसके कदम पूँजीवादी पथ पर आगे गढ़ते। किसान अनाज की बिक्री नकद कर सकता था और जरूरत की छोटी-छोटी चीजें स्वयं खरीद सकता था। प्राक्-सामंती युग में पुरोहित, योद्धा और प्रशासक अपनी सेवाओं के बदले में सामान्यतः करों और दान-दक्षिणा के रूप में अधिशेष प्राप्त करने के हकदार थे, लेकिन इनमें से काफी कुछ अदायगियाँ राज्य द्वारा नकद की जाती थीं। उत्पादन की कृषक इकाइयों का उदय सर्वप्रथम मौर्योत्तर काल में नहीं, बल्कि बुद्ध के काल में हुआ।[६१] दास प्रथा न तो बहुत व्यापक थी और न ही नगण्य। मध्य गंगा के मैदानों में राज्य की कृषि भूमि सहित बड़ी-बड़ी जोतों को कमाने कोड़ने का काम दास और भाड़े के मजदूर करते थे। किन्तु किसानों के मुकाबले बड़े भू-स्वामियों की संख्या बहुत कम थी। मुख्य करदाता वैश्य था जो किसानों से भिन्न नहीं था। बुद्ध कालीन कृषि-अर्थव्यवस्था के विकास थे साथ-साथ कृषक समूह या आंतरिक विभाजन अधिक स्पष्ट हो गया।[६२] ग्राम्यसमुदाय में भू-स्वामियों, जिनके अस्तित्व पर श्रीमती राईज डेविड्स बल देती हैं,[६३] की जगह अब वैसे धनी व्यक्तियों ने ले ली जिनके पास प्रचुर मात्रा में मवेशी और दास थे। फलतः इनका नियंत्रण बड़े-बड़े भू-भागों पर स्थापित हो गया। जातकों में दासों एवं भाड़े के मजदूरों की मदद से जोते-जाने वाले १०० करीषा की जागीरों, ८० करोड़ सम्पत्ति वाले भूपतियों तथा धनी ब्राह्मण भू-स्वामियों के

साथ-साथ बड़े मवेशी समूहों के मालिकों का उल्लेख मिलता है।[६४] प्रारंभिक पालि ग्रंथों में गृहपतियों का वर्णन है, जिनमें दान के रूप में विस्तृत कर-मुक्त भूमि पाने वाले धनी महाशल ब्राह्मण भी थे और दासों और भाड़े के मजदूरों की मदद से खेती करने वाले धनी भू-स्वामी भी। वे धनी किसान सूदखोरी भी करते थे जिससे कृषकों के दूसरे समूह अर्थात् कूस्सक[६५] पर नियंत्रण बनाये रखने में यह सक्षम हो चुके थे। अतः साधारण किसान पर स्थानीय उच्च वर्ग की पकड़ बढ़ती चली गई। पालि ग्रन्थों में वर्णित गृहपतियों में अनेक स्वयं हल जोतने, बीज बोने एवं फसल काटने[६६] का कार्य स्वयं करते थे, अर्थात् वह कृषि कर्म स्वयं करने वाले किसान थे। दूसरी ओर ऐसे धनी गृहपति थे, जो कृषि कार्य में दूसरे के श्रम का उपयोग करके अपनी खेती कर पाते थे। पालि ग्रन्थों में खत्तियों, ब्राह्मणों एवं गृहपतियों को महाशाल भी कहा गया है[६७] क्योंकि इस चरण में कुछ राजकुमार, पुरोहित एवं गहपति बड़े भू-भागों के स्वामी बन चुके थे।[६८] मगध क्षेत्र में बड़े कृषि क्षेत्रों का उल्लेख मिलता है, जिसका स्वामी ब्राह्मण गहपति था।[६९] ये धनी गहपति कृषि-अर्थव्यवस्था में ऊपरी भू-स्वामी वर्ग के रूप में स्थापित हो चुके थे। यह वर्ग दास-कम्मकारों के श्रम का उपयोग करते थे। श्रमजीवी वर्ग का विकास उपरोक्त उत्पादन पद्धति की स्वाभाविक परिणति था।[७०] समाज का यह हिस्सा अत्यधिक दरिद्रता एवं अनिश्चित अस्तित्व का पर्याय था और इस बात की पुष्टि बौद्ध ग्रंथों में निरन्तर प्रयुक्त 'दलिद' शब्द से होती है। इस तरह के दरिद्रीकरण का एक कारण था जमीन एवं संसाधनों का नव-विकसित उत्पादन की पद्धति में असमान बँटवारा। यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थों में राजतन्त्रों की कृषि अर्थव्यवस्थाओं के तहत् गहपतियों और दास-कम्मकारों तथा गणतंत्रों में खत्तिय और दास-कम्मकारों के परस्पर विरोधों को रेखांकित किया है।[७१] इस काल में बड़े भू-स्वामियों की उपस्थिति के बावजूद उत्पादन पद्धति में सामान्य कृषक परिवार उत्पादन की इकाई थे जिन्हें अपने उत्पादन स्रोतों पर प्रभावी नियंत्रण प्राप्त था। यह कृषक परिवार उत्पादन इकाइयाँ गुप्त काल तक सुचारु रूप से काम कर रही थीं।

पूर्वमध्यकाल में कृषक संबंध के संदर्भ में कृषि दास प्रथा की अनुपस्थिति आंशिक उपस्थिति अथवा पूर्ण उपस्थिति की गवेषणा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बिन्दु रहा है। यूरोप के प्रकार की कृषिदासिता भारत में कभी नहीं थी।इसको ही विद्वानों ने किसानों की पूर्ण परवशता तथा चरम शोषण की पराकाष्ठा एवं सामंतवाद का विशुद्ध स्वरूप माना है। परन्तु आर० एस० शर्मा ने माना है कि विभिन्न प्रकार की बेगार तथा केवल भरण पोषण के निमित्त भू-स्वामी से कुछ जमीन प्राप्त कर उसके कृषि कार्यों के लिए श्रम देना आदि भी एक प्रकार से कृषि दासता ही है। दक्षिण भारतीय अभिलेखों में 'बेट्टि' शब्द बंधुआ मजदूर का पर्याय है। बेगार श्रम के माध्यम से स्वामी द्वारा विभिन्न प्रकार के उत्पादन कराया जाना भी एक प्रकार से कृषि दासता के समान है।[७२] मध्यगंगा मैदानी क्षेत्र में पड़ने वाले मुंगेर, भागलपुर, सहरसा और नालंदा जिलों में प्राप्त पाल दानपत्रों में 'सर्वपीड़ापरिहृत' शब्द का उल्लेख हुआ है। यह दर्शाता है कि किसानों को अनेक प्रकार के बेगार करने पड़ते थे।[७३] जब कोई गाँव दान में दिया जाता था तो दानभोगी राज्य के हस्तक्षेप से सर्वथा मुक्त रहकर इन तमाम सुविधाओं का उपभोग करने का अधिकारी बन जाता था। 'कृषिदासता' का एक अन्य स्वरूप किसानों को जमीन के साथ नत्थी कर देना (बाँध देना) था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण अभिलेखों में मध्यप्रदेश, पूर्वी भारत, चम्बा और राजस्थान से मिलते हैं, जहाँ कई दानपत्रों में भोगियों की भूमि के साथ वहाँ के कृषक, शिल्पी यहाँ तक कि वणिक भी हस्तांतरित कर दिए गये हैं।[७४] कृषि दासता की बेगार के माध्यम से एक अन्य प्रकार भी देखने को मिलती है। इसमें स्थानीय सामंत अथवा राज्य द्वारा सड़कों, किलों आदि के निर्माण में बलपूर्वक बेगार का कार्य स्थानीय किसानों से लिया जाता था। ऐसे दृष्टांतों के अभिलेखिक साक्ष्य कम ही मिलते हैं परन्तु यह एक शास्वत सत्य की तरह था। भू-स्वामी अपनी तरह-तरह की जरूरतों, भोग-विलास के साधनों आदि की पूर्त्ति कृषकों-शिल्पियों एवं अन्य श्रमिकों से बेगार में रूप में पूरी करते थे।

कलियुगीन कुव्यवस्था, जो अत्यन्त व्यापक थी, गुप्तोत्तर काल में सभी स्थापित व्यवस्थाओं, परम्पराओं एवं जीवन शैली को नवीन कलेवर में ढल जाने को बाध्य कर रही थी। भिन्न वर्णों, विशेषकर वैश्यों तथा शूद्रों ने अपने-अपने धर्मों, अर्थात् शास्त्र विहित कर्मों का पालन करने से इंकार कर दिया। इस संकट के निवारण के लिए समकालीन धर्मशास्त्रों ने दो उपाय सुझाये। एक था दण्ड का प्रयोग तथा दूसरा था वर्णाश्रम धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा। पूर्व मध्यकालीन भूमिदान अभिलेखों में नवीन व्यवस्था के विरोधी अथवा उल्लंघन करने वाले को दैवीय प्रकोप, नारकीय दण्ड आदि का भय दिखलाया गया है। राजाओं के लिए सर्वोत्कृष्ट कर्त्तव्य वर्णाश्रम धर्म का अनुपालन हो गया। परन्तु यह उपाय भी कालान्तर में कारगर सिद्ध नहीं हुआ, करों की उगाही कठिन हो गई। इसलिए राज्य को चलाना और राज्य कर्मचारियों, सैनिकों और पुरोहितों को

नकद वेतन देना असम्भव हो गया। इस राज्य संकट के निदान स्वरूप भूमिदान की प्रथा का व्यापक चलन आरंभ हुआ। जिन क्षेत्रों में कलियुगीन अव्यवस्था का प्रकोप अधिक था, उन्हीं क्षेत्रों में उत्पादन संबंधों का संकट गहराया, जो उत्पादन पद्धति में बदलाव का आधार तैयार कर रहा था। कृषि प्रसार के साथ- साथ कृषि उत्पादन को नवीन तकनीकों के प्रयोग के माध्यम से, जिसमें सिंचाई एवं उर्वरकों की नवीन प्रविधियों का विकास, फसल-चक्र, मवेशी पालन आदि भी सम्मिलित थे, तेजी से बढ़ाने के सभी उपाय किये गए। अर्थव्यवस्था का रुझान नगरोन्मुखी न होकर ग्रामोन्मुखी हो चला था। नगरों का ह्रास तथा जनता का ग्रामोन्मुखी उत्पादन में संलग्न होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया थी। राज्य द्वारा इन सभी परिवर्तनों को संभालना तथा शांति एवं सुव्यवस्था बनाए रखना सुगम नहीं रह गया था। अतः राज्य द्वारा नागरिक एवं न्यायिक प्रशासन स्थानीय स्तर पर उन महत्त्वपूर्ण लोगों को हस्तांतरित कर दिया गया जो राज्य सरकारों का अंग थे, अथवा महत्त्वपूर्ण प्रजा जन थे, जिनमें नायकत्व का माद्दा था। बड़े-छोटे नाना प्रकार के भूमिदानों का एक अभीष्ट एक प्रकार की प्राइवेट सरकार का गठन करना भी था जो राज्य के दायित्वों का स्थानीय स्तर पर निर्वहन कर सके। इस प्राइवेट सरकार के स्थानीय एजेन्ट भूमिदान प्राप्त-भोक्ता थे। यह भोक्ता छोटे परवश किसानों, भूमिहीन, मजदूरों, शिल्पियों, छोटे व्यवसायियों, व्यापारियों आदि के शीर्ष पर काबिज हो गए क्योंकि यह सभी राज्य द्वारा बाध्य किए गए स्थानीय भू-स्वामी की आज्ञापालन के लिए तथा राज्य ने एक प्रकार से जमीन के टुकड़े के साथ ही इनको आबद्ध मानकर भू-स्वामी को हस्तांतरित कर दिया। बड़े भू-स्वामियों को प्रभुसत्ता का हस्तांतरण पूर्ण-रूपेण व्यावहारिक रूप में कर दिया गया। यह भू-स्वामी प्रभुसत्ता का उपभोग शक्ति के बल पर ही कर सकते थे, अतः राज्य द्वारा इन्हें सामर्थ्यानुसार राज्य बल रखने तथा समय आने पर राजा को सैन्य सहायता उपलब्ध कराने का दायित्व भी सौंप दिया गया। इस प्रकार सामंती अर्थव्यवस्था में कृषि-उत्पादन पद्धति, कृषक संबंध तथा अधिशेष के वितरण में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए।

सन्दर्भ

१. मार्क्स, कार्ल, 'ग्रन्डरिसे, इंट्रोडक्शन', बर्लिन, १६५३, पृ. १०४.
२. हाब्सबाम, ई० जे० (संपा०), 'प्री-केपिटेलिस्ट इकोनोमिक फोरमेशन्स', लण्डन, १६६४, पृ. १२१.
३. एण्डरसन, पैरी, 'इन दी ट्रेक्स ऑफ हिस्टोरिकल मैटिरियोलिज्म', लण्डन, १६८३, पृ. १४१.
४. गुरुक्कल, राजन, 'सोशल फोरमेशन्स ऑफ अर्ली साउथ इंडिया', न्यू दिल्ली, २०१०, पृ. २१.
५. वही, पृ. २-३.
६. हिन्डेस, बैरी एण्ड पॉल क्यू६ ह्रिस्ट, 'प्री-केपिटेलिस्ट मोड ऑफ प्रोडक्शन', लण्डन, १६७७, पृ. १०-११.
७. एण्डरसन, पैरी, 'पैसेज फ्रॉम एण्डिक्विटी टू यूडलिज्म', लण्डन, १६७१, पृ. १८१.
८. शर्मा, एस० आर०, 'पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति', नई दिल्ली, १६६६, पृ. १८६.
६. शर्मा, एस० आर०, 'शूद्राज इन एंशियण्ट इंडिया' (द्वितीय संस्करण), नई दिल्ली, १६८३, पृ. २३३-३६१.
१०. सरकार, डी० सी०, 'सेलेक्ट इंस्क्रिप्सन्स बेयरिंग ऑन इंडियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन', (दूसरा संस्करण), कलकत्ता विश्वविद्यालय, १६६१, पृ. १६८-१६६१.
११. अर्थशास्त्र, अधि० ७, में शूद्र-कर्षक का उल्लेख किया गया है।
१२. शर्मा, रामशरण, 'इंडियन फ्यूडलिज्म', कलकत्ता १६६५, पृ. ५४-५६.
१३. वही, अध्याय-८१.
१४. बरदराजन, लतिका, इंडियन पार्टिसिपेशन इन ट्रेड ऑफ द सदर्न सीज, आर० एस० शर्मा (पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज, पृ. २५ पर देखें)।
१५. शर्मा, आर. एस., 'अर्बन डिके इन इंडिया', नई दिल्ली, १६८७, पृ. ५१.
१६. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, १६६६ पृ. ६५.
१७. वही, पृ. ६६१.
१८. मुखिया, हरबंस, ''वाज देयर युडलिज्म इन इंडियन हिस्ट्री'', दी जर्नल ऑफ पीजेण्ट स्टडीज, अंक ३, अप्रैल, १६८१, पृ. २७३-३१०.
१६. कात्यायन स्मृति में राजा को 'भू-स्वामी' कहा गया है, राज धर्मकाण्ड, पृ. १०.
२०. शर्मा, रामशरण, 'फ्राम गोपति टू भू-पति, (राजा की बदलती स्थिति की समीक्षा)', स्टडीज इन हिस्ट्री, II, (२), नई दिल्ली, १६८०, पृ. ६-८.
२१. सरकार, डी० सी०, 'सलेक्ट इंसक्रिशन्स', भाग- III, नं. ४६, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १६६५.
२२. एपिग्राफिक्स इण्डिका, VI, नं६ ५, पंक्ति १४.
२३. शर्मा, रामशरण, 'इंडियन फ्यूडलिज्म', पूर्वोक्त, पृ. ६८-१००.
२४. एपिग्राफिक्स, इण्डिका, XII, नं६ ३६, पृ. ३१.
२५. तिरूमलै, आर०, 'लैण्ड ग्रांण्ट्स एण्ड एग्रेरियन रिलेशन्स इन चोल एण्ड पांण्ड्य टाईम्स', मद्रास विश्व वि०, १६८७, पृ. ३१.
२६. वही, पृ. ३१.
२७. घोषाल, यू० एन०, दी एग्रेरियन सिस्टम इन एंश्यण्ट इंडिया, कलकत्ता, १६७३, पृ. १२६.

२८. जायसवाल, के० पी०, हिन्दू पॉलिटी, बेंगलोर, १६७८, पृ. १७३१.
२६. काणे, पी० वी०, हिन्दू धर्मशास्त्र, ५, पृ. ८६८.
३०. कार, सुनन्दा, एग्रेरियन सिस्टम इन नार्दन इंडिया, बॉम्बे, १६६०, पृ. ६१.
३१. यादव, बी० एन० एस०, एस० सी० एन० आई०, इलाहाबाद, १६७३ पृ. २३२.
३२. नारद स्मृति, IV, ६३, सुनन्दा कार, पूर्वोक्त, पृ. १०; यादव, बी० एन० एस०, पूर्वोक्त, पृ. २५२.
३३. गोपाल एल०, इकोनोमिक लाईफ ऑफ नार्दन इंडिया, वाराणसी, १६६५, पृ. १२.
३४. व्यवहारकाण्ड, पृ. ४५६-४६०.
३५. विवादरत्नाकर, ट, नं६ ६७१, पृ. २२६.
३६. राजतरंगिणी, ट५, ६२८, ललनजी गोपाल, इकोनोमिक लाईफ ऑफ नार्थ इण्डिया में पृ. १२ पर उद्धृत्।
३७. सरकार, डी० सी०, सलेक्ट इंसक्रिप्सन्स, जिल्द-१, भाग-३, कलकत्ता १६६५, पृ० १६, १८, १६, ४२, ४३ आदि।
३८. शर्मा, रामशरण, इंडियन युडलिज्म, (द्वितीय संस्करण), पृ. ७३-७५, १८५-१८७.
३६. तिरूमलै, आर०, पूर्वोक्त, पृ. ५०.
४०. मार्क्स एण्ड एंजिल्स, प्री० केपिटेलिस्ट सोशोइकोनोमिक फोरमेशन्स, मॉस्को, १६७६, पृ. २२.
४१. शर्मा, आर. एस., पूर्वोक्त, १६८३, पृ. ६८.
४२. वही, पृ. १८८.
४३. यादव, बी० एन. एस., पूर्वोक्त, पृ. ५.
४४. विलियम्स, मोनियर, ए संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड, १६६६, पृविष्ठि १६५
४५. यादव, बी० एन० एस६, उपर्युक्त, पृ. ३२.
४६. शर्मा, रामशरण, 'फ्रॉम गोपति टू भू-पति', स्टडीज इन हिस्ट्री, II (२), नई दिल्ली, १६८०, पृ. ८, फुट नोट ८१-८२.
४७. मिराशी, वी० वी०, इंस्क्रिप्शन्स ऑफ वाकाटकाज, कॉर्पस इंस्क्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द ५, उटकमंड, १६५५, नं. ६, पंक्तियाँ १६-२०.
४८. वही, नं६ १३ पंक्तियाँ २२-२३.
४६. शर्मा, आर० एस०, इण्डियन युडलिज्म, पूर्वोक्त, पृ. ३.
५०. वही, दीवानी मुकदमों की सुनवाई का अधिकार 'अभ्यन्तरसिद्धि' शब्द का प्रयोग भोक्ता के लिए किए जाने से स्पष्ट होता है।
५१. वही, पृ. २.
५२. सरकार, डी० सी०, सलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स, पूर्वोक्त, पंक्तियाँ २१-२२.
५३. मुखर्जी, आर० और मैती, एस० के६, कॉर्पस ऑफ बंगाल इंस्क्रिप्शन्स बेयरिंग ऑन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ बंगाल, कलकत्ता, १६६७, पृ. ४७, पंक्ति ६२.
५४. वही, पंक्ति ६३.
५५. वही, पंक्ति २२, नं६ ४६.
५६. सरकार, डी० सी०, सलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स, जिल्द-१, भाग ५५, नं६ ४८, पंक्तियाँ १८-२८.
५७. वही, नं६ ६१, पंक्तियाँ २२-२४.
५८. शर्मा, रामशरण, पूर्वमध्यकालीन भारत का सामंती समाज, पूर्वोक्त, पृ. ७५.
५६. सरकार, डी० सी०, इंडियन एपिग्राफी, दिल्ली, १६६५, पृ. ६७.
६०. सेन, पी० एन०, दी जनरल प्रिंसिपल ऑफ हिन्दू ज्यूरिसप्रुडेन्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १६१८, पृ. ४३-४६, अलिखित, कानून को वरीयता देने वाला लोक-स्वीकृति सिद्धान्त 'लौकिक-स्वत्ववाद' के रूप में जाना जाता है। गुरु, कुमारिल तथा पार्थसारथि मित्र जैसे अनेक तर्कशास्त्रियों ने, जिन्होंने धर्मशास्त्रों की व्याख्या मीमांसा के आधार पर की है, लोक-स्वीकृति के सिद्धान्त का समर्थन किया जबकि इसके विपरीत जीमूतवाहन/दायभाग, धारकेश्वर आदि ने शास्त्रीय दृष्टि का समर्थन किया। भू-स्वामित्व के प्रश्न पर मध्यकाल में यह परस्पर विरोधी दावों को प्रतिबिंबित करता है।
६१. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, पृ. ७६.
६२. ठाकुर, विजय कुमार, 'प्रारंभिक बिहार में कृषक समुदाय का अभ्युदय, इतिहास', अंक-१, भाग-१, आई० सी० एच० आर० की शोधपत्रिका, जनवरी-दिसम्बर, २००३, पृ. ६८.
६३. थापर, रोमिला, 'अध्यक्षीय भाषण', प्रोसीडिंग्स ऑफ इंडियन हिस्ट्री कॉंग्रेस, ४४ वाँ अधिवेशन, बर्दवान, १६८३, पृ. ६१.
६४. दीघ निकाय, १.६१, संयुक्त निकाय, १.१७२.
६५. बौधायन धर्मसूत्र, III, २.१.४
६६. अंगुत्तर निकाय, जिल्द IV, भिक्खु जगदीश कश्यप, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, १६५६, पृ. २३६.
६७. शर्मा, रामशरण, शूद्राज इन एंश्यण्ट इंडिया, पूर्वोक्त, पृ. ६७.
६८. जातक, III, २६३, IV, २७६.
६६. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, पृ. १०३.
७०. मज्झिम निकाय, जिल्द II, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, १६५८, पृ. २४.
७१. ठाकुर, विजय कुमार, पूर्वोक्त, पृ. ७०.
७२. यादव, बी० एन० एस०, एस० सी० एन० आई०, पूर्वोक्त, पृ. १६४-६६.
७३. शर्मा, रामशरण, पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज, पूर्वोक्त, पृ. ७६.
७४. शर्मा, रामशरण, इंडियन युडलिज्म, पूर्वोक्त, पृ. १८८.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

निसंतान महिलायें और सामाजिक सामंजस्य

❑ **डॉ० ज़किया रफत**

सन्तानोत्पत्ति सृष्टि का आधार है। यह सभी प्राणियों की नैसर्गिक आवश्यकता है कि वे अपनी प्रजाति का संरक्षण व संवर्धन करें ताकि समाज व संस्कृति की निरन्तरता बनी रहे। लुण्डबर्ग ने कहा है कि ''सामाजिक व्यवस्था में यदि पुनरोत्पादन का कार्य रूक जाये, यदि बच्चों का पालन पोषण न किया जाये और उन्हें अपने विचारों को आगामी पीढ़ी के लिये संचरित करना न सिखाया जाये तब समाज का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।''[१]

सन्तानोत्पत्ति सृष्टि का आधार है। यह सभी प्राणियों की नैसर्गिक आवश्यकता है कि वे अपनी प्रजाति का संरक्षण व संवर्धन करें ताकि समाज व संस्कृति की निरन्तरता बनी रहे। यदि किसी भी कारणवश सन्तानोत्पत्ति की प्रक्रिया बाधित होती है और व्यक्ति जैवकीय सन्तान प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं, तो व्यक्ति, परिवार व समाज सभी पक्ष प्रभावित होते हैं। समाज में ऐसी महिलाएं जो निसंतान हैं, उन्हें बांझ कहा जाता है तथा संतान न होने के कारण उनका सामाजिक सामंजस्य एक समस्या बन जाता है। प्रस्तुत अध्ययन का उददेश्य निसंतान महिलाओं के सामाजिक सामंजस्य में आने वाली कठिनाईयों को जानना व उनका विश्लेषण करना है।

सभी समाजों में पुरुषों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करें तथा अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करें। सन्तान परिवार को पूर्णता प्रदान करती है। यह उसे जीवन के विस्तृत अंगों-परिवार, जातीय समूह व व्यवसाय से सम्बद्ध करती है। जीवन के उत्तरकाल (वृद्धावस्था) में साथी उपलब्ध कराती है और सामाजिक स्थिति में वृद्धि करती है उसे बनाये रखती है।[२] अन्य समाजों की भांति भारत में भी एक व्यक्ति को उत्तराधिकार और पुरुषत्व सिद्ध करने के लिए सन्तान की आवश्यकता होती है।[३] सांस्कृतिक रूप से ग्रामीण भारत में विवाह व सन्तानोत्पत्ति पुरुष व महिला दोनों के लिए ही उच्च मूल्य रखा गया है। एक व्यक्ति तब तक पूर्णता प्राप्त नहीं करता जब तक वह विवाह करके सन्तान (विशेष रूप से पुत्र) उत्पन्न नहीं कर लेता।[४]

सन्तानोत्पत्ति समाज द्वारा वैद्य व स्वीकृत तरीकों के अन्तर्गत ही होनी चाहिये। अतः सभी धर्मों में विवाह की व्यवस्था है। हिन्दू धर्म में विवाह के उददेश्य धर्म, प्रजा (संतान) और रति है।[५] हिन्दू धर्म में पाणिग्रहण करते समय वर वधू से कहता है मैं उत्तम सन्तान प्राप्त करने के लिये तेरा पाणिग्रहण करता हूँ। विवाह के समय पुरोहित वर-वधू को आशीर्वाद देते हुए दस पुत्र उत्पन्न करने का आदेश देते हैं। पितृ ऋण से मुक्ति पाने के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति विवाह करके सन्तान उत्पन्न करें।[६] क्योंकि वैद्य सन्तानों को ही समाज में पदाधिकार और उत्तराधिकार प्राप्त होते हैं तथा दाम्पत्य सम्बन्धों की सफलता और व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के निर्धारण में संतान की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि किसी भी कारणवश सन्तानोत्पत्ति की प्रक्रिया बाधित होती है और व्यक्ति जैवकीय सन्तान प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं, तो व्यक्ति, परिवार व समाज सभी पक्ष प्रभावित होते हैं। समाज में ऐसी महिलाएं जो निसंतान हैं, उन्हें बांझ कहा जाता है तथा संतान न होने के कारण उनका सामाजिक सामंजस्य एक समस्या बन जाता है। प्रस्तुत अध्ययन का उददेश्य निसंतान महिलाओं के सामाजिक सामंजस्य में आने वाली कठिनाइयों को जानना व उनका विश्लेषण करना है।

समस्या- कथन और पारिभाषीकरण : प्रस्तुत अध्ययन जिसका शीर्षक 'निसंतान महिलाएं और सामाजिक सामंजस्य है, में निसंतान महिलाओं से आशय ऐसी विवाहित महिलाओं से है जिन्होंने किसी सन्तान को जन्म नहीं दिया है।

सामाजिक सामंजस्य से अभिप्राय, विविध सामाजिक सम्बन्धों के मध्य संतुलनात्मक सुखद सम्बन्ध से है।

प्रमुख अध्ययन : निसंतान महिलाओं पर बहुत कम अध्ययन हुए हैं परन्तु संतानहीनता पर किये गये कुछ प्रमुख अध्ययन निम्नवत् हैः-

मार्गरेट मीड ने निष्कर्षित किया है कि व्यक्ति का सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य होना, उसके लिए सामाजिक रूप से हानिकार होता है।[७]

पैपरीन ने २००० में बांग्लादेश की नगरीय मलिन जनसंख्या पर

❑ एसोशिएट प्रोफेसर-समाजशास्त्र विभाग, आर०बी०डी० (पी०जी०) कालिज, बिजनौर (उ.प्र.)

किये गये अध्ययन में पाया कि जो व्यक्ति एक जैव संतान का पिता नहीं बन सकता वह अपनी सामाजिक स्थिति खो देता है।[८]
हार्डी तथा मारकुच ने २००२ में लैगिंग अनुर्वरता और उससे सम्बद्ध प्रजननात्मक प्रौद्योगिकी की अन्तर्राष्ट्रीय रिपोर्ट में पाया कि महिलाओं के गर्भ धारण करने की अयोग्यता उनके मातृत्व के महत्वपूर्ण कार्य को समाप्त कर देती है परन्तु इससे पुरुष अपना नाम व वंश आगे बढ़ाने में असफल हो जाते हैं।[९]
अनीसा ने २००१ में आंध्र प्रदेश के रंगा रेड्डी जिले के अध्ययन में पाया कि एक भी जैवकीय संतान न होने की स्थिति में एक दम्पत्ति के भावात्मक कल्याण, वैवाहिक स्थायित्व, पारिवारिक सम्बन्धों और सामाजिक स्थिति पर सीधा प्रभाव पड़ता है। समाज में हास्यापद और कलंकित होने के भय से निसंतान दम्पत्ति के बीच दबावपूर्ण सम्बन्ध बने रहते हैं।[१०]
भारद्वाज ने २००० में अपने अध्ययन में पाया कि निःसन्तान होना एच्छिक हो या अनैच्छिक। यह समाज के आदर्शात्मक मानकों का विरोध करता है। अतः इसे निम्न दृष्टि से देखा जाता है।[११]
रोज़ेन ब्लैट ने १९७३ में निष्कर्षित किया कि विविध संस्कृतियों में निसंतान दम्पत्तियों पर किये गये अध्ययन दर्शाते हैं कि एक जैव संतान प्राप्त करने की एक दम्पत्ति की अयोग्यता कठिनाईयों को निर्धारित करती है कि किस प्रकार अपने समुदाय के भीतर उन के समक्ष कष्ट और चुनौती आती है।[१२]
शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन अन्वेषणात्मक शोध प्रचना पर आधारित है। अध्ययन हेतु सर्वेक्षण कार्य पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थित बिजनौर नगर में सम्पन्न किया गया है। नगर के तीन पुरातन मोहल्लों क्रमशः खत्रियान, मिर्दगान व चाहशीरी के लगभग २०० परिवारों में से १० प्रतिशत परिवारों से २० निसंतान महिलाओं का चयन स्तरित दैव निदर्शन प्रणाली द्वारा किया गया है। अध्ययन हेतु उपर्युक्त चयनित इकाईयों से आंकड़ों के संकलन हेतु ३० प्रश्नों की साक्षात्कार अनुसूची निर्मित की गयी जिसमें प्रत्येक प्रश्न के तीन वैकल्पिक उत्तर रखे गये। अनुसंधानकर्त्री द्वारा बिजनौर नगर में चयनित परिवारों की निसंतान महिलाओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके उनसे प्रश्न पूछकर अनुसूची स्वयं भरी गयी है। तत्पश्चात उपलब्ध आंकड़ों का सांख्यिकी वर्गीकरण व विश्लेषण किया गया है।
अध्ययन के अंतर्गत प्रमुख रूप से पांच स्वतंत्र चर यथा–वैवाहिक स्थिति, जाति, शिक्षा, व्यवसाय व परिवार लिये गये हैं जिनका स्वरूप व वर्तमान स्थिति निम्न चित्रानुसार है-

१. वैवाहिक स्थिति

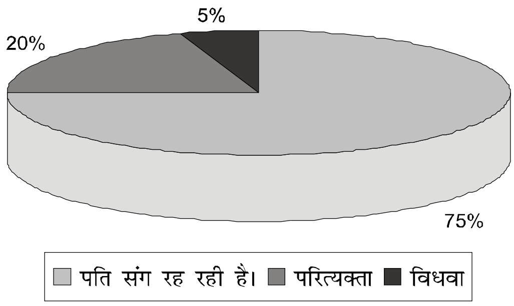

२. जातिगत स्थिति

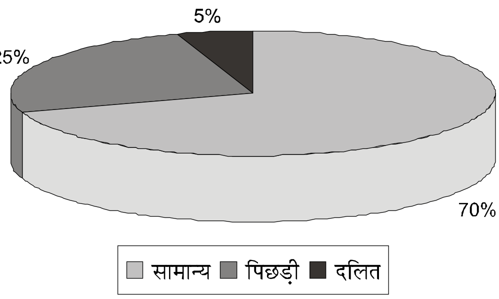

३. स्वयं की शैक्षिक स्थिति

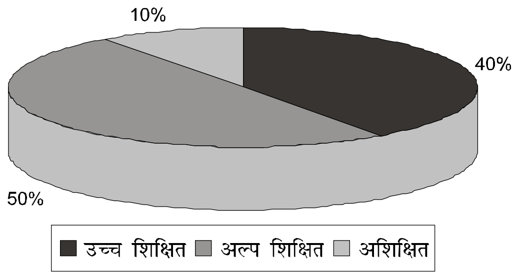

४. पति की शैक्षिक स्थिति

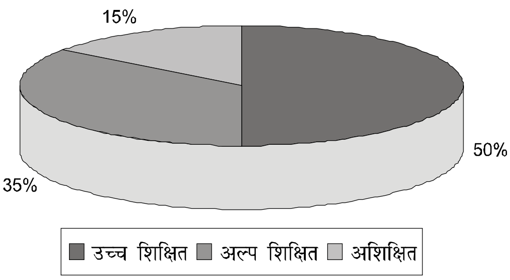

५. पारिवारिक स्थिति

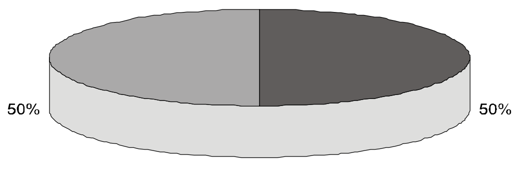

६. व्यावसायिक स्थिति

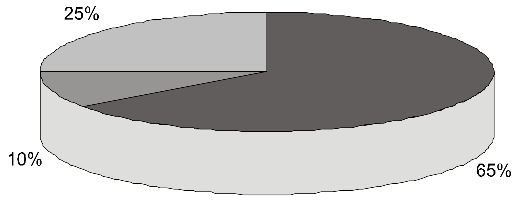

उपलब्धियाँ : अध्ययन में पाया गया कि निसंतान महिलाओं के परिवारों में प्रतिदिन आने जाने वाले व्यक्तियों में ८५ प्रतिशत परिवारों में नातेदार, १० प्रतिशत परिवारों में मित्र, ५ प्रतिशत के परिवार में अन्य लोगों जैसे पड़ौसी, धोबन, घरेलू नौकरानी आदि आते हैं। आज भी निकट सम्बन्धियों का परिवारों में आना-जाना है जो घनिष्ट रूप से सदस्यों से जुड़े होने के कारण व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हैं।

संतान न होने पर परिवार के सदस्यों के साथ अनेक सम्बन्धों के विषय में ज्ञात हुआ कि १५ प्रतिशत के मधुर ५० प्रतिशत निसंतान महिलाओं के सम्बन्ध सामान्य तथा ३५ प्रतिशत निसंतान महिलाओं के सम्बन्ध कटु पाये गये।

विवाह की आयु प्रजनन क्षमता सन्तानोत्पत्ति की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। विवाह के समय आयु के सम्बन्ध में पाया गया कि ७० प्रतिशत निसंतान महिलाओं का विवाह २० से २५ वर्ष की आयु में, १० प्रतिशत का २५ से ३० वर्ष की आयु में तथा २० प्रतिशत का विवाह ३० वर्ष से अधिक आयु में हुआ था।

निःसंतान महिलाओं के विवाह को कितने वर्ष बीत गये है? यह पूछने पर ज्ञात हुआ कि २५ प्रतिशत महिलाओं के विवाह को एक से ७ वर्ष, ३० प्रतिशत के विवाह को से १४ वर्ष तथा ४५ प्रतिशत महिलाओं के विवाह को १४ वर्ष से अधिक बीत गये हैं। यह पूछने पर कि निसंतान महिलाओं ने विवाह के पश्चात सन्तान के लिये कब सोचना शुरू किया, निम्न तथ्य ज्ञात हुये- ८० प्रतिशत महिलाओं द्वारा एक वर्ष बाद, १५ प्रतिशत महिलाओं ने ३ वर्ष बाद और ५ प्रतिशत ने ५ वर्ष बाद सन्तान के विषय में सोचना शुरू किया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकतर भारतीय परिवारों में विवाह के एक वर्ष के भीतर ही सन्तान प्राप्ति के लिये महिलायें सोचने लगती है।

अध्ययन में यह भी पाया गया कि जब एक या दो वर्ष तक सन्तान उत्पन्न नहीं होती तब परिवार व अन्य व्यक्ति उन पर दबाव बनाते हैं। ६५ प्रतिशत महिलाओं के सास/ससुर/माता /पिता ने, १० प्रतिशत की बहन/ननद/ देवरानी/जिठानी ने तथा २५ प्रतिशत पर अन्य व्यक्तियों ने दबाव बनाया।

समय बीतने के साथ-साथ निसंतान महिलाओं के प्रति पति का व्यवहार कैसा है? यह पूछने पर पाया गया कि ८० प्रतिशत महिलाओं के प्रति उनके पति का व्यवहार सामान्य, १० प्रतिशत के पति असामान्य तथा १० प्रतिशत के पति कभी सामान्य व कभी असामान्य व्यवहार करते हैं। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सन्तान न होने से पति के व्यवहार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

निसंतान महिलाओं के प्रति ससुरालवालों का रवैया कैसा है?इस सम्बन्ध में ज्ञात हुआ कि २५ प्रतिशत महिलाओं के प्रति ससुराल वाले सहानुभूतिपूर्ण रवैया रखते हैं जबकि ४० प्रतिशत महिलाओं के प्रति उनका रवैया असहानुभूतिपूर्ण तथा ३५ प्रतिशत महिलाओं के प्रति ससुराल वाले उपेक्षित रवैया रखते हैं। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सन्तान न होने के कारण ससुराल वालों का रवैया ठीक नहीं है जिससे उनके पारिवारिक सामंजस्य में कठिनाई आती है।

यह भी पाया गया कि ससुराल पक्ष वाले संतान न होने के कारण उनके प्रति अलग-अलग प्रकार की प्रतिक्रिया करते हैं। ५० प्रतिशत महिलाओं के ससुराल वाले उनके वैवाहिक जीवन में हस्तक्षेप करते हैं, ४० प्रतिशत के ससुराल वाले उन पर दोषारोपण करते हैं तथा १० प्रतिशत महिलाओं को उनके ससुराल वाले मांगलिक कार्यो में सम्मिलित नहीं करते।

ससुराल पक्ष की उपर्युक्त प्रतिक्रियायें क्या निसंतान महिलाओं के वैवाहिक जीवन को प्रभावित करती है? इस सम्बन्ध में पता चला कि ७५ प्रतिशत महिलायें पति के संग रह रही हैं, २० प्रतिशत महिलाओं के पति ने तलाक दे दिया है और अन्य महिला से पुनर्विवाह कर लिया है तथा ५ प्रतिशत महिलायें अब विधवा हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सन्तान न होना वैवाहिक जीवन का अन्त भी कर देता है।

ससुराल पक्ष की प्रतिक्रियाओं का निसंतान महिलाओं के न

केवल वैवाहिक वरन् पारिवारिक सम्बन्धों पर भी प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में पाया गया कि ५५ प्रतिशत महिलाओं के पारिवारिक सम्बन्धों पर बहुत अधिक, ३० प्रतिशत पर अधिक प्रभाव पड़ता है। केवल १५ प्रतिशत महिलाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं से केवल पारिवारिक सम्बन्ध ही नहीं, पति पत्नी के दाम्पत्य सम्बन्ध भी प्रभावित होते हैं?इस सम्बन्ध में पाया गया कि ३५ प्रतिशत पति पत्नी आपस में इस विषय पर बात नहीं करते। २० प्रतिशत एक दूसरे को दोषी समझते हैं तथा ४५ प्रतिशत एक दूसरे को सात्वंना देते हैं।

सामान्यतः समाज में विवाहित महिलाओं का अन्तःक्रिया के दौरान परस्पर संतान के विषय में पूछा जाना एक सामान्य घटना है। परन्तु जब महिलायें निसंतान होती हैं तब इस प्रश्न से उन्हें कैसी अनुभूति होती है? इस प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट हुआ कि ४५ प्रतिशत महिलाओं को यह प्रश्न बहुत बुरा लगता है, १५ प्रतिशत महिलाओं को संतान के विषय में पूछा जाना बुरा नहीं लगता। ४० प्रतिशत महिलायें इस प्रश्न से बचती हैं।

प्रायः महिलायें निसंतान महिलाओं से जब भी मिलती हैं उन्हें बिन मांगे अनेक सुझाव देने लगती हैं। निसंतान महिलाओं से उन बिन मांगे सुझाव के विषय में जानने पर ज्ञात हुआ कि महिलाओं द्वारा ६५ प्रतिशत निसंतान महिलाओं को डाक्टर/वैद्य से इलाज करवाने के लिये, २५ प्रतिशत को मौलवी/तान्त्रिक से तावीज/गण्डे करवाने के लिए सुझाव दिये गये तथा १० प्रतिशत को संतान गोद लेने के लिये सुझाव प्राप्त हुए।

उपर्युक्त सबसे बचने के लिये निसंतान महिलायें स्वयं को समाज से अलग करने का प्रयास करती हैं। यह पूछने पर कि क्या वे सामाजिक उत्सवों (विवाह, बर्थ डे पार्टी, नामकरण/त्यौहार आदि) में सम्मिलित होती हैं? इस सम्बन्ध में पाया गया कि २५ प्रतिशत निसंतान महिलायें सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित होती हैं। २० प्रतिशत सम्मिलित नहीं होती तथा ५५ प्रतिशत कभी-कभी सम्मिलित होती हैं। यह वे महिलायें है जो केवल परिवार के अन्दर होने वाले उत्सव में ही सम्मिलित होती हैं।

अध्ययन में यह भी पाया गया कि उक्त अवसरों पर सम्मिलित होकर केवल १० प्रतिशत को बहुत अच्छा लगता है। ५५ प्रतिशत को ठीक ठाक और ३५ प्रतिशत को बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निसंतान महिलाओं को सामाजिक सामंजस्य में कठिनाई आती है।

निसंतान महिलाओं से संतान न होने के कारण उत्पन्न होने वाले तनाव के विषय में जानने पर निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुये कि ४० प्रतिशत महिलाओं को सदैव तनाव रहता है, १० प्रतिशत को बिल्कुल तनाव नहीं रहता तथा ५० प्रतिशत को कभी कभी तनाव रहता है। यह भी पता चला कि तनाव में रहने से ५५ प्रतिशत महिलायें निराश रहती हैं, १० प्रतिशत असुरक्षित अनुभव करती हैं जबकि ३५ प्रतिशत महिलाओं में आत्म विश्वास में कमी आयी है।

तनाव के कारण उनके पारिवारिक सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ कि ७५ प्रतिशत निसंतान महिलाओं के पारिवारिक सम्बन्धों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, १५ प्रतिशत महिलाओं के सम्बन्धों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तथा १० प्रतिशत के सम्बन्ध कभी-कभी प्रभावित होते हैं। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संतान न होने के कारण उत्पन्न तनाव परिवार के सदस्यों के साथ सामंजस्य बैठाने में कठिनाई उत्पन्न करता है।

संतान न होने के कारण क्या महिलायें भविष्य के प्रति आशंकित रहती है? यह प्रश्न पूछने पर ५० प्रतिशत महिलाओं ने कहा, हां, ३० प्रतिशत ने नहीं तथा २० प्रतिशत ने कभी कभी में उत्तर दिया। अतः निष्कर्ष निकलता है कि संतान न होने के कारण महिलाओं का भविष्य के प्रति आशंकित होना स्वाभाविक है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि ४५ प्रतिशत महिलायें बुढ़ापे में देखभाल को लेकर आशंकित रहती है। २५ प्रतिशत को सम्पत्ति के वारिस को लेकर आशंका है तथा ३० प्रतिशत को अन्य, जैसे भविष्य में पति उन्हें न छोड़ दें।

निसंतान महिलाओं द्वारा संतान प्राप्ति हेतु किये गये उपायों के विषय में ज्ञात हुआ कि २० प्रतिशत महिलाओं ने व्रत/उपवास/मन्नत/तीर्थयात्रा के उपाय को अपनाया। ७५ प्रतिशत ने वैध/डाक्टर से इलाज करवाया तथा ५ प्रतिशत ने अन्य उपाय किये।

निसंतान महिलाओं से यह पूछने पर कि क्या उन्होंने कभी अपने पति से टेस्ट ट्यूब बेबी/गोद लेने के विकल्प पर विचार किया है?तब ६० प्रतिशत ने 'हां' तथा १० प्रतिशत महिलाओं ने 'नहीं' में उत्तर दिया।

संताने गोद लेने के सम्बन्ध में उनके पति की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में जानने पर ज्ञात हुआ कि ३५ प्रतिशत महिलाओं के पति गोद लेने के लिये सहमत, ५५ प्रतिशत के पति असहमत तथा १० प्रतिशत के पति अनिश्चय की स्थिति में पाये गये। इस सम्बन्ध में यह भी पता चला कि वे ३५ प्रतिशत महिलायें जिनके पति संतान गोद लेने के लिये सहमत हैं उनमें से २० प्रतिशत महिलायें सन्तान गोद ले चुकी हैं। वे पति जो गोद नहीं लेना चाहते वे अभी अपनी संतान होने की प्रतीक्षा में है।

संदर्भ

१. लुण्डबर्ग, जी०ए० एवं अन्य, ''सोशयोलॉजी'', चतुर्थ संस्करण, हार्पर एण्ड रो, १९५८ पृ० २६१।

२. रूटस्टेन, एस०ओ० एवं आई०एच०शाह, ''इनफिकन्डिटी इनफर्टिलिटी एण्ड चाइल्ड लेसनेस इन डेवलपिंग कन्ट्रीज', डीएचएस कम्पेरेटिव रिपोर्टस नं० ६, जेनेवा, वर्ल्ड हैल्थ ऑर्गेनाइज़ेशन, २००४

३. विज. ए, ''सोश्योकल्चरल एटीट्यूडस टूवर्डस फर्टिलिटी एंड असिस्टेड रिप्रोडक्शन इन इण्डिया : करेण्ट प्रैक्टिसेस एंड कन्ट्रोवर्सिस इन असिस्टेड रिप्रोडक्शन'' रिपोर्ट आफ ए मीटिंग ऑन मेडिकल इथिकल एंड सोशल आस्पेक्ट आफ असिस्टेड रिप्रोडक्शन हेल्ड एट डब्ल्यू.एच.ओ. हैडक्वार्टस इन जेनेवा, स्वीटज़रलैण्ड, १७-२१ सितम्बर २००१.

४. चौधरी, पी, 'क्राइसिस' आफ मस्कुलिनिटी इन हरयाणा, द अनमैरिड, द अनएप्लॉयड एंड द एज्ड' इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, XI (४६), २००५, पृ. ५१८६-८८.

५. कपाड़िया के.एम., ''मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया'' कलकत्ता, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता १९५८, पृ० १६७

६. ऋग्वेद, १०/८५/३६

७. उद्धृत, पुजारी, एस. एवं सैय्यद उनीसा, ''फेलिंग फादर हुड : ए स्टडी आफ चाइल्डलैस मैन इन रूरल आन्ध्र प्रदेश'' सोश्योलॉजिकल बुलेटिन, वॉल्यूम ६३ (१), जनवरी-अप्रैल, २३, २०१४, पृ० २१-२२.

८. पेपरीन, एन, ए. शर्मा, के सबीन, एल बेगम, एस०के० अहसान एवं ए०एच० बाकी, ''लीविंग विद इनफर्टिलिटी, एक्सपीरियन्सेस फ्रॉम अरबन स्लम पापुलेशन इन बांग्लादेश'', रिपरोडक्टिव हेल्थ मैटर्स, ८(१५), २०००, पृ. ३३-३४

९. हार्डी ई एवं एम.वाई मारकुच, ''जैण्डर इनफर्टिलिटी एण्ड आर्ट'' उद्धृत ई. वायना पी.जी. रोब एवं ग्रिफिन (सम्पा.) करेण्ट प्रैक्टिस एंड कन्ट्रोवर्सिस इन असिस्टेड रिप्रोडक्शन, जेनेवा-वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाइज़ेशन, २००२ पृ० २७२-८०।

१०. उनीसा, एस., ''सीक्यूेन्स आफ फर्टिलिटी ट्रीटमेन्ट अमंग चाइल्डलेस कपल्स इन रंगा रेडडी, डिस्ट्रिक्ट आन्ध्र प्रदेश'' इन्डिया एशिया पेसिफिक पापुलेशन जर्नल, १६(२) २००१ पृ. १६१-७६

११. भारद्वाज, ए., ''इनफर्टिलिटी एण्ड जेण्डर : ए पर्सपेक्टिव फ्राम इंडिया'', उद्धृत एफ वैन बैलेन टी गैरिस एवं एम.सी. इनहॉर्न (सम्पा.) 'सोशल साइंस रिसर्च ऑन चाइल्डलैसनेस इन ए ग्लोबल पर्सपेक्टिव एमटरडैम, २०००, पृ० ६५-७८

१२. रोसेनब्लाट, पी०सी०, पी० पीटरसन, जे० पार्टनर, एम०क्लीवलैण्ड, ए० मैक्कानेन एवं आर० फोस्टर, 'ए क्रास कल्चर स्टडी आफ रेस्पान्सेस टू चाइल्डलेसनेस' बिहेवियर साइंस नोटस, ८, १९७३, पृ. २२१-३१

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

लिंग भेद व लिंग समानता : सामाजिक – दार्शनिक आयाम

❑ डॉ० (श्रीमती) सीमा श्रीवास्तव

प्रथम नारीवादी नेत्री के रूप में प्रतिष्ठित 'मेरी वोल्सन क्राफ्ट' ने लगभग २२५ वर्ष पूर्व अपनी पुस्तक 'दि विन्डीकेशन ऑफ दि राइट्स ऑफ वुमेन में सर्वप्रथम लिंगीय समानता का विचार प्रस्तुत करते हुए कहा था कि समाज में महिलाओं को अपनी योग्यता के अनुरूप स्थान तो मिलना ही चाहिए। उस समय अंकुरित इस विचार ने आज एक सशक्त वृक्ष का रूप धरण कर लिया है जिसके आधार पर संपूर्ण विश्व में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन हेतु अभूतपूर्व प्रयास किए जा रहे हैं और जीवन के विविध क्षेत्रों में उसके सुपरिणाम भी आज दृष्टिगोचर हो रहे हैं। प्रस्तुत आलेख लिंगीय समानता की अवधारणा के अर्थ, उसके विकास, उसकी आवश्यकता, उसके आधार, लिंगीय असमानता के कारण, उसके स्वरूप, भारत में लिंगीय असमानता की स्थिति से लिंगीय समानता की दिशा में विकास-यात्रा तक शासन द्वारा इस दिशा में किए गये प्रयासों को आलोकित करने के प्रयास पर आधारित है।

हम जानते हैं कि मध्यकाल तक यूरोप में धर्म का प्रभाव बना रहा जिसके कारण मानव गरिमा का ह्रास देखा गया। लेकिन यूरोपीय पुनर्जागरण के दौरान जब बौद्धिक, वैज्ञानिक एवं धार्मिक क्रांति हुई तो मध्यकालीन धार्मिक मान्यताओं को चुनौती दी जाने लगी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर मानववाद, उदारवाद, लोकतंत्र धर्मनिरपेक्षता, तर्कबुद्धिवाद जैसी विचारधारा सामने आयी एवं अब चिन्तन का केन्द्र बिन्दु मनुष्य हो गया जिसके अन्तर्गत उन परिस्थितियों को उत्पन्न करने का प्रयास किया गया जिनमें मनुष्य अपना सर्वांगीण विकास कर सके। कुछ समय के पश्चात् यह पाया गया कि पुरुषों का तो पर्याप्त विकास हुआ है लेकिन विकास की इस दौड़ में महिलाएं कहीं पीछे रह गयी हैं और एक प्रकार की लिंगीय असमानता उत्पन्न हो गयी है जिसका आशय है कि समाज में महिलाओं को उनकी योग्यता के अनुरूप स्थान नहीं दिया जा रहा है बल्कि लिंग के आधार पर उनके साथ भेद-भाव किया जा रहा है। यही कारण है कि नारी स्वतंत्रता व समानता के समर्थकों के द्वारा लिंगीय समानता की मांग की जाने लगी एवं इसे स्थापित करने का प्रयास भी किया गया। लिंग शब्द का अंग्रेजी अनुवाद Gender और Sex है।

लेकिन यहाँ महत्वपूर्ण यह है कि हमें Gender और Sex के अन्तर को समझना चाहिए। Sex एक जैविक संवर्ग है जो सभी जीवधारियों में पाया जाता है क्योंकि सभी जीवधारियों में नर तथा मादा का विभाजन जीव विज्ञान में किया गया है। इसी क्रम में महत्वपूर्ण यह भी है कि किसी भी व्यक्ति के Sex की जानकारी के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि कई स्थानों पर सूचनार्थ यह जानकारी मांगी जाती है - जैसे प्रतियोगी परीक्षाओं में, रेलवे आरक्षण में, इत्यादि। यहां किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं है और न ही कोई आपत्ति, क्योंकि इस प्रकार की जानकारियाँ केवल सकारात्मक उद्देश्यों से ली जाती हैं, जबकि दूसरी तरफ Gender एक नकारात्मक संकल्पना है जिसे धर्म, संस्कृति और सामाजिक मूल्यों से जोड़कर देखा जाता है और जो निश्चित रूप से आपत्तिजनक भी है। यहां तक कि भेदभाव भी इसी Gender के आधार पर किया जाता है जो कि नकारात्मक भेदभाव है जबकि दूसरी ओर Sex के आधार पर किये जाने वाले भेदभाव सकारात्मक भी हैं। यही कारण है कि कभी भी न तो Sex-Equality की मांग की जाती है और न ही इसे प्रासंगिक माना जाता है जबकि दूसरी तरफ Gender के आधार पर किये जाने वाले नकारात्मक भेदभाव को न केवल समाप्त करने की मांग की जाती है बल्कि लिंगीय समानता (Gender Equality) की मांग भी की जाती है जो पूर्णतया प्रासंगिक तथा व्यावहारिक भी माना जाता है।

आज से लगभग २२५ वर्ष पहले मेरी वोल्सनक्राफ्ट ने एक पुस्तक लिखी थी। Vindication of the Rights of Women जिसमें उन्होंने इस बात का उल्लेख किया था कि मैं यह नहीं कहती कि समाज में महिलाओं का प्रभुत्व हो फिर भी इतना अवश्य कहती हूँ कि समाज में महिलाओं को उनकी योग्यता के अनुरूप स्थान तो मिलना ही चाहिए।[1] यही कारण है कि उन्हें पहली नारीवादी नेत्री के रूप में जाना जाता है, उस समय से आरम्भ होकर लिंगीय समानता (Gender Equality) का विचार आगे बढ़ते हुए २१वीं शताब्दी में आकर प्राथमिक स्तर पर आकर पहुंच गया है जिसके माध्यम से महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन के अभूतपूर्व प्रयास किये जा रहे हैं और जिसका कुछ प्रभाव

❑ एसोशिएट प्रोफेसर दर्शनशास्त्र, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार (उत्तराखण्ड)

दिखलाई भी पड़ रहा है।

लिंगीय समानता (Gender Equality) के क्षेत्र में फ्रांस की एक अस्तित्ववादी और नारीवादी नेत्री साइमन डी बुआ ने भी उल्लेखनीय कार्य किये हैं और २०वीं शताब्दी के मध्य इन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था 'The Second Sex' जिसमें इन्होंने लिंगीय समानता (Gender Equality) के विभिन्न तथ्यों व प्रमाणों को प्रस्तुत किया था तथा लिंगीय समानता (Gender Equality) की मांग की थी।[२] समोन कहती हैं - "औरत? और के लिए कोई स्वप्न दृष्टा एक बड़ा ही सीधा फारमूला उच्चारित करता है। औरत? औरत है ये शब्द काफी है उसको परिभाषित करने के लिए पुरुष के मुँह से औरत शब्द एक अपमान जनक ध्वनि रखता है। पुरुष फिर भी अपनी पाशविक प्रकृति के लिए लज्जित नहीं होता, बल्कि उसको इस बात का अभिमान होता है कि वह एक पुरुष है।

अपनी इस भावना का औचित्य पुरुष जीव विज्ञान में खोजना चाहता है। औरत सुस्त, चंचल, बेवकूफ, कठोर व वासनात्मक, क्रूर और अपमानित कुछ भी हो सकती है। पुरुष एक साथ ही इन सारे गुणों को उस पर आरोपित करता है। वस्तुतः इन सारे विरोधाभासों के बावजूद औरत सिर्फ औरत ही है।"[३] इस प्रकार बुआ ने कहा था कि वर्तमान पुरुष प्रधान समाज में जब पुरूष अपना स्थान निर्धारित करते हैं तो -

१ स्वयं में सत् के रूप में
२ साध्य के रूप में
३ मुख्य रूप में
४ चेतन सत्ता के रूप में मानते हैं। जबकि दूसरी तरफ जब समाज में महिलाओं का स्थान निर्धारित करने की बारी आती है तो वे उन्हें
५ दूसरों के लिये सत् के रूप में
६ साधन के रूप में
७ गौण रूप में
८ प्रयोग की जाने वाली जड़ वस्तु के रूप में मानते हैं जो स्पष्ट रूप से लिंगीय असमानता (Gender Inequality) के तथ्य को उजागर करता है।

Gender Inequality के कारणों के सम्बन्ध में नारीवादियों ने विस्तार से अपने विचार व्यक्त किये हैं और इसके लिए उत्तरदायी कुछ प्रमुख कारणों पर चर्चा की है। इस सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों का मानना है कि Gender Discrimination एवं Gender inequality के लिये जैविक कारण उत्तरदायी हैं क्योंकि शारीरिक रचना के आधार पर तो पुरुषों और महिलाओं में भेद स्पष्ट ही है जिसमें मातृत्व को महिलाओं का सबसे कमजोर पक्ष माना जाता है जिसके कारण महिलाएं अपने अधिकारों के लिए प्रयास नहीं कर पातीं और परिणामतः समाज में उनका स्थान गौण हो जाता है। जबकि कुछ लोग यह मानते हैं कि लिंगीय भेद और लिंगीय असमानता के लिये मनोवैज्ञानिक कारक उत्तरदायी है जिसके अन्तर्गत यह कहा जाता है कि महिलाओं का पालन पोषण बचपन से ही पुरुषों से भिन्न परिस्थितियों में किया जाता है एवं उनमें पुरूषों के विपरीत धैर्य, त्याग, संयम और सद्गुणों को विकसित करने का प्रयास किया जाता है जिसके कारण महिलाओं को अपने विकास का पूरा अवसर मिलता ही नहीं और वे अपने अधिकारों के लिये स्पष्ट मांग नहीं कर पातीं और परिणामतः लिंगीय भेद और लिंगीय असमानता बनी रहती है।

जोया जैदी अपने लेख में कहती हैं कि पुरुष महिलाओं को हमेशा यह अहसास दिलाने में कामयाब रहे कि वे शारीरिक मानसिक और बौद्धिक स्तर पर पुरुषों की अपेक्षा कमजोर हैं। इन कमजोर और द्वितीय श्रेणी के नागरिक रुपी नारी को तमाम अधिकारों से वंचित किया गया उन्हें समाज पर बोझ समझा गया।[४]

लेकिन साइमन डी बुआ का कहना था कि वास्तव में लिंगीय असमानता के लिये हमारे सामाजिक और संस्थागत मूल्य ही उत्तरदायी है जिन्हें पुरूषों के सापेक्ष ही घोषित किया गया है जिसके कारण ये मूल्य महिलाओं के हित में कार्य कर ही नहीं पाते। परिणामतः लिंगीय भेद और लिंगीय असमानता की निरंतरता बनी रहती है। ऐसी स्थिति मे लिंगीय भेद को समाप्त करने और लिंगीय समानता को स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि हमारे सामाजिक और संस्थागत मूल्यों में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया और उन्हें महिलाओं के सापेक्ष घोषित किया जाए जिससे वे महिलाओं के हित में कार्य कर सके और जिससे लिंगीय भेद (Gender Discrimination) को समाप्त किया जा सके और लिंगीय समानता (Gender Equality) को स्थापित किया जा सके।

लिंगीय भेदभाव एक बहुआयामी तथ्यात्मक समस्या है जो महिलाओं के लिये न केवल जीवन पर्यन्त चलती है बल्कि जन्म लेने से पहले ही आरम्भ हो सकती है। इसके दृष्टांत के रूप में गर्भावस्था के दौरान बच्चे के Sex का पता करना और यदि वह Female है तो उसे गर्भ में ही मार देने को लिया जा सकता है। इसे ही कन्या भ्रूण हत्या (Female foeticide) के नाम से जाना जाता है जिसके कारण भारत की जनगणना रिर्पोट के अनुसार शिशु लिंगानुपात १९५१ में ९८३ से घटकर २०११ में ९१४ रह गया है।[५] कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि लिंगीय

भेद का व्यवहार जन्म के पहले से ही आरम्भ हो जाता है और मृत्यु पर्यन्त चलता रहता है। अतः महिलाओं के विरुद्ध होने वाले भेदभाव और हिंसात्मक गतिविधियों को कई वर्गों में रखा जा सकता है जैसे -

१ महिलाओं के विरुद्ध घरेलू सामाजिक व आपराधिक हिंसा।
२ विधवाओं के विरूद्ध अत्याचार
३ बलात्कार की घटनाएं
४ पत्नी पर अत्याचार
५ अपहरण तथा व्यपहरण की घटनाएं
६ दहेज हत्याएं
७ वैश्यावृत्ति
८ आर्थिक दृष्टिकोण से भी महिलाओं को आत्मनिर्भर नहीं बनाया जाता है।
६ महिलाओं को पुरूष की अनुगामिनी होने की शिक्षा दी जाती है।
१० महिलाओं का वैवाहिक जीवन प्रायः धमकियों से भरा हुआ रहता है।
११ परिवार में निर्णय लेते समय महिलाओं की भागीदारी पर्याप्त नही होती, यहां तक कि ऐसे निर्णयों में भी महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित नहीं की जाती जिसका उनके जीवन पर गंभीर प्रभाव पड़ने वाला है।
१२ आय का बहुत कम भाग महिलाओं के ऊपर खर्च किया जाता है।
१३ निर्धनता का सर्वाधिक प्रभाव महिलाओं पर ही पड़ता है।
१४ यहां तक कि भूमि, संपत्ति और संसाधनों पर भी महिलाओं का स्वामित्व नाम मात्र का रहता है।
१५ केन्द्रीय सरकार द्वारा १६६३ में महिलाओं के विरुद्ध अपराध पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसके अनुसार भारत में प्रत्येक ४० मिनट में एक महिला के साथ बलात्कार होता है।[६] लैंगिक शोषण जो महिला कर्मचारी का मालिक द्वारा, महिला कैदी का जेल कर्मियों द्वारा, महिला मरीजों का अस्पताल कर्मियों द्वारा जिसमें ६० प्रतिशत मामलों में शारीरिक हिंसा नहीं बल्कि प्रलोभन या मौखिक दवाब में काम किया जाता है।

महिलाओं के प्रति भेदभाव की यह स्थिति कमोवेश पूरे विश्व में बनी हुई है अर्थात् यह समस्या किसी देश विशेष की नहीं है और यही कारण है कि बहुत से देशों में नारीवादी आन्दोलन जोर पकड़ने लगे हैं। लेकिन यहां प्रश्न यह है कि आखिर लिंगीय समानता (Gender Equality) का स्वरूप कैसा हो?

१६ क्या इसका आशय पूर्णतया मुक्ति से लिया जाए?निश्चित रूप से ऐसा नहीं माना जा सकता क्योंकि ऐसा होने पर महिलाओं के शोषण को तो समाप्त किया जाएगा लेकिन पूरी सामाजिक व्यवस्था बिगड़ जायेगी, क्योंकि यदि स्त्रियों से पृथक पुरूष पूर्ण नहीं है तो पुरूषों से पृथक स्त्रियां भी पूर्ण नहीं कही जा सकतीं।
१७ क्या इसका आशय पूर्णतया संरक्षण से लिया जाए? निश्चित रूप से ऐसा नहीं माना जा सकता क्योंकि ऐसा होने पर तो लिंगीय असमानता (Gender Inequality) ही सिद्ध हो जाएगी क्योंकि संरक्षण की बात कमजोर वर्ग के लिये ही प्रासंगिक होती है।
१८ क्या इसका आशय निपेरक्ष समानता से लिया जाए? निश्चित रूप से ऐसा भी नहीं माना जा सकता क्योंकि सकारात्मक भेदभाव तो किया जाना अनिवार्य है, अतः यदि निरपेक्ष समानता का समर्थन किया जाये तो यह महिलाओं के हित में नहीं होगा।

अतः लिंगीय समानता (Gender Equality) का वास्तविक तात्पर्य यह है कि ऐसे निर्णयों में अनिवार्यतः महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिये जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से महिलाओं को प्रभावित करते है। साथ ही यहां आर्थिक स्वतन्त्रता भी अनिवार्य है क्योंकि आर्थिक स्वतनत्रता और समानता के बिना अन्य प्रकार के आदर्श स्वतः ही धूमिल हो जाते हैं लेकिन यह सब कुछ पुरूषों और महिलाओं के परस्पर प्रेम और सहयोग से ही सम्भव है। अतः लिंगीय समानता का अर्थ इस रूप में लिया जाना चाहिये कि पुरूषों एवं महिलाओं को एक दूसरे को परस्पर पूरक के रूप में मानते हुये प्रेम और सहयोग के आधार पर कार्य करे जिससे महिलाओं को आत्म निर्णय का अधिकार हो। लेकिन इन सब के लिये बाह्य सुधारों के साथ-साथ महिलाओं में आन्तरिक सुधार भी जरूरी है अर्थात् उनकी इच्छा शक्ति एक अनिवार्य शर्त है क्योंकि सभी चीजें कानून के माध्यम से सम्भव नहीं है।

अब प्रश्न यह है कि आखिर लिंगीय समानता की बात किन आधारों पर की जाती है अर्थात् लिंगीय समानता के आधार क्या है?

१ महात्मा गाँधी स्त्री को पुरुष से हेय नही मानते थे। उन्हीं के शब्दों में ''स्त्री पुरुष की सहचरी है उसकी मानसिक क्षमताएं पुरुष के बराबर हैं। पुरुष के छोटे से छोटे कार्य कलाप में भाग लेने का उसे अधिकार है और जितनी स्वाधीनता और आजादी का हकदार पुरुष है उतनी ही हकदार स्त्री भी है।[७]
२ लिंगीय समानता के तत्वमीमांसीय आधार को बताते हुए

कहा जा सकता है कि सृष्टि का आध्यात्मिक आधार भले ही अद्धैत हो लेकिन सृष्टि का भौतिक और व्यवहारिक आधार द्वैत ही है – एक नर और दूसरा नारी क्योंकि इनके माध्यम से ही सृष्टि की प्रक्रिया आगे बढ़ सकती है। यद्यपि इन दोनों में कुछ मौलिक अन्तर है और यह मौलिक विरोध ही सृष्टि को आगे बढ़ाते है तथा विकास की ओर ले जाते हैं।

३ लिंगीय समानता के वैज्ञानिक आधार का समर्थन पंडित नेहरू और स्वामी विवेकानन्द जैसे विद्धानों के द्वारा किया गया है क्योंकि पंडित नेहरू के अनुसार विकास के लिये प्राकृतिक संसाधनों का दोहन एक अनिवार्य शर्त है लेकिन प्राकृतिक संसाधनों के पूर्ण दोहन के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि १०० प्रतिशत मानवीय संसाधन के द्वारा दोहन किया जाए अर्थात यदि महिलाओं की लगभग ५० प्रतिशत आबादी को इस प्रक्रिया से पृथक रखा जाए तो संसाधनों के पूर्ण दोहन और विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण है कि स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा था कि महिलाओं को विकसित किए बिना विकास केवल काल्पनिक होगा क्योंकि एक पंख से पक्षी से उड़ने की कल्पना नहीं की जा सकती।

लिंगीय समानता का नैतिक आधार बताते हुए कहा जाता है कि यदि परिवार को प्रथम पाठशाला के रूप में स्वीकार किया जाता है तो माँ को प्रथम शिक्षिका का दर्जा दिया जाता है। यदि प्रथम शिक्षिका के साथ ही भेदभाव किया जाए अर्थात् उसे आर्थिक गतिविधियों से दूर रखा जाए अथवा उसे निरक्षर रखा जाए या उसके पोषाहार पर ध्यान न दिया जाए तो भावी पीढ़ी के स्वस्थ्य विकास की बात कैसे सोची जा सकती है? इसके बिना न तो स्वस्थ्य परिवार विकसित हो सकता है और न ही स्वस्थ समाज।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आज लिंगीय समानता एक अनिर्वायता बन गयी है और लिंग भेद को समाप्त करना एक बाध्यता है लेकिन इसके लिये समय के अनुरूप नारी को परिभाषित किया जाना जरूरी है इस सम्बन्ध में –

१ पूर्णतया मुक्ति का दृष्टिकोण अतिवादी है

२ पूर्णतया संरक्षण का दृष्टिकोण लिंगीय असमानता और लिंग भेद को ही प्रदर्शित करता है।

३ निरपेक्ष समानता का दृष्टिकोण भी प्रासंगिक नहीं है क्योंकि समानता के साथ ही सकारात्मक भेदभव को स्वीकार किया जाना जरूरी है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि लिंगीय समानता को प्रतिद्वंदिता से नहीं स्थापित किया जा सकता बल्कि यह प्रेम और सहयोग से ही संभव है जिसके अन्तर्गत पुरुषों और महिलाओं को एक दूसरे की स्वतन्त्र सत्ता का सम्मान करना चाहिए और परस्पर पूरक के रूप में जीवन व्यतीत करना चाहिए। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में महिलाओं को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जाना अनिवार्य है। इसके लिए यदि आवश्यक हो तो वैधानिक सुधार भी किए जाएं और उन्हें व्यवहार में महिलाओं में तक पहुंचाया भी जाए लेकिन इन सभी सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए महिलाओं में आन्तरिक सुधार प्राथमिक शर्त है।

अब यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में लिंग – भेद की समस्या का अध्ययन किया जाए तो यद्यपि प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अच्छी थी, उसका स्थान उच्च्य था उसकी उच्चता के प्रेरक तत्व कौन से थे तथा ह्रास कब और कैसे हुआ यह समझने के लिए इतिहास पर दृष्टिपात करना होगा।[८] क्योंकि महिलाएं भी पुरूषों के समकक्ष ही वैदिक क्रियाकलापों में भाग लिया करती थीं, यही कारण है कि इस दौरान लोपामुद्रा, अपाला, घोषा जैसी वैदिक ऋचाओं को देखा गया। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध था स्त्री पुरूषों में कोई भेद नहीं था इस युग में दोनों की सामाजिक स्थिति समान रूप से महत्वपूर्ण थी। जबकि उत्तर वैदिक काल तक आते-आते महिलाओं के सम्बन्ध में विरोधाभासी स्थितियां सामने आने लगीं। ''किंतु तदयुगीन समाज में पत्नी की पति के प्रति अधीनता आदरभाव से पूरित थी। इस अधीनत्व के बावजूद पत्नियाँ तद्युगीन ग्रहों का आभूषण मानी जाती थीं। पत्नी पूरे ग्रह का संचालन करती थी तथा दास आदि को उचित कार्य में प्रवृत करती थी।''[९] जबकि मौर्यकाल और गुप्तकाल तक महिलाओं की स्थिति और गिर गयी और गुप्त काल में ही पहली बार छठी शताब्दी के आरम्भ में सती प्रथा का दृष्टान्त उपलब्ध हुआ। इसके पश्चात् पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति और भी अधिक चिंताजनक हो गयी, जबकि १८वीं शताब्दी के समाप्त होते-होते अर्थात् आधुनिक भारतीय पुर्नजागरण की पूर्व संध्या पर महिलाओं की स्थिति निम्नतम स्तर पर पहुंच गयी। मध्यकाल में स्त्रियां पुरूषों के अधीन हो गईं उनका सार्वजनिक जीवन में प्रवेश बंद कर घर की चार दीवारी में जकड़ दिया गया पति परमेश्वर, पतिव्रत धर्म का पालन, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा जैसी अनेक कुरीतियों के कारण स्त्रियों की सार्वजनिक जीवन में भागीदारी समाप्त हो गई।[१०]

परिणामस्वरूप १९वीं शताब्दी में धार्मिक सामाजिक आन्दोलन हुआ और सुधारों के केन्द्र बिन्दु के रूप में महिलाओं को ही चुना गया जिसके कारण न केवल सती जैसी कुप्रथा को अवैध घोषित किया गया बल्कि विधवा विवाह अधिनियम भी बनाया गया साथ ही महिला शिक्षा और महिलाओं के उत्तराधिकार के लिये भी

व्यापक कानून बनाये गये। यहीं से धीरे-धीरे भारत में लिंगीय समानता को स्थापित करने के लिए और लिंग भेदको समाप्त करने का विचार जोर पकड़ने लगा जिसके माध्यम से भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा में थोड़े बहुत परिवर्तन तो देखे गये हैं। लेकिन २१वीं शताब्दी में भी भारतीय समाज में लिंगीय भेद (Gender Inequality) के प्रमाण एवं तथ्य देखे जा सकते है क्योंकि -

१ आज भी Pregnancy के दौरान बहुत सी महिलाओं की मृत्यु हो जाती है जिसका एक प्रमुख कारण ये है कि Pregnency दौरान उनके स्वास्थ्य की ठीक देखभाल नहीं होती और नियमित स्वास्थ्य जांच भी नहीं करवाई जाती।

२ जीवित जन्म लेने वाली बहुत सी बालिकाओं की किशोरावस्था से पहले की मृत्यु हो जाती है।

३ शिक्षा आरम्भ करने वाली बालिकाओं में से एक बहुत बड़ी संख्या उन बालिकाओं की होती है जो प्राथमिक स्तर से आगे नहीं बढ़ पाती।

४ महिलाओं का वैवाहिक जीवन प्रायः कष्टप्रद रहता है। NFHS-2 National Family Health Survey के अनुसार २१ प्रतिशत महिलाएं पति व अन्य पारिवारिक सदस्यों द्वारा उत्पीड़ित की जाती हैं। NFHS-2 के अनुसार ३४ प्रतिशत महिलाएं शारीरिक हिंसा और ०६ प्रतिशत यौन हिंसा से पीड़ित हैं।[११]

५ परिवार में आज भी पुत्र का ही स्थान मुख्य होता है लिंग चयन की प्रवृत्ति बनी हुई है।

६ परिवार के दैनिक व्यवहारों में भी बालिकाओं और महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है जो खान-पान, रहन-सहन, भेष-भूषा, शिक्षा, आर्थिक स्वतन्त्रता, रोजगार इत्यादि सभी स्तरों पर देखा जा सकता है।

७ महिला साक्षरता का प्रतिशत भी राष्ट्रीय औसत से बहुत नीचे है।

८ महिलाओं को प्रायः आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं दी जाती है जिसके कारण वस्तु स्थिति यह है कि न केवल आय का बहुत कम भाग महिलाओं के द्वारा अर्जित किया जाता है बल्कि व्यय होने वाले धन का भी बहुत कम भाग महिलाओं के ऊपर खर्च किया जाता है।

९ भारतीय समाज में आज भी लिंग भेद की स्थिति को इस बात से भी समझा जा सकता है कि जनसंख्या जैसी राष्ट्रीय समस्या को नियंत्रित करने का अधिकांश दबाव भी महिलाओं पर है। भारत में बन्ध्याकरण में महिलाओं और पुरूष का अनुपात ९८:२ का है जो स्पष्ट रूप से लिंग भेद को ही प्रदर्शित करता है।

इन्हीं कारणों से भारतीय विधायिनी संस्थाओं में तथा सिविल सेवाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम रहा है व राष्ट्रीय आय में भी महिलाओं का योगदान बहुत कम रहा है तथा इन परिस्थितियों में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिये आवश्यक प्रयास अनिवार्य हो जाते हैं। जिसके अन्तर्गत वैधानिक प्रयास करते हुए स्वतन्त्रता के पश्चात -

१ हिन्दू विवाह अधिनियम

२ महिला उत्तराधिकार अधिनियम

३ दहेज प्रतिबन्ध अधिनियम

४ प्रसूति लाभ अधिनियम

५ वैश्यावृति निवारण अधिनियम

६ समान पारिश्रमिक अधिनियम १९७६

७ कामकाजी महिलाओं के लिए हॉस्टल का निर्माण

८ १९७५ को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया जाना एवं १९७६-८५ को संयुक्त राष्ट्र महिला दशक।

९ महिला विकास निगम १९८६

१० राष्ट्रीय महिला आयोग १९९२

११ राष्ट्रीय महिला कोष १९९२

१२ महिला समृद्धि योजना १९९३ बनाए गए तथा अभी हाल में घरेलू हिंसा अधिनियम २००५ भी बनाया गया है जिसे २६ नवम्बर २००६ को पूरे भारत में लागू किया गया।[१२] उपर्युक्त कानूनों और अधिनियमों में समय-समय पर आवश्यक संशोधन भी किये गये हैं। राष्ट्रीय पुलिस आयोग के अध्यक्ष श्री धर्मवीर का कहना था कि ''अब समय आ गया है जब पुलिस में महिलाओं की भूमिका बढ़े।''[१३]

''**हाल** के वर्षों में हमारी संसद ने कुछ विधान पारित किए हैं जिन्होंने महिलाओं को कानूनी रूप से कई बन्धनों से मुक्ति दी है तथा स्त्रियों की स्थिति को अच्छी बनाने में मदद पहुंचाई है, कई और बाधाएं हैं जिन्हें दूर करना है''[१४]

''**अन्तराष्ट्रीय** स्तर पर महिलाओं के विरुद्ध होने वाले भेदभाव की समाप्ति की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहल उस समय हुई जब १८ दिसम्बर १९७९ को यू०एन०ओ० की महासभा में महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय को महिलाओं के लिए अधिकारों का विलेख पत्र कहा जाता है। इनमें से १६वे अनु० को भारत ने अपने यहाँ आर्थिक, भाषायी और राजनीतिक स्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए स्वीकार किया और इसे व्यवहार में कार्यान्वित करने के लिए अनेक संवैधानिक व विधिसम्मत उपाय किए

हैं।"[15]

महिला सशक्तिकरण के लिये किये गये उपर्युक्त प्रयास और बनाये गये नियमों तथा कानूनों के पश्चात अब कुछ परिवर्तन देखा जा रहा है क्योंकि अब न केवल सिविल सेवाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ रहा है बल्कि विधायिनी संस्थाओं में भी महिलाओं के लिये एक-तिहाई आरक्षण की मांग की जा रही है। इसी क्रम में पिछले कुछ वर्षों से Gender Budget की संकल्पना भी सामने आयी है। जिसके अन्तर्गत विभिन्न मन्त्रालयों में महिला प्रकोष्ठ का गठन कर दिया गया है जो इस बात पर नजर रखते हैं कि आवंटित राशि का कितना प्रतिशत भाग महिलाओं पर खर्च किया जा रहा है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारत में लिंगीय भेद को समाप्त करने के लिये तथा लिंगीय समानता को स्थापित करने के लिये महिला सशक्तिकरण के व्यापक प्रयास किये जा रहे हैं इस सम्बन्ध मे व्यापक नीतियां बनाई गयी हैं और कार्यक्रम जारी हैं लेकिन इन योजनाओं और कार्यक्रम का लाभ उन महिलाओं तक पहुंचना जरूरी है जिन्हें ध्यान में रखकर इन्हें आरम्भ किया गया है। लेकिन इन सबके लिए महिलाओं में आन्तरिक सुधार एक अनिवार्य शर्त है साथ ही पुरूषों को भी इसे स्वीकार करना होगा।

हर स्त्री अपने भीतर थोड़ा सा पुरुष और हर पुरुष अपने भीतर थोड़ी सी स्त्री खोज निकालने को और खोजने से भी वहां न मिले तो रच लेने को तत्पर हो। अपनी-अपनी हैसियत में एक स्वतः सम्पूर्ण व्यक्तित्व बनने की आकांक्षा ही भविष्य को इस कार्यक्रम की ओर ले जा सकती है कि नारी-पुरुष का सम्बन्ध द्वंदात्मक न होकर योगात्मक बने, आखिर यह आदम की पसली का नहीं बल्कि पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति तथा अर्द्ध नारीश्वर का देश है।[16]

सन्दर्भ

1. Wollstonecraft, Mary, 'A Vindication of the rights of woman: with structures on political and moral subjects', W.W. Norton & Company, New York City, 1792.
2. Beauvoir Simon De, 'The Second Sex', Knoof Doubleday Publishing Group, France, 1970, p. xviii
३. बोउवार सीमोन द, 'स्त्रीः उपेक्षिता' (द सकेन्ड सेक्स का हिन्दी रूपान्तर- प्रभा खेतान), हिंद पॉकेट बुक्स दिल्ली, १९९४, पृ. ३२
४. जैदी जोया, 'फीमेल फीटिसाइड इन इण्डिया ह्यूमनिस्ट', आउटलुक अंक ११(II) २००८ पृ०७१
५. पाण्डेय आनंद एवं अर्चना पाण्डेय, 'सामान्य अध्ययन', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल २०१३ पृ०३७५ ।
६. आहुजा राम, 'सामाजिक समस्याएं', रावत पब्लिकेशन जयपुर २००२ पृ० २४०।
७. 'स्पीचेज ऑफ राइटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी, जी०एन० नेटसन एण्ड कम्पनी मद्रास १९३३ पृ० ४२५.
8. Desai, Neera, 'Women in modern India', The University of California Publication, 1957, p.1
9. Altakar, A.S., 'Position of Women in Hindu Civilization', Motilal Banarsi Dass, Varanasi, 1956, p. 94
१०. भदौरिया एस०एस०, 'भारतीय समाज में महिलाएं', भारतीय समाज म०प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, २००८, पृ० ३३६
११. शुक्ला अमित, '२१वीं सदी में महिला सशक्तीकरण की दशा और दिशा', ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. १५१
१२. पाण्डेय एस०एन०, 'घरेलू हिंसा से महिलाओं को संरक्षण कानून २००५', हरी लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद २००७, पृ० १
१३. जाखड़, दिलीप, 'मानव अधिकार और पुलिस संगठन', यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, पृ० १२५
१४. Ahuja Ram, 'Right of Women feminist Perspective', Rawat Publications, Jaipur, 1992, p.132
१५. सीमा कु., 'महिला अधिकार और भारतीय प्रावधान', उपकार प्रकाशन, आगरा, पृ० १०,
१६. वर्मा अर्चना, 'सशक्तीकरण पिछली सदी के स्वप्न का आगामी यथार्थ, 'वागर्थ' (इक्कीसवीं शती का भविष्य विशेषांक) अंक-७५ सितम्बर २००१, भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता, पृ. १६२

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

जनसंचार एवं सूचना तकनीकी के साधन तथा ग्रामीण विकास

❑ डॉ. संजय जोशी

किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था और उसके लोगों की खुशहाली के लिये प्रौद्योगिकी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संसाधन है। किसी संगठन एवं समुदाय के लाभ और विकास में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है। नब्बे के दशक से प्रगति और विकास के नवीन साधन के रूप में स्वीकृत 'सूचना प्रौद्योगिकी' आज मानव जीवन के अनेक पहलुओं को एक साथ प्रभावित कर रही है। इसी नवीन प्रौद्योगिकी ने न केवल विश्व समुदाय को विचार-विमर्श का एकीकृत मंच प्रदान किया है बल्कि संपूर्ण मानव जाति के विकास हेतु अभिनव मार्ग भी प्रशस्त किया है।[१] अनियंत्रित ढंग से विकसित होने वाली यह अद्यतन प्रौद्योगिकी जहाँ एक ओर संपूर्ण विश्व को तकनीकी आधार पर संयुक्त परिवार का रूप देने में सफल रही है वही दूसरी ओर प्रत्येक क्षेत्र के विकास हेतु एक पूर्व प्राथमिकता और अनिवार्य शर्त बन चुकी है।

> जनसंचार के साधन जहाँ एक ओर संपूर्ण विश्व को तकनीकी आधार पर संयुक्त परिवार का रूप देने में सफल रहे हैं वहीं दूसरी ओर प्रत्येक क्षेत्र के विकास हेतु एक पूर्व प्राथमिकता और अनिवार्य शर्त बन चुके हैं। ग्रामीण परिक्षेत्रों में सूचना तंत्र के प्रसार से न केवल रोजगार संवर्द्धन की विपुल संभावनाएं प्रकट हो रही हैं, बल्कि कृषि प्रसार, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन एवं धार्मिक क्षेत्रों के अनेक रोचक व ज्ञानवर्धक जानकारियाँ ग्रामीणों को प्राप्त हो रही हैं। जनसंचार माध्यमों ने बड़े ही प्रभावपूर्ण तरीके से स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, सामाजिक कुरीतियों एवं विषमताओं के प्रति ग्रामीणों में जागरूकता उत्पन्न की है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत ग्रामीण जीवन एवं विकास पर जनसंचार एवं सूचना तकनीकी के साधनों के प्रभाव को उजागर किया गया है।

आज ग्रामीण क्षेत्रों में दूरदर्शन, एस.टी.डी., फैक्स एवं अन्य संचार संसाधन न केवल सूचना क्रान्ति के प्रतीक बन गए हैं, बल्कि प्रचार-प्रसार और जन-जागरण के सुदृढ़ माध्यम बनकर भी उभर रहे हैं। अब वहाँ कम्प्यूटर आधारित सूचना-प्रौद्योगिकी की अनिवार्यता दृष्टिगोचर हो रही है।[२] ग्रामीण परिक्षेत्रों में सूचना तंत्र के प्रसार से न केवल रोजगार संवर्द्धन की विपुल संभावनाएं प्रकट हो रही हैं, बल्कि कृषि प्रसार, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन एवं अन्य राजकीय सेवाओं में संचार संसाधनों और कम्प्यूटरीकरण के अंचलों की शासकीय और गैर-शासकीय गतिविधियों में सूचना प्रौद्योगिकी और संचार सेवाओं का तीव्र गति से विस्तार करके आन्ध्रप्रदेश, केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक आदि राज्य आशातीत सफलता अर्जित कर रहे हैं।[३]

भारत जैसे ग्राम प्रधान और जनसंख्या बहुल राष्ट्र में ग्रामीण विकास को त्वरित गति प्रदान करने के लिए एक प्रभावशाली यंत्र के रूप में सूचना प्रौद्योगिकी के अभिवन अनुप्रयोगों की संभावनाएँ निरन्तर प्रबल होती जा रही हैं। मछली पालन, कृषि प्रसार, संसाधन प्रबंध, बागवानी, कृषि शिक्षा, गृह विज्ञान, कृषि इंजीनियरिंग, कृषि संचार, पशु विज्ञान, स्वास्थ्य, शिक्षा, संपत्ति हस्तातंरण, राजस्व अभिलेख, भूमि रिकार्ड, सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक विज्ञान आदि प्रमुख क्षेत्रों में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभावोत्पादक उपयोग करके देश के ग्रामीण विकास को नवीन आयाम दिया जा सकता है।[४] भारत जैसे विकासशील देश के लिये आधुनिक संचार प्रणाली महत्वपूर्ण निविष्टियों में से एक है जो ग्रामीण समाज के सामाजिक, आर्थिक रुपांतरण की गति निर्धारित करेगी।

शोध अवधारणा : मनुष्य अपने मेधावी मस्तिष्क के बलबूते पर ही विभिन्न सूचनाओं को संयोजित कर अपनी तर्क शक्ति द्वारा उसे ज्ञान में बदल सकता है। इसी ज्ञान में कुछ जीवन मूल्यों, प्रेरक तत्वों और अंर्तदृष्टि को सम्मिलित कर वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हित के लिए एक बौद्धिक समुदाय के निर्माण का कार्य करता है। सूचना तकनीकी ने समाज की इस विकास प्रक्रिया की गति को तेज कर दिया है। सूचना विकास प्रक्रिया के लिए संचारी एवं संजीवनी शक्ति का कार्य करती है। आज विश्व की ७ अरब से अधिक जनसंख्या की सूचना सह क्रिया ज्ञान और बुद्धि के माध्यम से समाज का सर्वागींण विकास हो रहा हैं।[५] सूचना एवं जनसंचार के बारे में और विस्तृत जानने से पूर्व इसके अर्थ एवं प्रक्रिया को समझना उचित होगा।

सामाजिक अंतःक्रियाएं ही संपूर्ण सामाजिक संबंधों का निर्देशन करती हैं जिसमें व्यक्तियों के बीच पारस्परिक उत्तेजना तथा अनुक्रिया होती है। संचार तथा सामाजिक सम्पर्क सामाजिक अंतक्रिया के दो अनिवार्य तत्व हैं।

''सामाजिक अंतक्रिया वह सामान्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों में परस्पर एक अर्थपूर्ण सम्पर्क

❑ सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

होता है जिसके फलस्वरूप उनके व्यवहारो में कुछ संशोधन हो जाता है, चाहे इसकी मात्रा कितनी ही कम क्यों न हो।''[६] - एल्ड्रिज तथा मैरिल

संचार शब्द की मूल धातु संस्कृत की 'चर' है अर्थात 'चलना'। दूसरे शब्दों में जब हम किसी भाव या विचार या जानकारी को दूसरों तक पहुँचाते हैं और यह प्रक्रिया सामूहिक पैमाने पर होती है तो इसे जनसंचार कहते हैं। जनसंचार का उददेश्य जानकारी या विचारों को समाज के उन तमाम लोगो के लिए साझा करना है जो इनसे संबंधित हैं या जिन्हें यह जानकारी पहुँचाना अपेक्षित है ताकि सभी लोग इनसे अवगत हो सके तथा लाभ उठा सकें।

मूलतः सूचना प्रौद्योगिकी एक व्यापक अवधारणा है, जिसमें कम्प्यूटर, हार्डवेयर, साटवेयर और इंटरनेट के माध्यम से सूचना प्रक्रिया और उसके प्रबंध संबंधी सभी पहलुओं को सम्मिलित किया जाता है। प्रारम्भिक वर्षो में यह मान्यता थी कि कम्प्यूटरों का उपयोग केवल महानगरों के विकास तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों तक ही सीमित है, किन्तु आज सूचना प्रौद्योगिकी ने ग्रामीण क्षेत्रों में दूर-दूर तक टेलीफोन एवं सेलफोन के विस्तार तथा नेटवर्क के माध्यम से कृषकों व ग्रामीणों के दरवाजों पर सशक्त दस्तक देनी शुरू कर दी है।

विकास की अवधारणा : विकास का शाब्दिक अर्थ किसी चीज के क्रमशः फैलाव से है। विकास निरन्तर शनैःशनैः होने वाला परिवर्तन है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में विकास का अर्थ सामाजिक विकास से है। बिंदेश्वरी पाठक[७] अपनी सम्पादित पुस्तक में विकास के तात्पर्य को बताते हुए लिखते हैं कि ''विकास की अवधारणा में सकारात्मक दिशा में गुणात्मक परिवर्तन और परिमाणात्मक वृद्धि दोनो ही तत्व सम्मिलित हैं। समाज के सदस्यों में वाछंनीय दिशा में नियोजित सामाजिक परिवर्तन लाने के उपाय को विकास कहते है।''

अतः विकास की धारणा सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और राजनैतिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर प्रत्येक समाज में भिन्न भिन्न पाई जाती है। इस अर्थ में विकास एक मिश्रित अवधारणा है। विकास में व्यापार, कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति को गिना जाता है। विकास में कमजोर वर्गो, स्त्रियों और बच्चों, बीमार, बेरोजगार और वृद्धजन तथा अल्पसंख्यकों के कल्याण को भी सम्मिलित किया जाता है। अतएव विकास एक मूल्य आधारित अवधारणा है। नर्मदेश्वर प्रसाद[८] विकास को परिभाषित करते हुए लिखते है कि, ''विकास से तात्पर्य सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि से भी है।''

उद्देश्य : अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नानुसार हैं :-

१. जनसंचार के कौन कौन से माध्यम ग्रामीण क्षेत्र में ज्यादा प्रचलित हैं उनकी जानकारी प्राप्त करना।
२. जनसंचार माध्यमों से ग्रामीणों को क्या क्या लाभ प्राप्त होते हैं उनको ज्ञात करना।
३. ग्रामीण विकास में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का अनुशीलन करना।
४. सामाजिक एवं आर्थिक विकास में जनसंचार के साधनों के योगदान को समझना।
५. ग्रामीणों के व्यक्तित्व विकास में जनसंचार साधनों की भूमिका को समझना।
६. ग्रामीण समाज में नैतिकता एवं सास्ंकृतिक मूल्यों के पतन में जनसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका का अध्ययन करना।

शोध प्रारुप : यह शोध पत्र मध्यप्रदेश के नीमच जिले के जीरन तहसील के ग्रामीण समाज के अध्ययन पर आधारित अनुभाविक एवं विश्लेषणात्मक प्रारुप का है। इस प्रकार अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन में जीरन तहसील के राबड़िया गाँव के ग्रामीणों का प्रतिनिधित्वपूर्ण एवं पर्याप्त निदर्श का चयन करने हेतु उद्देश्यपूर्ण एवं कोटा निदर्शन प्रणाली से १०० ग्रामीणों को दैव निदर्शन पद्धति के द्वारा सूचनादाताओं के रुप में सम्मिलित किया गया है। समकों एवं तथ्यों को एकत्रित करने के लिये अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची, अनौपचारिक बातचीत एवं समूह चर्चा इत्यादि प्राथमिक शोध उपकरण एवं प्रविधियों का उपयोग किया गया। शोध अध्ययन में द्वैतीयक तथ्यों एवं समंकों को विभिन्न पुस्तकों, इंटरनेट, टेलीविजन, शोध जर्नल्स एवं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्राप्त कर उनका यथास्थान शोध पत्र में प्रयोग किया गया है

उपलब्धियॉं : अध्ययन की प्रमुख उपलब्धियॉं निम्नानुसार हैं -

तालिका संख्या ०१

सर्वाधिक उपयोग में आने वाले जनसंचार साधन

जनसंचार माध्यम	संख्या	प्रतिशत
रेडियो	१०	१०
टेलीविजन	७७	७७
कम्प्यूटर/एन्ड्राइड फोन	१३	१३
योग	१००	१००

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज में जनसंचार के सर्वाधिक प्रचलित एवं पसंदीदा माध्यम के रुप में टेलीविजन उभर रहा है जहां अब से दो दशक पूर्व ग्रामीण समाज का सर्वाधिक लोकप्रिय साधन रेडियो हुआ करता था आज वह पृष्ठभूमि में जाता हुआ दिखाई दे रहा है। ग्रामीण

सामज की युवा पीढ़ी में कम्प्यूटर एवं एंड्राइड फोन उनकी पहली पंसद के रुप में देखी गई।

तालिका संख्या ०२

ग्रामीणों को जनंसचार माध्यम से हो रहे लाभ

संलग्नता का कारण	संख्या	प्रतिशत
कृषि कार्य में लाभ	३१	३१
धार्मिक प्रवचन द्वारा आध्यात्मिक संतुष्टि	२४	२४
मनोरंजन	२५	२५
शैक्षणिक ज्ञान में वृद्धि	५	५
स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता	७	७
राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम	८	८
योग	१००	१००

उपर्युक्त तालिका विश्लेषण से स्पष्ट कर रही है कि ग्रामवासी दूरदर्शन पर एवं कम्प्यूटर के माध्यम से विभिन्न विषयों पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों से लाभान्वित होते हैं। इनमें कृषि, मनोरंजन एवं धार्मिक विषयों से संबंधित कार्यक्रमों के प्रति ग्रामीणों की रुचि सर्वाधिक देखी गई। कृषि के क्षेत्र में ग्रामवासी प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का लाभ अपने व्यवसाय में करते हुए पाये गये।

तालिका संख्या ०३

परिवार नियोजन में मीडिया की भूमिका

संतति की संख्या	संख्या	प्रतिशत
एक संतान वाले परिवार	०२	०२
दो संतान वाले परिवार	३७	३७
तीन संतान वाले परिवार	३८	३८
चार संतान वाले परिवार	१६	१६
चार से अधिक संतान वाले परिवार	०७	०७
योग	१००	१००

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जनसंचार माध्यमों का प्रभाव शासन की योजनाओं को क्रियान्वित करने में सहायक होता है। विभिन्न माध्यमों पर प्रसारित होने वाले परिवार नियोजन से संबंधित विज्ञापनों एवं संदेशों को ग्रामीणों ने भी आत्मसात किया है। जहॉ एक समय एक परिवार में ५-७ बच्चे होना सामान्य घटना थी वहीं ग्रामवासियों में भी परिवार नियोजन के प्रति संज्ञानता उत्पन्न हुई और वे छोटे परिवारों का महत्व समझने लगे हैं।

तालिका संख्या ०४

नैतिकता एवं संस्कृति के ह्रास में जनसंचार साधनों का प्रभाव

जनसंचार साधनों की भूमिका है	संख्या	प्रतिशत
सहमत	५२	५२
असहमत	४०	४०
कुछ बता नहीं सकते	०८	०८
योग	१००	१००

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जनसंचार के साधनों के सकारात्मक पक्ष के साथ साथ इसका नकारात्मक पक्ष भी उजागर हुआ है। ५२ प्रतिशत ग्रामवासियों ने स्वीकार किया कि वर्तमान समय में समाज में जो नैतिकता, संस्कार एवं सस्ंकृति का अवमूल्यन हो रहा है उसके पीछे मीडिया, विशेषकर टेलीविजन और सेलफोन जिम्मेदार हैं।

तालिका संख्या ०५

कुरीतियों एवं अंधविश्वासों की तीव्रता पर प्रभाव

इनमें कमी आ रही है	संख्या	प्रतिशत
हॉ	३५	३५
नही	४५	४५
कुछ कह नही सकते	२०	२०
योग	१००	१००

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ३५ प्रतिशत ग्रामीण यह मानते हैं कि टेलीविजन एवं रेडियो पर प्रसारित होने वाले ज्ञान एवं सामाजिक विषयों से संबंधित कार्यक्रमों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अंधविश्वास की तीव्रता को कम किया है। इसमें स्वास्थ्य एवं रोगों के निदान से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों ने झाड़-फूंक, जादू टोना और डोरा ताबीज से रोग निवारण के भ्रम को भी कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हालांकि शोध समंक के तथ्य इस बात को भी रेखांकित कर रहे हैं कि कुरीति एवं अंधविश्वासों के निवारण में जनसंचार माध्यमों की कोई विशेष भूमिका नहीं है ऐसा कहने वाले ४५ प्रतिशत लोग पाये गये।

तालिका संख्या ०६

जनसंचार साधनों का दैनिक जीवन में कार्य

संलग्नता का कारण	संख्या	प्रतिशत
तनाव मुक्ति हेतु	८	
समय बिताने के लिये	१४	
भावनात्मक मुक्ति हेतु	५	
समस्याओं से ध्यान हटाने तथा उनकी तीव्रता से बचने के लिये	७	

स्व व्यक्तित्व विकास के लिये	१८	
कलात्मक आनन्द प्राप्ति हेतु	३८	
ज्ञान व शिक्षा प्राप्ति हेतु	७	
समाज, राष्ट्र तथा दुनिया की समसामयिक घटनाओं की जानकारी	३	
योग	१००	१००

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जनसंचार माध्यमों का ग्रामीणवासी अपने दैनिक जीवन में सर्वाधिक उपयोग मनोरंजन के द्वारा कलात्मक आनंद प्राप्त करने के लिये करते हैं। इसमें अलग अलग उम्र के व्यक्तियों की रुचि भी अलग अलग देखी गई। युवा वर्ग जहाँ सिनेमा एवं गाने के प्रति ज्यादा आकर्षित पाये गये वहीं महिला उनसे संबंधित प्रसारित होने वाले सीरियलों के प्रति ज्यादा रुचिकर देखी गई। व्यस्क एवं अधेड़ उम्र के व्यक्तियों का लगाव धार्मिक सीरियलों के प्रति ज्यादा पाया गया जिनसे वे तनाव मुक्ति, समय बिताने एवं भावनात्मक मुक्ति हेतु इसका उपयोग करते हैं।

निष्कर्ष - शोध अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार है :-

१. ग्रामीण समाज के जनसंचार के आधुनिकतम साधन अब परम्परागत साधनों का स्थान लेते हुए दिखाई दे रहे हैं। कुछ समय पूर्व ग्रामीण समाज में जनसंचार के परम्परागत साधनों में रामलीला, रासलीला, नौटंकी, भागतव कथा, लोक नृत्य, तमाशा, चौपाल इत्यादि प्रमुख हुआ करते थे वहीं अब दूरदर्शन कम्प्यूटर, इंटरनेट, सेलफोन, एंड्राइड फोन इनका स्थान लेते हुऐ दिखाई दे रहे हैं।
२. जनसंखर माध्यमों ने बड़े ही प्रभावपूर्ण तरीके से स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, सामाजिक कुरीतियों एवं विषमताओं के प्रति ग्रामीणों में जागरुकता उत्पन्न की है।
३. टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले कृषि दर्शन कार्यक्रम, रेडियों में प्रसारित किसान वाणी कार्यक्रम ने किसानों में जागरूकता उत्पन्न की है।
४. प्रत्येक जिले में किसान कॉल सेंटर निःशुल्क किसानों को कृषि क्षेत्र की जानकारी एवं उनकी कृषि समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं।
५. ग्रामीण समाज में भी जनसंचार के साधन सामाजिक कुरीतियों को कम व दूर करने में ग्रामीण दरिद्रता को कम करने में और विकास योजनाओं को अंतिम व्यक्ति तक पहुँचने में सार्थक भूमिका निभा रहा है।
६. ग्रामीण समाज की युवा पीढ़ी में इन्टरनेट बैकिंग, रेल्वे टिकट, बिलों का भुगतान आनलाइन करना प्रचलित हो रहा है।
७. भारत के गॉवों के किसान भी अब न्यूज मीडिया के सहारे उन्नति और विकास के पथ पर अग्रसर हो उठे हैं। मौसम की स्थिति और कृषि से संबंधित सभी जानकारी वे घर बैठे अपने लैपटॉप या मोबाइल पर पा लेते हैं। इससे उनके धन, समय और श्रम की बचत होती है जिसे वे किसी और उत्पादक काम पर खर्च कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. Vankatachalam, 'The Computer Revolution', Pitambar Publication, New Delhi, 2010, P-68
2. Joshi, P.C., Culture, 'Development and Communication Revolution', Main Stream, Republic Day. No. 21, 1986, P-42
3. Keval, J. Kumar, 'Mass Communication in India', Jaico Publishing House, Bombay 1981, P-98
4. 'Rural Development and Communication Policies', Indian Institute of Mass Communication, 1980.
5. Sharma, R.K., 'The Role of Media in Society', Aman Publication, Sagar, 2003, P.57
6. Gerbher, G. (Ed.), 'Sociology of Mass Communication', Free Press, New York ,1976, PP.121-127
7. Pathak Bindeshwari. (Ed.), 'Continuity and Change in Indian Society' (Essay in Memory of Late Prof. Narmadeshwar Prasad), Concert Publishng Company, New Delhi, 1998, P-27.
8. Prasad, Narmadeshwar, 'The Myth of the Caste System', Samjna Prakashan, Patna, 1957, P-126

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

महाविद्यालय के छात्रों में परिसर से लगाव एवं अलगाव एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डॉ. उमाचरण**

भूमिका : प्रस्तुत शोध पत्र में महाविद्यालयी विद्यार्थियों में अपने महाविद्यालय परिसर के प्रति पाये जाने वाले लगाव एवं अलगाव का अध्ययन किया गया है। लगाव (Belonging) एवं अलगाव (Detachment) की यह भावना छात्र जीवन के निम्न विभिन्न आयामों से संबंधित हो सकती है।

१. अन्य विद्यार्थियों से लगाव – अंतक्रिया एवं एकीकरण द्वारा अन्य सामाजिक समूहों से लगाव।

२. विभाग से लगाव : एकीकरण एवं अंतक्रिया द्वारा विभागीय प्राध्यापकों से लगाव।

३. परिसर से लगाव : परिसर के सामाजिक एवं भौतिक क्षेत्रों से लगाव।

प्रस्तुत शोध पत्र में महाविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले महाविद्यालय परिसर के विभिन्न क्षेत्रों एवं इन क्षेत्रों के प्रति विद्यार्थियों की भावना एवं व्यवहार का अध्ययन किया गया है। छात्र ऐसा क्यों करते हैं, परिसर के स्तर पर छात्रों का ये लगाव एवं अलगाव किन रूपों में मुखर होता है, कौन से कारक इन्हें प्रभावित करते हैं एवं छात्र जीवन के अनुभव में इसके महत्व को रेखांकित किया गया है।

लगाव को 'स्वयं एवं स्वयं के वातावरण से आत्मीयता' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।[१] दूसरों से अंतक्रिया के द्वारा हम स्थानों और वस्तुओं के प्रति आत्मीयता को बढ़ाते हैं। वातावरण एवं स्थानों से यह अंतक्रिया इस शोध पत्र का केन्द्र बिन्दु है।

इसमें विद्यार्थियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले परिसर क्षेत्रों एवं क्षेत्रों के प्रति छात्रों की भावना एवं व्यवहार का अध्ययन किया गया है। छात्र ऐसा क्यों करते हैं ये भी जानने का प्रयास किया गया हैं परिसर के स्तर पर विद्यार्थियों का ये लगाव एवं अलगाव किन रूपों में मुखर होता है, कौन से कारक इसे प्रभावित करते हैं एवं छात्र जीवन के अनुभव में इसके महत्व को भी रेखांकित किया गया है।

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन बरेली जिले के २० हजार से अधिक छात्रों वाले महाविद्यालय बरेली कालेज के ५० छात्र सूचनादाताओं से साक्षात्कार एवं अवलोकन पद्धति का प्रयोग करते हुए पूछे गये विभिन्न प्रश्नों के उत्तर में प्राप्त दत्तों पर आधारित है। सूचनादाताओं का चयन दैव एवं सोद्देश्यपूर्ण निदर्शन से किया गया है। अनुभवजनित दत्तों के द्वारा परिसर में छात्रों के जीवन को समझने का प्रयास किया गया है कि वे परिसर में किन क्षेत्रों का ज्यादा प्रयोग करते हैं, किन क्षेत्रों से बचते हैं, किन क्षेत्रों के प्रति लगाव एवं अलगाव की भावना रखते हैं। सर्वेक्षण के निदर्शन के छोटे आकार के कारण बहुत ही सामान्यीकृत निष्कर्षों तक पहुंचना सम्भव नहीं है। हांलांकि अध्ययन का मुख्य उद्देश्य परिसर के छात्रों में पायी जाने वाली लगाव एवं अलगाव की भावना को विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से समझना है।

उपलब्धियाँ : प्रस्तुत शोध से ज्ञात हुआ है कि विद्यार्थी अपने परिसर से किस तरह अंतक्रिया (Interaction), एकीकरण (Integration) और अपवर्जन (Exclusion) के माध्यम से लगाव, अलगाव महसूस करते हैं। पसंद नापसंद के क्षेत्रों एवं गतिविधियों के विषय में भी पता लगा है। सूचनादाताओं से प्राप्त दत्तों से ज्ञात हुआ है कि छात्रों की पसंद नापसंद मुख्यतः सुरक्षित एवं सजह महसूस करने से है। उन क्षेत्रों में वे ज्यादा जाते हैं जहां वे स्वयं को सुरक्षित एवं सहज समझते हैं। वे क्षेत्र जहां उनकी असुरक्षा एवं असहजता बढ़ जाती है उनसे वे दूर रहने का प्रयास करते हैं। कुछ छात्रों की अभिरूचि व्यक्तिगत कारणों से भिन्न है। अलगाव की भावना व्यक्तिगत अभिरूचि से प्रभावित होती है। सबके मनपसंद क्षेत्र वे हैं जहां अधिकाधिक संसाधन उपलब्ध हैं, छात्र एक दूसरे से मिल सकते हैं। सामाजिक अंतक्रिया के साथ व्यक्तिगत अध्ययन भी कर सकते हैं।

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, बरेली कालेज, बरेली (उ.प्र.)

सारणी संख्या १

छात्रों में परिसर से लगाव की भावना

मापक	छात्रों की संख्या	प्रतिशत
तीव्र लगाव	०	०
लगाव	१८	३६
उदासीन	६	१२
अलगाव	२०	४०
तीव्र अलगाव	६	१२
योग	५०	१००

सारणी संख्या २

छात्रों में परिसर के प्रति अन्तर्भाव की भावना

मापक	छात्रों की संख्या	प्रतिशत
अन्तर्वेशन	२६	५८
निष्पक्ष	१६	३२
अपवर्जन	५	१०
योग	५०	१००

लगाव की भावना : उपर्युक्त सारणियों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ५२ प्रतिशत सूचनादाता परिसर से लगाव महसूस नहीं करते हैं। इनमें से १२ प्रतिशत की भावना अति तीव्र है। हालांकि अलगाव का यह प्रतिशत महाविद्यालय के परिसर में क्षेत्र के अनुसार बदलता रहता है। ५८ प्रतिशत सूचनादाता परिसर की विभिन्न गतिविधियों में अर्न्तभाव (Inclusion) महसूस करते हैं। १० प्रतिशत सूचनादाता पूर्णतया पृथक महसूस करते हैं। शेष अपने अनुभव के विषय में निश्चय से कुछ नहीं कह पाये।

सारणी संख्या ३

प्राध्यापकों से छात्रों का लगाव

मापक	छात्रों की संख्या	प्रतिशत
अत्यधिक	६	१२
सामान्य	२६	५२
बिल्कुल नहीं	१८	३६
योग	५०	१००

सारणी संख्या ३ के दत्तों से स्पष्ट है कि शिक्षक और शिक्षार्थी के संबंधों में लगाव नहीं है। ३६ प्रतिश्ता सूचनादाता अपने प्राध्यापकों से बिल्कुल भी लगाव महसूस नहीं करते हैं। अनेक छात्र अध्यापकों के नाम तक नहीं जानते हैं। उनके मध्य अन्तक्रिया इतनी कम है कि अपेक्षित सामान्य शिष्टाचार का भी अभाव है। अन्तक्रिया कम होने से सबसे बड़ी भूमिका छात्रों की महाविद्यालय गिरती हुई उपस्थिति है। क्लासरूम टीचिंग ज्ञान के विनिमय की प्रक्रिया न होकर एक औपचारिक अभ्यास मात्र रह गया है। इसके विपरीत १२ प्रतिशत छात्र अध्यापकों से गहरे भावनात्मक स्तर पर जुड़े हैं। वे उन्हें 'गाइड' और 'मेन्टर' के रूप में देखते हैं। कक्षा के बाहर भी उनमें अन्तक्रिया होती है। छात्र प्राध्यापकों के नवीन दिशा निर्देशों का इन्तजार करते हैं और उनके बताये हुए मार्ग से अपने भविष्य की रूपरेखा तय करते हैं। ऐसे विद्यार्थी परिसर के क्षेत्रों, गतिविधियों, अवसरों एवं कर्मचारियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। परन्तु अभी भी अधिकांशतः छात्र (५२ प्रतिशत) अध्यापकों को सेवा प्रदाता एवं स्वयं को सेवा उपभोक्ता मानते हैं। इस सेवा के लिए उन्होंने निर्धारित फीस महाविद्यालय को दी होती है तथा क्लास न होने पर वे अनेक उपभोक्ताओं की तरह सेवा में कमी की बात करते हैं। उनमें प्राध्यापकों के प्रति कृतज्ञता के भाव का अभाव है तथा प्राध्यापकों की अनुपस्थिति के लिए रोष है।

लगाव के कारण : छात्रों में महाविद्यालय के प्रति लगाव विभिन्न सतरों पर पाया जाने वाला परिवर्तनशील एवं असंगत अनुभव है।[२] यह इस अध्ययन में सत्य पाया गया, क्योंकि साक्षात्कार में विद्यार्थियों ने किसी स्थान को किसी कारण से पसंद किया है और उसी स्थान को दूसरे कारण से नापसंद किया है। पसंद और नापसंद की यह भावना इस पर भी आधारित थी कि कौन साथ है। समय एवं परिस्थितियों के साथ इस भावना में बदलाव पाया गया। अपने विषय से संबंधित क्षेत्रों में वे सहज महसूस करते हैं। लेकिन दूसरे विषय के क्षेत्रों में शरारत करने में उन्हें संकोच नहीं होता है। ३० प्रतिशत छात्र परिसर को उसके वातावरण से जोड़ते हैं जिस वातावरण में वे स्वयं को स्वागतयोग्य महसूस करते हैं, सहज और सुरक्षित महसूस करते हैं तथा कर्मचारियों को सहयोगी पाते हैं, उस वातावरण वाले परिसर को अच्छा मानते हैं। जिन स्थानों पर विभिन्न छात्रों की विभिन्न मांगे पूर्ण होती हैं उन्हें भी अच्छा कहा गया है किन्तु यहां भी व्यक्तिगत अभिरूचि एक महत्वपूर्ण कारक है। अनेक विद्यार्थियों ने छात्र प्रस्थिति की भी चर्चा की है। विद्यार्थी होने का भाव और इस कारण उन्हें प्राप्त अधिकारों की भी वे बात करते हैं। अनेक वर्षों से वहां अध्ययनरत होना, प्राध्यापकों एवं कर्मचारियों से जान पहचान, परिसर के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी, उन्हें एक सामान्य विद्यार्थी जीवन जीने में सहयोग करती है। परिसर से परिचय, सहजता एवं सुरक्षा की भावना उनके अन्दर 'घर में होना' की भावना जागृत करती है। यह भावना अपने विषय के क्षेत्रों में और भी बढ़ जाती है। इसीलिए छात्र कामर्स ब्लाक, साइंस ब्लाक, आर्टस ब्लाक जैसे संबोधनों का प्रयोग करते हैं। उनके

मध्य सामुदायिक भावना का विकास होता है। किन्तु दूसरे विषय के छात्र इसके विपरीत महसूस करते हैं। हांलाकि कुछ क्षेत्र जैसे कैंटीन, कार्यालय, साइकिल स्टैण्ड, खेल के मैदान एवं कामन रूम में उनके मध्य भेदभाव समाप्त हो जाता है। **परिसर में** होने वाली विभिन्न शैक्षिक, सांस्कृतिक गतिविधियों में सहभागिता लगाव बढ़ाने का प्रमुख कारण है। खेल, उत्सव, सेमिनार, रंगमंच, क्लब्स, एन.सी.सी., स्कॉउट एवं एन. एस.एस. जैसी गतिविधियों से उनमें अन्तर्वेशन (Inclusion) की प्रक्रिया बढ़ती है।

अलगाव के कारण : सभी छात्रों ने अलगाव एवं अपवर्जन का अनुभव किया हो ऐसा नहीं है। अनेक प्रकार के निषेध एवं वंचनाएं अलगाव और अपवर्जन को बढ़ावा देते हैं।[३] Trowler & Trowler ने माना है कि छात्रों के कुछ नकारात्मक अनुभव अपवर्जन की प्रक्रिया को और तीव्र कर देते हैं। Mann[4] का भी यही मत है कि अपरिचित संस्कृति भी नवीनता का कारण है। प्रस्तुत शोध में इन विचारों को समर्थन मिला है कि ६४ प्रतिशत छात्र स्वयं को महाविद्यालय के परिसर से विरक्त महसूस करते हैं। उनकी विरक्तता की भावना की तीव्रता में अंतर है। परिसर में असहज होने की भावना इसका मुख्य कारण है। वातावरण से सामंजस्य न बैठा पाने के कारण भी अनेक छात्र अलगाव महसूस करते हैं। असहजता, असुरक्षा, अभित्रस्त होना, सम्मान न मिलना जैसे कारकों से छात्रों में सीमान्तक समूहों को बढ़ावा मिलता है। जिन क्षेत्रों एवं गतिविधियों से छात्रों में भय उत्पन्न होता है, उनमें उनकी सहभागिता कम हो जाती है। राजनीतिक विचारधारा एवं ऐसे राजनीतिक समूहों से लगाव भी विरोधी विचारधारा एवं समूहों के प्रति अलगाव बढ़ाता है। अनेक छात्रों ने आउटसाइडरर्स का मुद्दा भी बार-बार उठाया हैं ऐसे लोग जो विद्यार्थी नहीं हैं, परिसर में उनकी दखलअंदाजी को उचित नहीं माना गया है। इससे अलगाव एवं अपवर्जन दोनों को बढ़ावा मिलता है। अनेक छात्रों द्वारा परिसर की गरिमा को क्षति पहुचाने वाली गतिविधियाँ उचित नहीं मानी गयी हैं जैसे जो महाविद्यालय के परिसर को गंदा करते हैं, जो शोरगुल एवं दुर्व्यवहार करते हैं, उनको वरीयता मिलने से सामान्य छात्र अलगाव एवं अपवर्जन महसूस करते हैं। कुछ क्षेत्रों में कुछ छात्र शेष की तुलना में अधिक आधिपत्य जमाते हैं और दूसरों को उन क्षेत्रों से दूर रखने का प्रयास करते हैं। सांस्कृतिक एवं लैंगिक व्यवहार भी अलगाव एवं अपवर्जन बढ़ाते हैं। अपनी व्यक्तिगत अभिरूचि वाली गतिविधियों की कमी छात्रों को उदासीन बना देती है। अनेक छात्र महाविद्यालय द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली सेवाओं एवं संसाधनों को पर्याप्त नहीं मानते हैं। कई परिसर में उपलब्ध अवसरों की समय से जानकारी प्राप्त न होने के कारण दु:खी रहते हैं।

अलगाव एवं अपवर्जन की भावना पूरे परिसर पर आधारित न होकर विभिन्न क्षेत्रों, गतिविधियों से संचालित होती है। समय के साथ इनमें परिवर्तन देखा गया है। ऐसे विद्यार्थी जो परिसर में विद्यमान छात्रावासों के निवासी हैं उनमें परिसर से लगाव की भावना ज्यादा है। इसके विपरीत बाहर से आने वाले या कभी-कभी आने वाले छात्र स्वयं को अपवर्जित महसूस करते हैं। किन्तु अलगाव एवं अपवर्जन की भावना मुख्य रूप से व्यक्तिगत जयादा है। कई छात्र समस्त अवरोधों के बाद भी परिसर का अंग होने को लालायित रहते हैं।

शोध से ज्ञात हुआ है कि सांस्कृतिक, शैक्षिक गतिविधियों में सहभागिता, परिसर से लगाव, महाविद्यालय में अंतर्वेशन एवं छात्र जीवन के सर्वांगीण अनुभवों को परिसर प्रभावित करता हैं। यह भी स्पष्ट हुआ है कि सभी छात्र लगाव एवं अलगाव का अनुभव करते हैं समय और परिस्थितियों के साथ इनमें परिवर्तन होता रहता है। सभी छात्रों ने अनुकूल एवं प्रतिकूल अनुभवों के विषय में कहा है। सभी आउटसाइडर्स को परिसर से बाहर रखना चाहते हैं। सुरक्षा एक मुख्य मुद्दा है। संसाधनों में वृद्धि और विशेष समूहों की समस्याओं का समाधान बहुतों की अपेक्षा है। विद्यार्थियों से अन्तक्रिया से संबंधित कोई भी नीति परिसर के महत्व को समझे बिना पूर्ण नहीं हो सकती है। Tinto[५] का भी यही मत है। परिसर के कॉमन स्पेसेज पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इससे छात्रों के साथ सम्मानपूर्ण, सहज, सुरक्षित संबंधों को प्रोत्साहन मिलेगा।

सन्दर्भ

1. May, V. 'Self, Belonging and Social Change', Sociology, 45 (3), 2011, p. 368
2. Foster, E., Lawther, S., Keenan, C., Bates, N., Colley, B. and Lefever. R., 'The HERE Project : Higher Education and Engagement', Final Project Report. The Higher Education Academy, 2011
3. Trowler, V and Trowler P, 'Student Engagement Evidence Summary', The Higher Education Academy, York 2010
4. Mann, S, 'Alternative Perspective on the Student Experience : Alienation and Engagement', Studies in Higher Education 26 (1) 2010, pp. 7-19
5. Tinto V, 'Research and Practice of Student Retention : What Next?' Journal of College Student Relation : Research, Theory and Practice, 8(1), 2006-2007, pp. 1-9

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

भारतीय राष्ट्रीय-आन्दोलन में रोहतक (हरियाणा) का योगदान

❑ डॉ० मीनाक्षी

उन्नीसवीं सदी में भारतीय समाज में पुनर्जागरण के लक्षण दिखाई देने लगे थे। इस पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप धार्मिक-सामाजिक सुधार आन्दोलन शुरू हुए। इन सुधार आन्दोलनों का प्रभाव केवल धर्म, समाज और साहित्य पर ही नहीं, अपितु भारत के राजनीतिक जीवन पर भी पड़ा। राजनीतिक जीवन में धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना का संचार होने लगा। इस चेनता के प्रभाव से देश में अनेक राजनीतिक संगठनों की स्थापना हुई। इन संगठनों का मुख्य उद्देश्य समाज की कुरीतियों को दूर करके एक संगठित राष्ट्र का नव निर्माण करना तथा देश को अंग्रेजी प्रभुत्व से बचाना था। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में हरियाणा प्रदेश के जनपद रोहतक के योगदान को उजागर किया गया है।

उन्नीसवीं सदी में भारतीय समाज में पुनर्जागरण के लक्षण दिखाई देने लगे थे। इस पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप धार्मिक-सामाजिक सुधार आन्दोलन शुरू हुए। इन सुधार आन्दोलनों का प्रभाव केवल धर्म, समाज और साहित्य पर ही नहीं, अपितु भारत के राजनीतिक जीवन पर भी पड़ा। राजनीतिक जीवन में धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना का संचार होने लगा। इस चेतना के प्रभाव से देश में अनेक राजनीतिक संगठन बने। इन संगठनों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र को जगाना था ताकि पुरातन सामाजिक कुरीतियों को दूर करके संगठित राष्ट्र का नव-निर्माण किया जा सके तथा देश अंग्रेजी साम्राज्यवादी शक्तियों का सामना करने में सक्षम हो सके। इस राष्ट्रव्यापी पुनर्जागरण के प्रभाव से रोहतक (वर्तमान हरियाणा प्रान्त का जिला) भी अछूता नहीं रहा। राष्ट्रव्यापी पुनर्जागरण का प्रभाव रोहतक पर भी पड़ना अवश्यम्भावी था। यहाँ के स्थानीय वर्गों के लोग, जैसे कि कृषक, श्रमिक, पूंजीपति, बुद्धिजीवी, कर्मचारी, व्यापारी तथा उद्योगपति आदि अंग्रेजी शासन के भेदभावपूर्ण रवैये को अच्छी प्रकार समझ चुके थे।[1] अतः इस स्थिति से निबटने के लिये लोगों में जो चेतना जागृत हुई वही विचारधारा राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में प्रस्फुटित हुई।

उन्नीसवीं सदी में भारत में चलने वाले सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों में आर्य समाज को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस आन्दोलन के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। अपने प्रचार कार्य को सुसंगठित रूप देने के लिए स्वामी दयानन्द जी ने १८७५ ई० में बम्बई (मुम्बई) में आर्य समाज की स्थापना की। १८७७ ई० में जब स्वामी दयानन्द जी पंजाब प्रान्त में आए तब लाहौर शहर में उन्होंने आर्य समाज की एक शाखा की नींव रखीं। पंजाब के लोग बढ़-चढ़कर आर्य समाज में सम्मिलित हुये। तत्पश्चात् १८८० ई० में स्वामी दयानन्द जी रिवाड़ी शहर (वर्तमान हरियाणा प्रान्त में सम्मिलित) में भी गये जहाँ पर उन्होंने आर्य समाज की ही एक अन्य शाखा संचालित की। कुछ समय बाद १८८३ ई० में रोहतक में भी आर्य समाज की शाखा खोल दी गई। यहाँ पर १८९० ई० तक यह शाखा काफी लोकप्रिय हो गई थी।[2] इसका लक्ष्य समाज में अज्ञानता, रूढ़िवादिता तथा अविद्या जैसी बुराइयों को दूर करना था। यद्यपि आर्य समाज का आंदोलन रोहतक नगर में काफी सफल रहा, किंतु योग्य व्यक्तियों के अभाव में, महर्षि दयानन्द जी का संदेश इस समय हरियाणा के सभी नगरों तथा गाँवों तक नहीं पहुँच पाया था।

सात-आठ वर्ष पश्चात् मुख्य रूप से लाला लाजपतराय ने हरियाणा में आर्य समाज के प्रसार में योगदान दिया। लाला लाजपतराय, वैसे तो पंजाब प्रान्त के रहने वाले थे, जहाँ १८६५ ई० में जगराँव नामक स्थान पर उनका जन्म हुआ, परंतु उनके सार्वजनिक जीवन का आरम्भ वर्तमान हरियाणा प्रान्त से ही हुआ। यहीं पर उन्होंने राष्ट्रीयता का प्रथम अध्याय सीखा। यहाँ वे १८८४ ई० में आ गये थे।[3] उनका प्रथम निवास स्थान रोहतक ही बना, जहाँ उनके पिता जी सरकारी स्कूल में अध्यापक नियुक्त होकर आये थे। तत्पश्चात् जब लाला जी मंत्री बने तब उन्होंने समाज को नई राह दिखाई। चौधरी पीरूसिंह, भगत फूलसिंह, चौधरी रणपतसिंह तथा चौधरी मातूराम आदि स्थानीय नेताओं ने भी लाला जी को इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। आर्य समाज के प्रचारकों ने रोहतक जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में भी जाकर सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध प्रचार कार्य किया। उन्होंने देशभक्ति से ओत-प्रोत व्याख्यान देकर यहाँ राष्ट्रीय जागृति की पृष्ठभूमि तैयार की।[4] शीघ्र ही

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, चौधरी देवीलाल मैमोरियल कन्या महाविद्यालय, सिवाह, पानीपत (हरियाणा)

रोहतक जिले के लोगों में, मुख्यतः जाटों में राष्ट्रीय चेतना के लक्षण दिखाई देने लगे।

आर्य समाज के समर्थकों ने १८८५ ई० में रोहतक शहर में 'दयानन्द मठ' की स्थापना की। यहाँ पर जनसभा के माध्यम से लोगों को अंग्रेजी सरकार की शोषणकारी नीतियों के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती थी। अतः स्थानीय लोगों की राष्ट्रव्यापी गतिविधियों से इस समय अंग्रेजी सरकार की दृष्टि में उनका सबसे बड़ा शत्रु, आर्य समाज का आंदोलन बन गया।[५] अंग्रेज अधिकारी, आर्य समाज के सदस्यों को दुष्ट व षडयंत्रकारी मानते थे। उनके साहित्य को छीन लिया जाता था तथा झण्डे को फाड़ दिया जाता था। सरकार विरोधी तत्वों पर नियन्त्रण पाने के उद्देश्य से अंग्रेजी सरकार ने 'सेडीशन एक्ट' लागू कर दिया इससे लोगों में सरकार के प्रति क्षोभ की भावना और प्रबल हो गई।[६] इसी समय रोहतक जिले के साँघी ग्राम निवासी डाक्टर रामजी लाल ने भी अपने हरियाणवी भाईयों में राजनीतिक चेतना लाने में विशेष योगदान दिया। लाला रामजी लाल के राष्ट्रवादी विचारों से प्रभावित होकर लाला लाजपत राय ने अपने भाषण में कहा कि "हजारों जाटों के हृदयों में उसने देशभक्ति की भावना भरकर उन्हें सार्वजनिक कार्यों के लिए प्रेरित किया है, जाट बिरादरी में कोई दूसरा व्यक्ति उसकी बराबरी नहीं कर सकता।"[७]

रोहतक में प्रकाशित होने वाली कुछ पत्र-पत्रिकाओं का भी राष्ट्रीय आंदोलन में काफी योगदान रहा है। ये पत्र-पत्रिकायें या तो 'उर्दू भाषा' में छपती थीं या साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाओं के रूप में हिन्दी भाषा में छपती थीं। इनमें 'जाट-गजट' पत्रिका ने जाट समुदाय के विचारों का प्रतिनिधित्व किया।[८] इसके अतिरिक्त 'हरियाणा तिलक', 'भारत टेक' तथा 'ज्योति' आदि पत्रिकाओं तथा कोह-ए-नूर, रहबर, अखबार-ए-चुनार, ज़माना, आज़ाद हिन्दुस्तान, सुदर्शन, भारत-प्रताप आदि समाचार पत्रों का भी लोगों पर विशेष प्रभाव पड़ा।[९] इन सभी पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाले राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत लेखों को जब स्थानीय शिक्षित वर्ग ने अध्ययन किया तो असंख्य लोगों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेना आरम्भ कर दिया।

हरियाणा में राष्ट्रीय चेतना के उदय एवं विकास में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का सर्वाधिक योगदान रहा है। इस संस्था का गठन, २८ दिसम्बर, १८८५ को बंबई (मुम्बई) में हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कोई अकस्मात घटना नहीं थी। देश में राष्ट्रवाद का उदय हो चुका था तथा उभरते हुये राष्ट्रवाद को एक मंच की आवश्यकता थी। कांग्रेस ने इस आवश्यकता को पूरा कर दिया। बाद में, देश के अन्य भागों में भी अनेक राजनीतिक संस्थाओं का गठन हुआ। उदीयमान युवा राष्ट्रीय नेता इस बात को भली-भाँति समझते थे कि उनके व्यक्तिगत, पारिवारिक, जातीय तथा सामुदायिक हितों से कहीं ऊपर, राष्ट्रीय हित है। फलस्वरूप हरियाणा में भी राष्ट्रीय आंदोलन को सुसंगठित व सशक्त बनाने के प्रयास आरम्भ हो गये। परिणामस्वरूप सन् १८८७ में लाला लालपत राय के प्रयासों से ही रोहतक में कांग्रेस कमेटी का गठन हुआ जिसका उद्देश्य राष्ट्रीयता का प्रचार-प्रसार करना था।[१०] यहाँ पर आर्यसमाज से जुड़े अनेक कार्यकर्त्ताओं ने भी इस कार्य में बढ़-चढ़कर सहयोग दिया। आगामी वर्ष अर्थात् १२ अक्तूबर, १८८८ को रोहतक शहर में कांग्रेस की प्रथम सार्वजनिक सभा हुई। इस सभा में रोहतक जिले से काफी संख्या में वकीलों तथा धनी-मानी लोगों ने भाग लिया। इस सभा की अध्यक्षता तुर्राबाज खाँ ने की तथा लाला लाजपत राय ने ओजस्वी भाषण द्वारा कांग्रेस का कार्यक्रम, जनता के समक्ष रखा। धीरे-धीरे कांग्रेस की राष्ट्रीय नीतियों के प्रति स्थानीय लोगों की रूचि बढ़ने लगी। उन्हें यह बात भी समझ आने लगी कि भारत की राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा बौद्धिक उन्नति में विदेशी आधिपत्य ही प्रमुख बाधा है क्योंकि भारत के सभी वर्गीय हितों को इस विदेशी शासन से काफी चोट पहुँच रही थीं।

यद्यपि १८८८ तक, रोहतक, हिसार तथा अम्बाला शहर, कांग्रेस की आंदोलनकारी गतिविधियों के केन्द्रीय बिन्दु बन चुके थे किंतु शेष जिलों में अभी कांग्रेसी नेताओं की विचारधाराओं का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था। जिन जिलों में राष्ट्रीय सभायें प्रयासरत थी वहाँ भी इनकी पहुँच केवल नगरों तक ही थीं। गाँवों की बहुत कम जनता, राष्ट्रीय गतिविधियों में संलग्न राष्ट्रीय सभाओं से प्रभावित थी। सन् १८९२ में लाला लाजपत राय द्वारा हरियाणा छोड़कर लाहौर चले जाने पर यहाँ, कांग्रेस की गतिविधियाँ कम हो गयी थीं। परिणामस्वरूप रोहतक में भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा।[११] कांग्रेस की नीतियों के प्रति लोगों की रूचि में कमी आ गई थीं। ऊपर से ब्रिटिश सरकार की वक्र दृष्टि ने, जो कि इस समय कांग्रेस पर पड़नी शुरू हो गई थीं, लोगों को भयभीत कर दिया था।

सन् १९०५ में भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्ज़न द्वारा लिये गये बंगाल-विभाजन के निर्णय से तो भारतीयों के सब्र का बाँध ही टूट गया। वास्तव में बंगाल, राष्ट्रवाद के उदय का महत्वपूर्ण स्थान था तथा कर्जन भारतीयों में फूट डालना चाहता था। वह हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट डालकर

बढ़ती हुई राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलना चाहता था। फलतः बंगाल-विभाजन के विरोध में बड़ी-बड़ी सभाओं के आयोजन होने लगे। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, रविन्द्रनाथ टैगोर, विपिन्न चन्द्रपाल, अरविन्द घोष, ए.के. दत्त तथा सतीश चन्द्र मुखर्जी आदि नेताओं ने 'स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन शुरू कर दिये।[१२] इस आन्दोलन को समाज के सभी वर्गों का समर्थन मिला। यहाँ तक कि हरियाणा के लोगों ने भी इसमें उल्लेखनीय योगदान दिया। रोहतक के शिक्षित वर्ग के साथ-साथ अन्य लोगों ने भी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया तथा ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध व्यापक प्रदर्शन किये।

प्रथम विश्वयुद्ध के तुरन्त उपरान्त, अप्रैल १६१६ में भारत में 'रोलट सत्याग्रह' अपने आप में अभूतपूर्व था। यह अखिल भारतीय स्तर पर रौलट एक्ट का सार्वजनिक विरोध करने का एक अनूठा और व्यावहारिक ढ़ंग था, जिसका आह्वान मोहनदास कर्मचन्द गाँधी जी ने किया था। यद्यपि विरोध के इस तरीके में प्रार्थना-याचना को छोड़ दिया गया था, किन्तु इसका लक्ष्य अनियन्त्रित अथवा हिंसक होना नहीं था।[१३] विश्वयुद्ध के कुप्रभावों से पीड़ित सामान्य भारतीयों का आक्रोश उन परिस्थितियों में फूट पड़ा जब सरकार भारतीय राष्ट्रवाद को कुचलने के लिए दमन की नीति के लिए आतुर थी। राष्ट्रीय नेता सरकारी रवैये से त्रस्त थे। सरकार उनकी अपील और बार-बार दी जाने वाली चेतावनियों की कोई परवाह नहीं कर रही थी। ऐसी स्थिति में गाँधी जी अंग्रेजों के विरूद्ध सत्याग्रह करने पर मजबूर हो गये। अतः महात्मा गाँधी जी ने २४ फरवरी, १६१६ के दिन बम्बई में 'सत्याग्रह सभा' का गठन किया। ऐसे में गाँधी जी के आह्वान करते ही ऐसा भीषण जनाधार उमड़ पड़ा जिसकी कल्पना न तो अंग्रेजी सरकार ने की थी और न ही सम्भवतः आयोजकों ने की होगी। रोहतक में इस सत्याग्रह का नेतृत्व चौधरी छोटूराम तथा पीरूसिंह ने किया।[१४] ३० मार्च, १६१६ के दिन नगर में गऊकर्ण तालाब पर सरदार बूटासिंह अहलुवालिया की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें हजारों की संख्या में लोगों ने भाग लिया। नगर के कई प्रतिष्ठित वकीलों ने इस अवसर पर रोलट एक्ट के विरोध में व्याख्यान भी दिये। फलस्वरूप, शिक्षित युवा वर्ग तथा अनेक छात्र इस सत्याग्रह आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्त्ता बन गये। इनमें चौधरी छोटूराम, बाबू श्यामलाल, चौधरी नवलसिंह, मियाँ मुश्ताक हुसैन खाँ तथा लाला लालचन्द आदि प्रमुख थे।

लाहौर में १० अप्रैल, १६१६ के दिन गाँधी जी की गिरफ्तारी की खबर से लोग उत्तेजित हो उठे थे। इस दिन रोहतक जिले के झज्जर, बहादुरगढ़, सोनीपत तथा गोहाना आदि कस्बों में पूर्ण रूप से हड़ताल रहीं। यह हड़ताल अंग्रेजी सरकार द्वारा गाँधी जी की गिरफ्तारी के विरोध में की गई थी। सरकारी अदालतों के बहिष्कार सम्बन्धी कार्यक्रम के अन्तर्गत रोहतक के वकीलों ने अपनी वकालत (व्यवसाय) त्याग दी तथा वे असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। वकीलों के सरकार-विरोधी रवैये पर उनके लाईसेंस जब्त कर लिये गये, परन्तु वकीलों द्वारा मुकद्दमें चलाये जाने पर ब्रिटिश सरकार को उनके लाईसेंस वापिस लौटाने पड़े।[१५] इस समय हिन्दू-मुस्लिम जनता ने एक साथ मिलकर सरकार के विरूद्ध हड़तालें कीं। रेलवे-स्टेशन, डाकघर, सार्वजनिक स्थल तथा टेलीग्राफ के तार आदि साधन, क्रांतिकारियों के आक्रोश का निशाना बने। क्रांतिकारियों ने इन स्थलों पर काफी तोड़-फोड़ की। 'जलियाँवाला बाग हत्याकाँड' के विरोध में भी रोहतक में कई जगहों पर छुटपुट विरोध-प्रदर्शन किये गये।[१६] इस प्रकार से आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया तथा राष्ट्रवादियों ने सरकारी सम्पत्ति को काफी क्षति पहुँचाई। लोगों में एकता और तूफानी आक्रोश को देखकर अंग्रेजी प्रशासन भयभीत हो उठा। अंग्रेज अधिकारियों को डर था कि कहीं लोगों में 'सत्ता का भय' ही समाप्त न हो जाये।

उपर्युक्त सभी घटनाएँ, इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि रोहतक की जनता इस समय तक राजनीतिक रूप से जागरूक हो चुकी थी। खिलाफत आन्दोलन (१६१६-१६२२) के दौरान भी रोहतक के कई मुस्लिम नेताओं ने विरोध जताया। इनमें रोहतक नगरपालिका के सदस्य 'जाट मोहम्मद', दत्तौड ग्राम निवासी 'मौलवी रहमान', व्यापारी 'हाज़ी अलाद्दीन' तथा जमन अली आदि प्रमुख थे। जब गाँधी जी ने पुनः असहयोग आन्दोलन चलाया तब रोहतक शहर के कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने गाँव-गाँव जाकर ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया। ८ नवम्बर, १६२० को स्वयं महात्मा गाँधी जी ने रोहतक में पहुँचकर अली बँधुओं (मोहम्मद अली, शौकत अली) तथा अर्ब्दुर रहमान के साथ मिलकर सार्वजनिक सभा की।[१७] इस सभा में महात्मा गाँधी ने अपने सम्भाषण में लोगों से अपील की कि वे ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग न करें। श्रीराम शर्मा, रामरूप, श्यामलाल तथा दौलतराम आदि स्थानीय नेताओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए लोगों को काफी प्रेरित किया।

१ अगस्त, १६२० को गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया। गाँधी जी ने सारे देश का दौरा कर अपनी

विचारधारा तथा आन्दोलन के बारे में जानकारी दी। इस दौरे से जनता में उत्साह और साहस का संचार हुआ। ६-८ नवम्बर, १९२१ को रोहतक में पुनः एक सभा बुलाई गई जिसकी अध्यक्षता चौधरी रामभजदत्त ने की। इसमें लाला लाजपत राय तथा स्वामी सत्यदेव आदि दिग्गज नेताओं सहित लगभग बीस हजार लोगों ने भाग लिया।[१८] जब सभा में पूर्ण रूप से विदेशी बहिष्कार का प्रस्ताव रखा गया तो रोहतक के जाट नेता चौधरी छोटूराम और उनके समर्थकों ने इसका विरोध किया। उन्होंने सरकार को कर न देने तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त उपाधियों को त्यागने के प्रस्ताव का भी खण्डन किया। परिणामस्वरूप अगले दिन (९ नवम्बर, १९२१) पुनः सभा की गई जिसमें काफी संख्या में लोग एकत्रित हुये। असहयोग आन्दोलन में सहयोग देने का प्रस्ताव, इस दिन लगभग एकमत से पारित हो गया। केवल एक व्यक्ति (मुश्ताक हुसैन अली) का ही विरोधी मत था।[१९] इस घटना के बाद चौधरी छोटूराम ने सैंकड़ों समर्थकों के साथ मिलकर 'कांग्रेस कमेटी' की सदस्यता को छोड़ दिया परन्तु कई जाट नेता इस कमेटी से अन्त तक जुड़े रहे।[२०]

बहिष्कार आन्दोलन के अन्तर्गत, सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी स्कूलों, कॉलेजों का बहिष्कार बहुत सफल रहा। जनवरी, १९२१ में हजारों छात्रों ने इन शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार किया और हड़तालें कीं। उदाहरणस्वरूप, अठारह छात्रों ने बहादुरगढ़ के 'गर्वनमेंट हाई स्कूल' को त्याग कर रोहतक में निजी स्तर पर संचालित 'नेशनल हाई स्कूल' में नामांकन करवा लिया।[२१] शिक्षकों ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया। इसके अलावा, रोहतक के श्यामलाल जैसे प्रसिद्ध वकीलों ने भी वकालत छोड़ दीं। कई नम्बरदारों तथा जैलदारों ने अपनी नौकरियाँ तथा उपाधियाँ त्याग दीं। नगर में स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के समर्थन में जुलूस निकाले गए। इसमें युवा स्वयं-सेवकों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। खादी को लोकप्रिय बनाने हेतु १ अगस्त, १९२१ के दिन रोहतक में विरोध प्रदर्शन किये गये।[२२] शराब की दुकानों पर धरने दिये गये जिसका परिणाम यह निकला कि शराब का वार्षिक ठेका लेने के लिये कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं हुआ।

जनता की उपर्युक्त प्रतिक्रियावादी नीतियों से तंग आकर अंग्रेजी सरकार ने दमनात्मक नीति अपनाई। शराब की दुकानों पर धरना देने वाले तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने वाले कार्यकर्त्ताओं को पुलिस द्वारा कठोर यातनायें दी गईं। रोहतक की जिला कांग्रेस-कमेटी के अध्यक्ष रामरूप (झज्जर निवासी) तथा महासचिव दौलतराम गुप्ता को बन्दी बना लिया गया। इनके अलावा रोहतक से ही पंडित श्रीराम शर्मा, पंडित चन्द्रभान, ज़नार्दन शर्मा, हकीम बशीर अहमद खाँ, मास्टर बलदेव, लाला अमीचंद जैन, लाला कर्ताराम, लाला शालिगराम, मुंशी रामकरण, चौधरी हरफूल सिंह, मौलवी अब्दुल गफूर तथा राव मंगलीराम आदि कार्यकर्त्ताओं को भी बन्दी बना लिया गया।[२३] यद्यपि अंग्रेज अधिकारियों द्वारा अनेक कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार करके उन्हें यातनायें दी गईं तथा असहयोग आन्दोलन को असफल बनाने का यत्न किया गया तथापि रोहतक में आन्दोलन की गति पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा।

अंग्रेजी सरकार की दमनात्मक कार्यवाहियों से सरकार के समर्थक वर्ग को बल मिला। उन्होंने 'अमन सभा', 'हरियाणा राजभक्त सभा' तथा 'प्रजाहितकारी सभा' आदि का गठन किया तथा जगह-जगह जाकर इन सभाओं के माध्यम से असहयोग आन्दोलन की कड़ी आलोचना कीं।[२४] यद्यपि इन राजभक्त संस्थाओं ने कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की राष्ट्रवादी गतिविधियों को भंग करने में ब्रिटिश सरकार को भरपूर सहयोग दिया तथापि इस समय तक पूरे रोहतक जिले में कांग्रेस कमेटी की अस्सी शाखायें स्थापित हो चुकी थीं जो कि राष्ट्रीय आन्दोलनकारी गतिविधियों में पूरी लग्न से सक्रिय थीं। फलस्वरूप १९२९ के अंत में, रोहतक में कांग्रेस कमेटी की एक प्रान्तीय सभा की गई। इस सभा की अध्यक्षता 'डॉ० सत्यपाल' ने की तथा पंडित मोतीलाल नेहरू इस सभा के विशेष अतिथि रहे। इस सभा में नेताओं ने देश की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुये जनता को उनके कर्त्तव्यों का बोध कराया।[२५]

६ अप्रैल, १९३० को, जब गाँधी जी ने नमक कानून भंग करके सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया तब अनेक स्थानों पर स्वयं-सेवकों तथा नये सदस्यों को भर्ती करके संगठन बनाये गये। कांग्रेस कमेटियों का गठन करके गाँवों से लेकर कस्बों तक गाँधी जी का संदेश पहुँचाया गया। रोहतक की जनता ने भी 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' का समर्थन किया और अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध खूब प्रदर्शन किये। गली-मौहल्लों में मीटिंग तथा बड़ी जनसभाओं का आयोजन, हड़तालें, प्रदर्शन, जुलूस, धरने, झण्डे फहराना, नारे लगाना, इश्तिहार (पम्पलेट) बाँटना आदि गतिविधियाँ अपनाई गईं। यहाँ से लगभग चार सौ व्यक्तियों ने गिरतारियाँ दीं। इनमें पंडित श्रीराम शर्मा, लाला दौलतराम गुप्ता, रामफूल सिंह वकील, चौधरी छाजूराम तथा श्रीमति कस्तूरीबाई आदि प्रमुख कार्यकर्ता थे। नगर के व्यापारियों ने विदेशी वस्त्रों का आयात न करने

की शपथ लीं। विदेशी वस्त्रों को इकठ्ठा करके चौराहों पर जलाया गया तथा शराब की दुकानों पर धरने दिये गये। रोहतक में 'सेवा दल' का एक शिविर भी लगाया गया ताकि अधिक से अधिक संख्या में लोगों को संगठित व प्रशिक्षित करके कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के रूप में तैयार किया जा सके। आन्दोलन की व्यापकता को देखते हुये सरकार ने जोरदार दमनकारी नीति का सहारा लिया। अंग्रेज अधिकारियों ने, अपने वफादार स्थानीय लोगों की मदद से, कार्यकर्त्ताओं के घरों की तलाशी ली तथा उन पर लाठियाँ बरसाईं। इसके अलावा, श्यामलाल, श्रीराम शर्मा तथा रामफूल आदि नेताओं को बन्दी बनाया गया। इस समय हरियाणा में होने वाली गिरतारियों में सर्वाधिक संख्या (३५०) रोहतक की आँकी गई।[२६] अन्ततः अंग्रेजी सरकार ने कांग्रेस कमेटी को गैर-कानूनी घोषित कर दिया तथा सार्वजनिक सभाओं और प्रदर्शनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

१७ अक्तूबर, १९४० को महात्मा गाँधी जी ने सामूहिक कार्रवाई के स्थान पर सीमित पैमाने पर 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' आन्दोलन आरम्भ किया। इस आन्दोलन में वही कांग्रेसी नेता शामिल हुये जो पक्के अहिंसावादी अनुशासन की डोर से बँधे थे। व्यक्तिगत सत्याग्रह के अन्तर्गत, इन चुने हुये सत्याग्रहियों द्वारा सार्वजनिक स्थलों पर जाकर भारत को विश्वयुद्ध में सम्मिलित किए जाने का विरोध करना था तथा लोगों को यह समझाना था कि सरकार, कांग्रेस की माँगें नहीं मान रही है। इसलिये कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के समर्थन में विश्वयुद्ध में सम्मिलित होने के विरूद्ध है। अंग्रेजी सरकार द्वारा नागरिक अधिकारों के हनन करने का विरोध करना था तथा स्वयं को गिरफ्तारी के लिये प्रस्तुत करना था। रोहतक के कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के साथ-साथ अनेक साधारण व्यक्तियों ने भी सत्याग्रह में बढ़-चढ़कर भाग लिया तथा पूरे हरियाणा की तुलना में, यहाँ से सबसे अधिक व्यक्तियों ने गिरफ्तारियाँ (२५१) दीं।[२७] इससे अंग्रेज अधिकारी भी घबरा गये। उन्होंने कमिश्नर तथा वायसराय की मध्यस्थता से कांग्रेसी नेताओं से समझौता करने का प्रयास किया परन्तु इन नेताओं ने समझौते की बात को ठुकरा दिया।

८ अगस्त १९४२ के दिन, महात्मा गाँधी जी ने अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध, 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का बिगुल बजा दिया। देश के असंख्य लोगों ने इस आन्दोलन मे बढ़-चढ़कर भाग लिया। शीघ्र ही अंग्रेजी सरकार द्वारा कांग्रेस तथा अन्य संगठनों को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। इसके अलावा जनसभाओं तथा नागरिक अधिकारों पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया। देश के बड़े-बड़े नेताओं (गाँधी जी को छोड़कर) सहित हजारों लोगों को गिरफ्तार कर जेलों में डाल दिया गया। देश से ६०,२२९ लोगों को हिरासत में लिया गया। पुलिस ने दमन का सहारा भी लिया। लोगों पर लाठियाँ बरसाई गई। प्रैस पर पाबन्दी लगा दी गई। कांग्रेस कमेटी तथा खिलाफत कमेटी के कार्यालयों पर रात को पुलिस के छापे आम बात हो गई। फलस्वरूप, सरकार के दमनचक्र के विरोध में रोहतक की जनता ने ३१ अक्तूबर, १९४२ को शहर के गवर्नमेंट कॉलेज के पुस्तकालय को आग की भेंट चढ़ा दिया। टेलीफोन के तारों को काट दिया गया तथा पत्र-पेटियों को अग्नि की भेंट चढ़ा दिया गया। इसके अतिरिक्त रेल की पटरियों को भी क्षति पहुँचाने का यत्न किया गया। अगस्त, १९४२ से लेकर मई, १९४४ तक रोहतक से कई लोगों को गिरफ्तार किया गया।[२८]

यद्यपि बाद में, रोहतक में किसी भी आन्दोलनकारी की गिरफ्तारी की घटना नहीं घटी तथापि यहाँ पर, भारत की स्वतन्त्रता (१९४७) तक समय-समय पर अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध बड़े पैमाने पर किसान, कर्मचारी तथा मजदूर वर्ग के लोग जनसभायें, धरने तथा विरोध प्रदर्शन करते रहे। इनके नेता मांगेराम वत्स, लछमन सिंह, वैद्य लेखराम, राधाकृष्ण, शीशपाल सिंह तथा रामकुमार विछाट आदि थे। अंग्रेज अधिकारियों ने स्थानीय पुलिस और सेना की सहायता से यहाँ के कार्यकर्त्ताओं की राष्ट्रवादी गतिविधियों को रोकने के भरसक प्रयास किये किन्तु जन आक्रोश को पूर्णतया शान्त करने में वे असफल रहे। आन्दोलन के माध्यम से ही कार्यकर्त्ताओं ने अपने देश-प्रेम तथा स्वतन्त्रता के लिए बलिदान का उच्च्व उदाहरण प्रस्तुत किया। साधारण जनता ने भी भारत की स्वतन्त्रता के प्रति अपनी निष्ठा और विदेशी राज के भेदभावपूर्ण रवैये का जोरदार विरोध किया। इस प्रकार ब्रिटिश विरोधी भावनाओं के परिणामस्वरूप, अंग्रेजों को भारत छोड़ने का निर्णय लेना पड़ा।

सन्दर्भ

१. शर्मा एस.आर, 'द आर्य समाज एण्ड इट्स इम्पैक्ट ऑन कन्टेम्प्रेरी इण्डिया इन द नाइनटिन्थ सेंचुरी', इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, ऊना पब्लिकेशन, पंजाब, १६६८, पृ० - १५७।

२. शर्मा एस.सी, 'पंजाब एण्ड क्रुशियल डिकेट', निर्मल पब्लिशर एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली, १६८७, पृ० - १३१।

३. लाला लाजपत राय, 'आर्य समाज', लोंग मैन्ज ग्रीन, लंदन, १६१५, पृ० ६६-७३, १३७-१४३।

४. मित्तल एस.सी, 'रोहतक इन रिवोल्ट : ए स्टडी इन पीजेन्ट्स अपसर्व इन १६८७', जे.पी. मिश्रा (सम्पादक): रिसर्चेज इन सोशल साइंसेज, दिल्ली, १६६३, पृ० ६८-६६।

५. विद्यालंकार एस.एस, 'जीवन और संघर्ष', लोकप्रिय प्रकाशन, दिल्ली, १६६४, पृ० ६७।

६. डिस्ट्रिक्ट सेंसस हैण्डबुक्स, 'रोहतक डिस्ट्रिक्ट', हरियाणा, श्रृंखला-IV, १६७१, पृ० ३७१-३७३, जगदीश चन्द्र; फ्रीडम स्ट्रगल इन हरियाणा, १६१६-१६४७, विशाल पब्लिकेशन, कुरूक्षेत्र, १६८२, पृ०-१।

७. यादव के.सी, 'मॉडर्न हरियाणा', हिस्ट्री एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, २००२, पृ०-१६४।

८. मित्तल एस.सी, पूर्वोक्त, पृ० ८२-८४।

६. वही, पृं० १०३-१०७।

१०. यादव के.सी, पूर्वोक्त, पृ० १७०-१७१।

११. वही।

१२. देसाई ए.आर, 'सोशल बैकग्राऊण्ड ऑफ इंडियन नेशनेलिज्म', पोपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, १६८७, पृ० ३२७-३२८।

१३. सरकार सुमित, मॉडर्न इण्डिया, १८८५-१६४७, मैकमिलन, नई दिल्ली-२०००, पृ० १८७।

१४. द डिस्ऑर्डर इन्क्वायरी कमेटी, वॉल्यूम-V, द स्टेटमेंट ऑफ मिस्टर आरव सी.बोल्स्टर, तत्कालीन डिप्टी कलेक्टर, रोहतक, पृ० - २४२। मीनाक्षी, पी.एच.डी. थिसिस; 'बीसवीं सदी में रोहतक नगर की अर्थव्यवस्था', डॉ० भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा, २०१२, पृ०- २१ से उधृत।

१५. चन्द्र जगदीश, 'गाँधी जी एण्ड हरियाणा', उषा प्रकाशन, नई दिल्ली, १६७७, पृ०- १५।

१६. मित्तल एस.सी, पूर्वोक्त, पृ० १०८।

१७. जुनेजा एम.एम, 'एमिनेन्ट फ्रीडम फाइटर्स इन हरियाणा', मॉडर्न बुक कार्पोरेशन, हिसार, १६८१, पृ० ४४।

१८. शर्मा श्रीराम, 'हरियाणा का इतिहास : सृष्टि के आरम्भ से सन् १६७३ तक', हरियाणा सेवा आश्रम, रोहतक, १६७४, पृ० ६७-६८।

१६. चन्द्र जगदीश, पूर्वोक्त, पृ० ७-८।

२०. शर्मा श्रीराम, 'मेरी अपनी राम कहानी', हरियाणा सेवा आश्रम, रोहतक, १६७४, पृ० - २०।

२१. शर्मा श्रीराम, 'हरियाणा का इतिहास', पूर्वोक्त, पृ०-७१।

२२. मित्तल एस.सी, पूर्वोक्त, पृ० ११३।

२३. वही, पृ०-१३१।

२४. शर्मा श्रीराम, 'हरियाणा का इतिहास', पूर्वोक्त, पृ०- ७३।

२५. मित्तल एस.सी, पूर्वोक्त, पृ०- १३१।

२६. वही

२७. गजेटियर्स ऑफ हरियाणा : रोहतक डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, १६७०, पृ०- ३३

२८. वही।

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

विकेन्द्रित औद्योगिक नियोजन का क्षेत्रीय विकास में योगदान

❑ डा० सुरेन्द्र सिंह

कुटीर, लघु-मध्य एवं वृहद् उद्योगों का पर्वतीय क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। वास्तव में इनकी स्थापना एवं विकास करके ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र में बढ़ती हुई बेरोजगारी एवं निर्धनता की मौलिक समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है तथा बढ़ती हुई जनसंख्या को रोजगार उपलब्ध कराने, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली जनशक्ति का जीवन स्तर उठाने, विषमता कम करने तथा बढ़ते शहरीकरण की समस्या का समाधान कुटीर, लघु मध्यम एवं वृहद् स्तरीय औद्योगीकरण करके किया जा सकता है। औद्योगिक क्षेत्र ही एकमात्र ऐसा विकल्प है जिसके द्वारा युवा श्रमशक्ति का पलायन रोका जा सकता है तथा सरकार पर रोजगार के अवसरों की निर्भरता को कम किया जा सकता है। प्रस्तुत आलेख इसी तथ्य को प्रकाशित करने का एक प्रयास है।

प्रस्तावना : स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने अप्रैल १९४८ में औद्योगिक नीति प्रस्ताव के माध्यम से प्रथम औद्योगिक नीति घोषित की। इस औद्योगिक नीति के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु संसद द्वारा इन्डस्ट्रीज डेवलपमेन्ट एण्ड रेगुलेशन एक्ट १९५१ पारित कर लागू किया गया। इसके अतिरिक्त सन् १९५३ में केन्द्र सरकार द्वारा 'आल इण्डिया खादी एण्ड विलेज इण्डस्ट्रीज बोर्ड' का गठन किया गया तथा १९५६ में इसे स्वतंत्र निकाय खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग के रूप में स्थापित कर बम्बई में इसके मुख्यालय की स्थापना की गई। औद्योगिक नीति प्रस्ताव १९५६ में कुछ उद्योगों को आरक्षित सूची में रखकर सूची-एक में आयुध निर्माण, परमाणु ऊर्जा और रेलवे को केन्द्र के आधीन रखने की नीति घोषित की गई। दूसरी सूची में छः उद्योग- कोयला, लौह व इस्पात, हवाई जहाज एवं समुद्री जहाज निर्माण, टेलीफोन तार व बेतार उपकरणों के निर्माण एवं खनिज तेल के उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित करने के साथ निजी क्षेत्र से सहयोग लेने की छूट दी गई। औद्योगिक नीति १९५६ में अन्य सभी उद्योगों को तीसरी सूची में रखकर प्रतिबन्ध विहीन किया गया। इस औद्योगिक नीति में परिवर्तन करते हुए सन् १९७१ से केन्द्रीय पूंजी अनुदान योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना के अन्तर्गत पूंजीगत निवेश का १० प्रतिशत अनुदान की व्यवस्था थी, किन्तु समय-समय पर इसमें संशोधन होता रहा। कालान्तर में केन्द्रीय पूंजी अनुदान योजना वर्ष १९८९ से समाप्त कर दी गई।

औद्योगिक नीति स्टेटमेन्ट १९७७ में कुटीर उद्योगों के लिये कुछ विशेष सुविधाओं की घोषणा की गई। एक लाख पूंजीगत लागत एवं पचास हजार तक आबादी वाले गांवों एवं कस्बों में स्थापित होने वाली कुटीर उद्योग इकाइयों को प्राथमिकता पर सुविधायें देने की घोषणा की गई। वर्ष १९७७ में जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना कर उद्योगों के विकास हेतु एकल छतरी व्यवस्था लागू की गयी।[1] सन् १९७९ में प्रायोगिक तौर पर ३८२ जनपदों में जिला उद्योग केन्द्र स्थापित कर दिये गये तथा ५०४ औद्योगिक उत्पादों को कुटीर उद्योगों के लिए आरक्षित किया गया। सन् १९८० में सरकारी विभागों में उपयोग व क्रय हेतु कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पादित २४१ उत्पादों को भी आरक्षित कर दिया गया। अप्रैल १९८३ में केन्द्रीय पूंजी उपादान की पात्रता के लिये औद्योगिक रूप से विकसित व पिछड़ेपन के आधार पर देश के विभिन्न जनपदों को अ, ब, स, तीन श्रेणियों में बॉटकर 'अ' श्रेणी में औद्योगिक रूप से शून्य जनपदों को चिन्हित कर इन जनपदों में स्थापित किये जाने वाले उद्योगों के लिए विशेष छूट घोषित की गई। १९८९ तक केन्द्र सरकार ने पूंजी व परिवहन उपादान के लिये रुपये २०७ करोड़ राज्य सरकारों को उपलब्ध किया। यद्यपि कुटीर उद्योगों के विकास का प्रमुख दायित्व प्रान्तीय सरकारों का था तथापि केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों के प्रयास से सहयोगी व समन्वयक की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर औद्योगिक पिछड़ेपन को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। फलस्वरूप कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में देश में औद्योगीकरण की प्रगति बेहतर रही।

जिला उद्योग केन्द्र : संविधान के ७वें संशोधन १९५६ द्वारा चिन्हित उद्योगों को केन्द्रीय सूची (अनुसूची-एक) एवं शेष को राज्य सूची (अनुसूची-दो) में रखा गया। केन्द्र सरकार की औद्योगिक नीतियों के क्रियान्वयन का दायित्व भी प्रान्तीय

❑ सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, हे०न०ब० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, (उत्तराखण्ड)

सरकार को सौंपने के कारण राज्यों के उद्योग विभाग एवं उद्योग निदेशालय के कार्यो व दायित्वों में वृद्धि हुई। जिला उद्योग केन्द्रों को प्रदेश में स्थापित करते हुये इन्हें रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने का एक सूत्र माना गया। यह आशा की गयी कि इन उद्योग केन्द्रों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में जहां एक ओर श्रम प्रधान उद्यम स्थापित होकर क्षेत्रीय पिछड़ापन दूर होगा वहीं दूसरी ओर औद्योगिक विस्तारण से निर्धनता एवं आय के असमान वितरण में कमी होगी। प्रान्तीय स्तरों पर स्थापित उद्योग निदेशालयों के माध्यम से जिला उद्योग केन्द्रों को जनपद स्तर पर औद्योगिक विकास का दायित्व सौंपा गया। जिला उद्योग केन्द्रों के माध्यम से जिले के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में लघु, कुटीर, ग्रामीण एवं परम्परागत उद्योगों को विकसित करने का दायित्व सौंपा गया। कच्चे माल एवं मानवीय संसाधनों का आंकलन कर जनपद स्तर पर वर्षवार टेक्नो-इकोनामिक रिपोर्ट तैयार करते हुये तथा उद्यमियों को निवेश के लिए प्रोत्साहित करने का कार्य भी जिला उद्योग केन्द्रों को दिया गया।[२] इसके अतिरिक्त उद्यमियों के लिये तकनीकी मार्गदर्शन हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करना तथा प्रशिक्षण संस्थानों एवं उद्यमियों के बीच सूत्रधार का कार्य भी सौंपा गया तथा समय-समय पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा औद्योगिक विकास हेतु अपनायी गयी नीतियों एवं कार्यक्रमों को उद्यमियों तक पहुँचाना तथा उद्यमियों द्वारा उत्पादित माल के विपणन हेतु आवश्यक प्रयास करने का दायित्व सौंपा गया। इन दायित्वों का निर्वहन करने हेतु जिला उद्योग केन्द्रों को मजबूत करते हुये उनकी प्रभावी कार्यशैली को सुनिश्चित करने के लिये कई कदम उठाये गये। इसके अन्तर्गत जिला उद्योग केन्द्र के प्रबन्धकों को शक्तियां प्रदान की गई और विकेन्द्रित औद्योगिक क्षेत्र में अन्य संगठनों के साथ सम्बन्ध विकसित करने हेतु जिला उद्योग केन्द्र के प्रबन्धकों को औद्योगिक इकाइयों के निदेशक की अधिकांश प्रशासनिक एवं कार्यकारी शक्तियां सौंपने के लिये आवश्यक कदम उठाये।[३]

औद्योगिक केन्द्र व ग्रामीण औद्योगिक परियोजना : प्रत्येक जिला औद्योगिक केन्द्र जिले भर की औद्योगिक इकाईयों की जरूरतों का ध्यान रखकर उन्हें आवश्यक सुविधायें प्रदान करता है तथा कार्यकारी संस्था के रूप में कार्य करता है। ग्रामीण औद्योगिक परियोजना कार्यक्रम में ऋण प्रदान करने से सम्बन्धित शक्तियां जिला उद्योग केन्द्र में निहित कर दी गईं। २५ हजार से कम जनसंख्या वाले नगरों में औद्योगिक सुविधायें अब जिला उद्योग केन्द्रों द्वारा प्रदान की जाती हैं जबकि कुछ समय पूर्व तक ये सुविधा ग्रामीण औद्योगिक परियोजना के अन्तर्गत प्रदान की जाती थी।[४] इसके अतिरिक्त केन्द्र के महा-प्रबन्धकों एवं प्रबन्धकों को ये शक्ति दे दी गई हैं कि वे उद्यमियों को राज्य स्तर या केन्द्रीय स्तर के संगठनों को उद्धत किये हुये बिना ही समस्त सुविधा प्रदान कर सकें। ग्रामीण औद्योगिक परियोजना के अन्तर्गत दी जानी वाली ऋण सुविधा अब जिला उद्योग केन्द्रों से प्राप्त होगी। ग्रामीण औद्योगिक परियोजना के अन्तर्गत जिला उद्योग केन्द्र कम ब्याज दर पर ग्रामीण औद्योगिक कोष से ऋण, रुपया १०,००० तक का बैंक ऋण बिना किसी जमानत के कम ब्याज दर पर उपलब्ध कराना, ग्रामीण औद्योगिक परियोजना क्षेत्रों में स्थापित की गई इकाइयों के लिये कच्चे माल की उपलब्धता करना, ग्रामीण काश्तकारों के लिये प्रशिक्षण तथा व्यक्तिगत काश्तकारों का ३३.५ प्रतिशत व सहकारित क्षेत्र में कार्य करने वाले काश्तकारों को ५० प्रतिशत की छूट सम्बन्धी सहायता देना।[५]

जिला उद्योग केन्द्र राज्य सरकारों के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करते है। प्रत्येक जिला उद्योग केन्द्र की मदद के लिए एक सलाहकार समिति होती है जिसमें विधायक, पंचायत व स्वयंसेवी संस्थाओं के चुने हुये प्रतिनिधि, लघु उद्यमी तथा ग्राम क्षेत्रों में कार्य करने वाले अन्य स्वयंसेवी होते हैं। इसके अलावा केन्द्र स्तर पर एक नियंत्रण समिति होती है जिसका मुखिया केन्द्रीय औद्योगिक मंत्री होता है। साथ ही राज्य स्तर पर राज्य के उद्योग मंत्री के नेतृत्व में भी एक नियन्त्रण समिति होती है। केन्द्र सरकार प्रारम्भ में प्रत्येक जिला उद्योग केन्द्र को भवन, फर्नीचर, वाहन व कार्यालय हेतु ५ लाख रुपये उपलब्ध कराती है। भारत सरकार प्रतिवर्ष प्रशासनिक स्टाफ के खर्च का ७५ प्रतिशत वहन करती है जोकि लगभग ५ लाख रुपया प्रतिवर्ष होता है तथा शेष राशि राज्य सरकार द्वारा वहन की जाती है।

उत्तराखण्ड में जिला औद्योगिक केन्द्रों की प्रगति : पृथक पर्वतीय राज्य का गठन होने के उपरान्त वर्ष २००३ में घोषित औद्योगिक नीति को प्रमुख उद्देश्य 'इन्सपेक्टर राज' समाप्त कर औद्योगिक विकास के लिये अनुकूल वातावरण तैयार करना था।[६] आज राज्य में छोटे-छोटे उद्यमियों की विद्युत, प्रदूषण नियन्त्रण, भूमि आवंटन और ऋण वितरण सम्बन्धी कठिनाइयों का निराकरण त्वरित गति से हो रहा है। राज्य स्तर पर औद्योगिक विकास हेतु किये गये प्रयासों का विवरण तालिका-१ में दिया गया है।

तालिका-१ उत्तराखण्ड में स्थापित वृहद् एवं मध्यम उद्योग

मद	२०११-१२	२०१२-१३	२०१३-१४
स्थापित उद्योग			
१. संख्या	१३५	१६२	१६७
२. पूंजी विनियोग (करोड़ रुपये में)	१७०२५.८६	२७२२.२५	४१४०.१०
३. रोजगार सृजन (संख्या)	३४८६५	३७१६२	४३५५०
कार्यरत उद्योग			
४. संख्या	१३५	१६२	१६७
५. पूंजी विनियोग (करोड़ रुपये में)	१७०२५.८६	२७२२.२५	४१४०.१०
६. रोजगार सृजन (संख्या)	३४८६५	३७१६२	४३५५०

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि पृथक पर्वतीय राज्य के गठन के उपरान्त केन्द्र सरकार द्वारा प्रदत्त औद्योगिक इकाइयों को टैक्स होली डे योजना द्वारा लाभान्वित करने के फलस्वरूप वर्ष २०१३-१४ तक १६७ वृहद् उद्योग राज्य के मैदानी जनपदों में स्थापित हो गये हैं। इन उद्योगों द्वारा ४१४०.१० करोड़ रुपये का पूंजी विनियोग किया गया तथा ४३५५० लोगों को ये उद्योग रोजगार उपलब्ध करा रहे हैं।

लघु एवं दस्तकारी उद्योग

उत्तराखण्ड के औद्योगिक विकास के लिए उद्योग विभाग, हथकरघा विभाग, पर्वतीय ऊन योजना तथा खादी ग्रामोद्योग विभाग कई वर्षो से कार्यरत हैं। इन विभागों के अलावा केन्द्र सरकार के अधीन खादी ग्रामोद्योग आयोग भी गैर कृषि क्षेत्र में उद्योगों के लिये सुविधायें प्रदान कर रहे हैं।[७] वर्ष २०१३-१४ तक की लघु एवं दस्तकारी उद्योगों की प्रगति का विवरण तालिका-२ में दिया गया है।

तालिका-२ उत्तराखण्ड में लघु तथा दस्तकारी उद्योगों का विकास

मद	२०११-१२	२०१२-१३	२०१३-१४
लघु उद्योग			
१. औद्योगिक इकाईयों की संख्या	२५३६२	२८५४५	३३११५
२. पूंजी विनियोग (लाख रुपये में)	८७०७०.४८	६६२६५.६७	१२५७४०.६२
३. रोजगार सृजन (संख्या)	६४४८५	७४७२०	८८४६५
दस्तकारी उद्योग			
४. औद्योगिक इकाईयों की संख्या	६२३४५	६२५७७	६०६६६
५. पूंजी विनियोग (लाख रुपये में)	४०६७.६४	४१०२.३२	४३२०.३५
६. रोजगार सृजन (संख्या)	६८४८३	६८५४२	६७८१५

तालिका से स्पष्ट होता है कि वर्ष २०१३-१४ में लघु उद्योगों के अन्तर्गत ३३११५ इकाइयां राज्य में स्थापित हो गयी हैं। इन इकाइयों में १२५७४०.६२ लाख रुपये का पूंजी विनियोग हुआ है जबकि ८८४६५ लोगों को रोजगार उपलब्ध हुआ है। दस्तकारी इकाइयों के अन्तर्गत वर्ष २०१३-१४ तक ६०६६६ हजार इकाइयों की स्थापना राज्य में की जा चुकी है। इन इकाइयों द्वारा ४३२.३५ करोड़ रुपये का विनियोग किया गया है तथा लगभग ६७ हजार लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया गया हैं।

विशेष आर्थिक क्षेत्र

उत्तराखण्ड राज्य में औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड द्वारा विस्तारित औद्योगिक आस्थानों को जनपद देहरादून, हरिद्वार तथा उद्यमसिंह नगर में स्थापित किया गया है। इन तीनों जनपदों को मिलाकर राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक विकास के लिये विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zone) बनाया गया है। तालिका-३ में इस क्षेत्र में स्थापित औद्योगिक इकाइयों का विवरण दिया गया है-

तालिका-३ उत्तराखण्ड में औद्योगिक आस्थानों की स्थिति (२०१३-१४ तक)

औद्योगिक आस्थान	आवंटित क्षेत्रफल (एकड़ में)	निवेश (करोड़ रुपये में)	औद्योगिक इकाईयों की संख्या	प्रस्तावित रोजगार
एकीकृत औद्योगिक आस्थान, कोटद्वार	६७६	५७२०	५६५	५४०००
एकीकृत औद्योगिक आस्थान, पन्तनगर	२३१५	४६३०	४००	५१७३५
इ०एस०आइ०पी० सितारगंज	१६.२५	२६०	३०५	२४०००
फार्मासिटी सेलाकुई, देहरादून	३२.७५	१४०	३०	३३००
ग्रोथ सेन्टर, कोटद्वार	३६.५६	८५	३२	२४६०
आई०टी० पार्क, देहरादून	८.३५	१२५	१४	५३००

तालिका से स्पष्ट होता है कि जनपद हरिद्वार में ५६५ एकीकृत औद्योगिक आस्थानों को वर्ष २०१३-१४ तक स्थापित किया गया है जिसमें ५७२० करोड़ रुपये का निवेश हुआ है तथा ५४००० हजार व्यक्तियों हेतु रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये गये हैं। इसी प्रकार पन्तनगर में ४०० औद्योगिक आस्थानों के अन्तर्गत ५१,७३५ व्यक्तियों को रोजगार पर लगाया गया है एवं सितारगंज औद्योगिक क्षेत्र की ३०५ इकाइयों में २४,००० हजार व्यक्तियों के रोजगार के अवसर सृजित हुये हैं। जनपद देहरादून में ३० फार्मा कम्पनियों के स्थापना के साथ-साथ १४० करोड़ रुपये का निवेश किया गया है। इसमें ३३०० व्यक्तियों के लिए रोजगाार के अवसर जुटाये गये।

पर्वतीय एकीकृत औद्योगिक प्रोत्साहन नीति : उत्तराखण्ड राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में औद्योगिक विकास को और अधिक बढ़ावा दिये जाने एवं राज्य में औद्योगिक क्षेत्रों में रोजगार के अवसर को बढ़ावा दिये जाने तथा समन्वित एवं सुनियोजित औद्योगिक विकास हेतु विशेष एकीकृत औद्योगिक प्रोत्साहन नीति प्रस्तावित की गयी है।[८] इस नीति का उद्देश्य प्रदेश के औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ें व सुदूर पर्वतीय जनपदों में औद्योगिक विकास को गति देते हुए इन क्षेत्रों में उद्यमिता विकास, औद्योगिक अवस्थापना सुविधाओं के विकास तथा उद्यमों की स्थापना कर उद्यमियों को विपणन प्रोत्साहन तथा वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इस नीति दस्तावेज में रोजगार के अवसरों के सृजन के साथ-साथ पर्वतीय क्षेत्र के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर कर जनशक्ति के पलायन को रोके जाने हेतु यथासम्भव प्रयास किये गये हैं। उपलब्ध संसाधनों पर आधारित उद्योगों को बढ़ावा देने के लिये इस पृथक औद्योगिक नीति में समन्वित एवं समूह आधारित औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिये विनिमार्णक/उत्पादक क्षेत्र तथा सेवा क्षेत्र के उद्यमों को चिन्हित करते हुये अनुदान/प्रोत्साहन सुविधाओं की अनुमन्यता की सीमा व मात्रा निर्धारित की गई है।[९] विनिमार्णक तथा सेवा क्षेत्र के चिन्हित उद्यमों को निम्नानुसार वगीकृत किया गया है :-

१. हरित तथा नारंगी क्षेणी अप्रदूषणकारी विनिमार्णक उद्योग।
२. भारत सरकार द्वारा राज्य के लिये घोषित विशेष प्रोत्साहन पैकेज के अन्तर्गत अधिसूचित थ्रस्ट सेक्टर उद्योगों में शामिल गतिविधियां।
३. प्रदेश सरकार से उद्योग का दर्जा प्राप्त गतिविधियां, यथा कुक्कुट पालन तथा पर्यटन गतिविधियां।
४. पर्वोत्तर राज्यों के लिये घोषित विशेष औद्योगिक पैकेज-२००७ में सम्मिलित सेवा क्षेत्र व अन्य सेक्टर की निम्न गतिविधियांः-

सेवा क्षेत्र की औद्योगिक गतिविधियां

१. होटल, साहसिक एवं अवकाशकालीन खेल तथा रोप-वे।
२. चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाओंयुक्त नर्सिंग होम।
३. व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान, यथा होटल मैनेजमेंट, कैटरिंग एण्ड फूड क्राफ्ट, उद्यमिता विकास प्रशिक्षण, नर्सिंग एवं पैरामेडिकल, नागरिक विमानन से सम्बन्धित प्रशिक्षण, फैशन डिजाइनिंग तथा औद्योगिक एवं कौशल विकास प्रशिक्षण।[१०]

जैव प्रौद्योगिकी सम्बन्धी गतिविधियां

१. संरक्षित कृषि एवं औद्यानिकी, कोल्ड स्टोरेज आदि गतिविधियां।
२. पैट्रोल एवं डीजल पम्पिंग स्टेशन, गैस गोदाम।

इस नीति में एकीकृत औद्योगिक वित्तीय पैकेज की अनुमन्यता के लिए योजना में आच्छादित पर्वतीय क्षेत्रों को निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया हैः-

श्रेणी 'ए' : प्रदेश के सीमान्त एवं सुदूरवर्ती जनपद तथा उन जनपदों को सम्मिलित कर बनाये गये नवसृजित जनपद जिनमें पिथौरागढ़, उत्तरकाशी, चमोली, चम्पावत, रूद्रप्रयाग का सम्पूर्ण भू-भाग सम्मिलित हैं।

श्रेणी 'बी' : जनपद पौड़ी गढ़वाल, टिहरी, अल्मोड़ा एवं बागेश्वर का सम्पूर्ण भू-भाग तथा देहरादून के विकासनगर, डोईवाला, सहसपुर तथा रायपुर विकासखण्ड को छोड़कर व जनपद नैनीताल के हल्द्वानी एवं रामनगर विकासखण्ड को छोड़कर इन जनपदों के अन्य सभी पर्वतीय क्षेत्र बहुल विकासखण्ड भी इस श्रेणी में सम्मिलित होगें।

प्रमुख वित्तीय प्रोत्साहन एवं अन्य छूट : विशेष एकीकृत औद्योगिक प्रोत्साहन योजना नीति में प्रदत्त प्रमुख अनुदान सुविधाओं/रियायतों तथा प्रोत्साहनों का विवरण निम्नवत् हैः

(अ) भूमि संसाधन प्रोत्साहन योजना

१. राज्य सरकार द्वारा विकसित मिनी औद्योगिक आस्थानों/क्षेत्रों में वांछित अवस्थापना एवं सामान्य सुविधाओं, विद्युत, सड़क, जलापूर्ति, नालियों व सम्पर्क मार्ग के निर्माण का कार्य पूर्ण कर विनिर्माणक/उत्पादक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों को भूमि आवंटन प्राथमिकता के आधार पर किया जायेगा।

२. राज्य सरकार/निजी उद्यमियों द्वारा विकसित औद्योगिक आस्थानों/क्षेत्रों मे भूखण्ड लीज पर लेने अथवा क्रय करने पर लीज डीड/सेल डीड के निबन्धन में स्टाम्प शुल्क प्रभार में पूर्णतया छूट दी जायेगी।

३. यदि कोई उद्यमी निजी औद्योगिक आस्थान/मेगा प्रोजैक्ट/विनिर्माणक तथा सेवा क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना के लिए औद्योगिक आस्थान/क्षेत्र से बाहर सीधे स्वयं भूमि क्रय करता है, तो क्रय विलेख पत्र के निबन्धन में स्टाम्प शुल्क प्रभार से पूर्णतया छूट दी जायेगी।

४. उद्यमी द्वारा क्रय की गई भूमि के भू-उपयोग के परिवर्तन की प्रक्रिया सुगम एवं सरल बनायी जायेगी।

५. औद्योगिक आस्थानों के रख-रखाव हेतु सहकारी समितियों के गठन के लिए उद्यमियों की सहभागिता को प्रोत्साहित किया जायेगा। यदि आस्थान के रख-रखाव हेतु आस्थान के उद्यमी सहकारी समिति का गठन करते हैं तो समिति के सदस्यों द्वारा दिये गये अंशपूंजी के अनुपात (५ गुना) में रुपये १५ लाख तक की धनराशि एकमुश्त दी जायेगी जिसको समिति द्वारा बैंक में फिक्स डिपोजिट किया जायेगा और इस प्रकार किये गये फिक्स डिपोजिट पर अर्जित होने वाले ब्याज की धनराशि का उपयोग आस्थान के रख-रखाव हेतु किया जायेगा।

६. पर्वतीय क्षेत्र में औद्योगिक आस्थानों की स्थापना के लिये भूमि की न्यूनतम सीमा २ एकड़ होगी। भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित रूप से अधिसूचित बंजर, असिंचित भूमि अथवा अन्य उपलब्ध स्थानों पर निजी सार्वजनिक सहभागिता में निजी औद्योगिक आस्थान/क्षेत्रों की स्थापना को प्रोत्साहित किया जायेगा।

७. निजी क्षेत्रों में औद्योगिक क्षेत्रों/आस्थानों तथा मेगा प्रोजैक्ट की स्थापना में अवस्थापना सुविधाओं जैसे-विद्युत व्यवस्था, जलापूर्ति, सड़क, सम्पर्क मार्ग, नालियों के निर्माण आदि में होने वाले व्यय की ५० प्रतिशत धनराशि, अधिकतम रुपये ५० लाख अनुदान के रूप में औद्योगिक आस्थान के प्रर्वतकों को अनुदान स्वरूप दी जायेगी।

(ब) विशेष राज्य पूंजी निवेश उपादान सहायता : दूरस्थ व पर्वतीय क्षेत्रों के लिये क्रियान्वित विशेष राज्य पूंजी निवेश उपादान सहायता योजना को इस योजना में संविलीन करते हुये स्थापित होने वाले नये उद्यमों को कार्यशाला भवन के निर्माण, मशीनरी, संयत्र एवं उपकरणों में किये गये अचल पूंजी निवेश पर निम्नवत् सहायता उपलब्ध करायी जायेगीः

१. श्रेणी-ए के जनपद/क्षेत्र में कुल अंचल पूंजी निवेश का २५ प्रतिशत (अधिकतम रुपये ३० लाख)

२. श्रेणी-बी के जनपद/क्षेत्र में कुल अंचल पूंजी निवेश का २० प्रतिशत (अधिकतम रुपये २५ लाख)

उद्यमिता विकास, प्रशिक्षण, अध्ययन एवं सर्वेक्षण

१. उद्यमिता कौशल में वृद्धि एवं विकास तथा तकनीकी जनशक्ति प्रशिक्षण के लिए स्थानीय लोगों को उद्यमिता विकास प्रशिक्षण देकर उद्योगों की स्थापना को अभिप्रेरित किया जायेगा।[11] इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन के लिए आई०टी०आई०, पालीटेक्निक, इंजीनियरिंग कालेजों/विश्वविद्यालयों से उद्योगों की आवश्यकता के अनुरूप प्रशिक्षण के लिये समन्वय एवं सामन्जस्य स्थापित किया जायेगा। यदि क्षेत्र में किसी विशेष सर्वेक्षण व अध्ययन की आवश्यकता हुई तो वह भी इस मद से किया जायेगा।

२. कौशल विकास प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण के लिये उद्यमिता कौशल विकास संस्थान की स्थापना हेतु निजी संस्थानों की सहभागिता को प्रोत्साहित किया जायेगा। यदि संस्थायें कौशल विकास प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण के लिये अवस्थापना सुविधाओं के विकास तथा मशीनरी व टूलस् की स्थापना संस्थान में करती हैं तो इस मद में किये गये व्यय पर राज्य सरकार द्वारा पर्वतीय राज्यों के लिए विशेष एकीकृत वित्तीय प्रोत्साहन योजनान्तर्गत प्रदत्त उपादान व अन्य सुविधाओं का लाभ इन संस्थाओं को दिया जायेगा। उद्यमिता एवं कौशल विकास प्रशिक्षण के लिए Bench Marking System के आधार पर प्रशिक्षण के कौशल स्तर निर्धारित एवं मान्य होने पर ही वित्तीय सहायता/सुविधाओं का लाभ अनुमन्य होगा साथ ही

ऐसी औद्योगिक इकाईयों/अशासकीय संस्थाओं को स्किल डेवलपमेन्ट कार्यक्रमों को भी सहायता दिये जाने पर विचार किया जायेगा जो अपने उपक्रमों/संस्थाओं में अथवा अन्य प्रतिष्ठानों में प्रशिक्षण प्राप्त लोगों को रोजगार उपलब्ध करायेंगे।[12]

(द) स्थानीय संसाधनों पर आधारित उद्यमों को प्रोत्साहन : पैरा क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार सामान्य सुविधाओं की स्थापना को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से चुने हुये स्थानों पर औद्योगिक कार्यशाला को सामान्य सुविधा केन्द्र के रूप में संचालित किया जायेगा। केन्द्र के संचालन के लिये प्रोपराईटरी फर्म, कम्पनी अथवा संस्था के लिये प्राथमिकता प्रदान की जायेगी। केन्द्र द्वारा स्थानीय कच्चे माल पर आधारित यथा चीड़ की पत्ती, रामबांस व अन्य फाईबर, फल व शाक-सब्जी, जड़ी-बूटी इत्यादि के प्रशोधन, प्रसंस्करण तथा भण्डारण आदि के लिये शोध एवं विकास करने पर सहायता प्रदान की जायेगी तथा स्थानीय उपलब्ध कच्चेमाल के भण्डारण, प्रसंस्करण तथा डिब्बा बन्दी के कार्य प्रोत्साहित किय जायेंगे। क्षेत्र में स्थापित इकाइयों के उत्पादों के विपणन में भी सहयोग प्रदान किया जायेगा। ऐसी संस्था/केन्द्र द्वारा स्थानीय कच्चे माल के वैज्ञानिक विदोहन की विधि में होने वाले व्यय पर वन अनुसंधान केन्द्र, सी०एस०आई०आर०, इंजीनियरिंग एवं तकनीकी संस्थानों से तकनीकी परामर्श/सेवा आदि प्राप्त करने पर जो व्यय होगा उसकी ७५ प्रतिशत धनराशि की प्रतिपूर्ति उपादान के रूप में की गयी।[13] इसके साथ ही इन सामान्य सुविधा केन्द्रों द्वारा विपणन सहयोगी संस्था के रूप में उद्यमियों को Forward Linkage भी प्रदान किया जायेगा।

औद्योगक नीति-२००३ में वित्तीय प्रोत्साहनों के अन्तर्गत राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय अनुमोदित संस्थाओं से गुणवत्ता चिन्हांकन तथा आई०एस०ओ० प्रमाणीकरण पर किये गये व्यय का ७५ प्रतिशत, अधिकतम रुपये २ लाख, प्रतिपूर्ति अनुदान सहायता दिये जाने का प्रावधान किया गया है।[14] वर्तमान में यह सुविधा केवल आई०एस०ओ० प्रमापीकरण एवं पेटेन्ट पर दी जा रही है। अतः उक्त नीति के तहत आई०एस०ओ० प्रमापीकरण के अतिरिक्त उत्पाद की गुणवत्ता तथा मानकीकरण हेतु औद्योगिक इकाइयों द्वारा राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त संस्थाओं से आई०एस०आई० चिन्हांकन, क्वालिटी मार्किंग, बी०आई०एस०, एफ०पी०ओ० लाइसेन्स, ट्रेडमार्क एवं कापीराइट पंजीकरण आदि प्राप्त करने के लिये किये गये व्यय के ७५ प्रतिशत, अधिकतम रुपये १ लाख कर धनराशि की प्रतिपूर्ति अनुदान स्वरूप की जायेगी।

औद्योगिक विकास हेतु विशेष औद्योगिक प्रोत्साहन नीति में दिये गये प्रावधानों से निःसन्देह राज्य के उद्योग शून्य जनपदों में औद्योगिक गतिविधियों का विस्तार हो सकेगा। इससे निवेश के अवसरों में वृद्धि होगी तथा स्थानीय युवाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। फलस्वरूप युवा श्रम शक्ति का क्षेत्र से पलायन रूक सकेगा।

सन्दर्भः

१. जिला उद्योग केन्द्र, जनपद पौड़ी गढ़वाल, एक्शन प्लान, २०१४ पृ. १०

२. बिष्ट, एन०एस०, 'पर्वतीय क्षेत्रों के विकास में खादी ग्रामोद्योगों का योगदान', अर्थशास्त्र विभाग, हे०न०ब०गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत पेपर २०१०, पृ. ५

३. जिला नियोजन कार्यालय पौड़ी गढ़वाल, 'प्लान फॉर इन्टिग्रेटेड एरिया डेवलपमेण्ट इन पौड़ी गढ़वाल', २०१० पृ. १४

४. पर्वतीय विकास विभाग, उत्तराखण्ड शासन 'पर्वतीय क्षेत्र का विकास' प्रगति २०१२-१३ तथा २०१३-१४ कार्यक्रम, पृ. ६७

५. पर्वतीय विकास विभाग, उत्तराखण्ड शासन, 'बारहवीं पंचवर्षीय योजना', प्रगति २०१३-१४, कार्यक्रम, पृ. ४८

६. सेमवाल, जी०एन०, 'सूक्ष्म औद्योगिक विकास एवं अवरोधन', उत्तराखण्ड प्रकाशन, हिमालय संचेतना संस्थान, चमोली, १९९९ पृ. १४५

७. जिला औद्योगिक प्रोफाइल, जिला उद्योग केन्द्र कोटद्वार, पौड़ी गढ़वाल, २०१५, पृ. ८

८. कुकसाल, अरूण 'उत्तरांचल की औद्योगिक नीतिः समस्यायें एवं सम्भावनायें', उद्यमिता विकास संस्थान, उत्तरांचल द्वारा आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत पेपर, २००० पृ. ६

९. बिष्ट, एन०एस०, 'गढ़वाल के उद्योग-धन्धें और उनका विकास', खादी और ग्रामोद्योग कमीशन, बम्बई, मार्च १९६७, पृ. ३-४

१०. कार्यालय खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, 'विभिन्न ग्रामोद्योगों के लिए अनुमन्य आर्थिक सहायता का स्वरूप', उत्तराखण्ड खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, देहरादून, उत्तराखण्ड, पृ.४

११. सेमवाल, जी०एन०, 'सूक्ष्म औद्योगिक विकास एवं अवरोधक', सरस्वती प्रेस, पटेल मार्ग, देहरादून, १९९९, पृ. ३१५

१२. औद्योगिक प्रेरणा, जिला उद्योग केन्द्र कोटद्वार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, २०१४ पृ. ८

१३. 'औद्योगिक मार्ग दर्शिका', जिला उद्योग केन्द्र, कोटद्वार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, २०१५, पृ. ५

१४. गुप्ता, सुरेन्द्र कुमार, 'भारत में ग्रामीण औद्योगीकरण, समस्या और सम्भावनाएं', पटियाला हाऊस, नई दिल्ली, १९९०, पृ. ८

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

1857 ई. की चतरा की लड़ाई और विश्वनाथ शाहदेव

❑ डॉ. अशोक कुमार सिंह

चतरा : प्रशानिक इकाई : चतरा १७८० ई० से १८३४ ई० तक छोटानागपुर का प्रशासनिक मुख्यालय था। १७६५ ई० के बक्सर युद्ध के बाद अंग्रेजों को बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करने के बाद इस क्षेत्र का भी लगान वसूल करने का अधिकार मिल गया था। इस क्षेत्र को जमाबंदी में ''मखरजी महाल'' कहा गया जिसे नायब दीवान मो० रजाखान ने कम्पनी के लिए तैयार किया था। पहली बार जब कैप्टन जैकब कैमेक ने १७६६ ई० में खड़गडीहा और कुन्दा के राजा को हराकर रामगढ़ राजा से भू-राजस्व की बन्दोबस्ती की, जिसके बाद १७७१ ई० में रामगढ़ जिला का मिलिट्री कलक्टर नियुक्त किया जिसके अधीन नागपुर (राँची), पलामू (चक परगना), पंचेत (धनबाद), शेरघाटी (गया) रखा गया। इसे रामगढ़ हिल एक्ट की संज्ञा दी गई थी जिसका मुख्यालय चतरा रखा गया था। जिसमें बारी-बारी से चतरा एवं शेरघाटी में कचहरी का कार्य होता था। कैमेक के बाद कैप्टन हीटले तथा कैप्टन रेम्स मिलिट्री कलक्टर बने थे। इस व्यवस्था को १७८० ई० में समाप्त करके ''सिविल एडमिनिस्ट्रेशन'' व्यवस्था नई दीवानी एवं प्रशासनिक व्यवस्था बनाई गई। इसका पहला अधिकारी चैपमैन के रूप में नियुक्त हुआ जिसके पास न्याय एवं दण्ड दोनों अधिकार प्राप्त थे। १७ जून १७७६ ई० में इस जिले के प्रथम मुंसफ के रूप में काजी गुलाम मोईनउद्दीन की नियुक्ति की गई थी। १८०५ ई० में विलियम डिगबे चतरा के जिला अधिकारी नियुक्त किये गये थे। इन्हीं के साथ सरिस्तेदार डिप्टी रजिस्ट्रार के रूप में राजाराम मोहन राय चतरा आये और लगभग २० वर्षो तक कार्य करते रहे जबतक कि भागलपुर नहीं चले गये। उसी समय १८२५ ई० दो मुंसफों - एक लोहरदगा तथा दूसरा लेस्लीगंज के लिए नियुक्ति की गई। १८३४ ई० से चतरा मुख्यालय का स्थानांतरण किशुनपुर हो गया। १८५४ ई० में साउथ वेस्ट फ्रंटियर एजेन्सी को समाप्त कर छोटानागपुर का प्रभार डब्ल्यू०जे० एलन को प्रथम आयुक्त के रूप में गवर्नर के अन्तर्गत ननरेगुलेशन प्रमण्डल बनाकर सौंप दिया गया।[1] इस परिवर्तन के बावजूद भी चतरा का महत्व कम नहीं हुआ था क्योंकि यह उत्तर पश्चिम तथा पूरब के बाजार के आगमन का मुख्य पड़ाव बना रहा। इसी कारण १८५७ ई० में जब डोरंडा बटालियन ने अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत की तो उन्होंने चतरा होते हुए ही बाबू कुँवर सिंह से मिलने के लिए रास्ता तय किया था।

> झारखण्ड की भूमि ने स्वाधीनता की लड़ाई में अनेक सपूतों को अग्नि परीक्षा के लिए प्रेरित किया। इतिहास साक्षी है कि बिहार में सबसे पहले स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करनेवाले झारखण्ड के स्वाधीनताप्रिय आदिवासी थे। जिस भू-भाग ने अनेक सेनानियों को पैदा किया उन्होंने अंग्रेजी शासन का डटकर विरोध किया। अंग्रेज सैनिकों को बहुत क्षति उठानी पड़ी। वहाँ के शहीदों का इतिहास बिहार तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में बहुत कम स्थान पा सका है। इस शोध पत्र के द्वारा अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद स्वाधीनता की भावना कैसे पनपी और विकसित हुई को उजागर किया गया है। १७६५ ई० के बाद झारखंड भी बिहार, बंगाल, उड़ीसा का भू-भाग होने के कारण अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गया। यहाँ का जनजीवन उन्मुक्त वातावरण में जीवनयापन करने का आदी रहा हैं इसलिए जैसे ही अंग्रेजों ने यहाँ के स्वतंत्र निवासियों को पराधीनता की बेड़ी पहनाई, वे उसे तोड़ने के लिए ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव तथा गणपत राय पाण्डेय के नेतृत्व में संगठित हो गये।

पृष्ठभूमि : झारखण्ड की भूमि ने स्वाधीनता की लड़ाई में अनेक सपूतों को अग्नि परीक्षा के लिए प्रेरित किया। इतिहास साक्षी है कि बिहार में सबसे पहले स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करनेवाले झारखण्ड के स्वाधीनताप्रिय आदिवासी थे। जिस भू-भाग ने अनेक सेनानियों को पैदा किया उन्होंने अंग्रेजी शासन का डटकर विरोध किया। अंग्रेज सैनिकों को बहुत क्षति उठानी पड़ी। वहाँ के शहीदों का इतिहास बिहार तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में बहुत कम स्थान पा सका है। इस शोध पत्र के द्वारा अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद स्वाधीनता की भावना कैसे पनपी और विकसित हुई को उजागर किया गया है। १७६५ ई० के बाद झारखंड भी बिहार, बंगाल, उड़ीसा का भू-भाग होने के कारण अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गया। यहाँ का जनजीवन उन्मुक्त वातावरण में जीवनयापन करने का आदी रहा हैं इसलिए जैसे ही अंग्रेजों

❑ व्याख्याता, इतिहास विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

ने यहाँ के स्वतंत्र निवासियों को पराधीनता की बेड़ी पहनाई, वे उसे तोड़ने के लिए संगठित हो गये।

बिहार, बंगाल, उड़ीसा और मध्यप्रदेश से घिरा हुआ यह झारखण्ड का क्षेत्र पार्श्ववर्ती अन्य क्षेत्रों से भिन्न है। यहाँ के लोगों का संबंध जल, जमीन और जंगल से जुड़ा है। पहाड़ों की तरह इनके विचार भी कठोर हैं। जो भी आंदोलन यहाँ प्रारंभ हुए उसका उद्देश्य और लक्ष्य स्वशासन और स्वतंत्र परिवेश में स्वाधीन जीवन जीने की चाह मुख्य थी।

सबसे पहले भारत के इतिहास में आदिवासियों का विद्रोह छोटानागपुर और संथाल परगना के क्षेत्र में ही आरंभ हुआ जो १२ अगस्त १७६५ ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दिवानी शाह आलम द्वितीय ने प्रदान किया तो उसी के साथ संथाल परगना और छोटानागपुर का क्षेत्र भी ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों आ गया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने आते ही यहाँ की व्यवस्था पर आघात आरंभ कर दिया और जब इनके आधारभूत सामाजिक, आर्थिक संरचना को नुकसान पहुँचाया तो यहाँ के स्वतंत्रता प्रिय लोगों ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी पहचान, अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष आरंभ कर दिया और अंग्रेजों को देश से भगाने का बीड़ा उठाया। उसी में से एक थे अमर शहीद विश्वनाथ शाहदेव जिसने अपने जीवन काल में अंग्रेजों को नाकों चने चबवाया। विश्वनाथ शाहदेव ने अंग्रेजों को भारत की भूमि से समूल नष्ट करने का बीड़ा उठाया। ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव जिन्हें अंग्रेजों ने शाही के रूप में सम्बोधित किया, विश्वनाथ शाही का जन्म सतरंजीगढ़ में १२ अगस्त १८५७ ई० में हुआ था। इनका पूरा नाम ठाकुर विश्वनाथ शाही था। इन्हें ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव के नाम से जाना जाता है। वे बड़कागढ़ स्टेट के सातवें शासक थे जगन्नाथपुर गाँव में भी इनका भंडारगृह था। इनका पालन-पोषण राजकीय ढंग से हुआ था। इनका विवाह उड़ीसा के राजगांगपुर के राजा की पुत्री वानेश्वरी कुंअर से हुआ था। इन्होंने अपनी राजधानी सतरंजीगढ़ से हटाकर हटिया बनायी थी।

इन्होंने अनेक लोगों को साथ में समेटकर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की ज्वाला जलाई जिसमें छोटानागपुर के भूतपूर्व दीवान पाण्डेय गणपत राय, रामगढ़ बटालियन के जमादार माधव सिंह, डोरण्डा बटालियन के जयमंगल पाण्डेय, पलामू के नीलाम्बर पीताम्बर तथा पोड़ाहाट के राजा अर्जुन सिंह शामिल थे। राँची में विद्रोह का नेतृत्व ठाकुर विश्वनाथ शाही, पाण्डेय गणपत राय के सहयोग से कर रहे थे। डोरण्डा बटालियन के सूबेदार जयमंगल सिंह, विश्वनाथ शाही की मदद कर रहे थे। २ अगस्त १८५७ ई० तक सम्पूर्ण राँची पर इनका अधिकार हो गया। ये अंग्रेजों को खदेड़कर बाहर करने के लिए तैयार हो गये थे।

इसके बाद डोरण्डा बटालियन और विश्वनाथ शाहदेव के बीच अंग्रेजों को समूल उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से कई विचार-विमर्श के बाद कुंवर सिंह से मिलकर अंग्रेजों से लोहा लेने का अंतिम निर्णय लिया गया। इसी उद्देश्य से उन्होंने युद्ध के सारे साजो-सामान के साथ राँची से प्रस्थान किया।

विद्रोही सैनिक और चतरा : डोरंडा बटालियन का लक्ष्य कुंअर सिंह के साथ मिलकर अंग्रेजों से लोहा लेना था लेकिन जल्दबाजी तथा समय की कमी, योग्य दिशा निर्देशन का अभाव ने विद्रोही सैनिकों को चतरा की ओर मुड़ने के लिए विवश कर दिया। रास्ते में सारी विपत्तियों के बाद भी डटकर सामना करना उसकी बहादुरी एवं मातृभूमि के प्रति असीम प्रेम का द्योतक था। जहाँ अधिकतर जमींदार अंग्रेजों के पक्षधर थे वहीं कुछ देशप्रेमी जान की बाजी लगाकर आगे बढ़ रहे थे।

इधर विद्रोही सेनानी गणपत राय के विचार विमर्श के बाद सबक सिखाने की इच्छा को छोड़कर ११ सितम्बर को राँची से शेरघाटी की ओर चल दिये। ३ दिन बरियातु में रहने के बाद से राँची में आवश्यक रसद इकट्ठा करने के बाद उमेडंडा होते हुए शेरघाटी की ओर चल पड़े थे। उनकी योजना थी कि वे टिकू चंदवा घाट होकर चतरा की ओर कुंअर सिंह से मिलने जायँ। आवश्यकता पड़ने पर रास्ता भी बदल लेने का निश्चय किया था। स्थिति अब विद्रोहियों के पक्ष में थी क्योंकि उन्होंने डोरंडा से शासन चलाना शुरू कर दिया था। कचहरी भी विश्वनाथ शाहदेव की लग रही थी। लगभग १ महीना तक उनके अधिकार में डोरंडा बटालियन रही थी। आम जनता में उस समय जोश आ गया था। संथाल तो एक कदम आगे ही थे और कई गाँवों घरों को लूट लिया था। खड़गडीहा के संताल तो सभी से आगे निकल गये थे। १००० के लगभग स्थानीय सेना, पाण्डेय गणपत राय एवं ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव के लोगों को ४ तोपों को हाथी में एवं बैलगाड़ी में काफी मात्रा में गोला बारूद लेकर लूट के खजाने के साथ पलामू होते रोहतास जाना था, लेकिन आपसी विचार-विमर्श के बाद वे चतरा की ओर कुवर सिंह के लोगों से मिलने को चल दिये। प्रतिदिन उसे ३ से ४ कोस की दूरी तय करनी पड़ती थी।[२]

लेकिन विद्रोही सेना की योजना का पता अंग्रेज अधिकारियों को राम सिंह रामगढ़ के राजा के भाई से मिल जाने के कारण ही मुक्तिवाहिनी सेना को सफलता नहीं मिल पा रही थी। मुक्तिवाहिनी सेना तथा चोरेया के भोला सिंह के साथियों के

साथ संघर्ष चलता रहा और वे अपने उद्देश्य में सफल भी हो रहे थे तथा इधर अंग्रेज भी मुक्तिवाहिनी को डिहरी तक में रोक देना चाहते थे।[३] राँची से ४० मील दूर टिकुघाट चंदवा होकर चतरा जाना तय हुआ था। १४ सितम्बर को रामगढ़ घाटी के विद्रोही टिको घाटी राँची से ४० मील दूर थे तथा १६ सितम्बर को भोला सिंह चोरेया वालों के साथ संघर्ष के बाद २१ सितम्बर को विद्रोही सिपाही सारी तैयारी करते, खाने-पीने के अभाव में गाँव वालों से खाना खाते आगे बढ़ रहे थे। १६ सितम्बर को मुक्तिवाहिनी विशुनपुर में थी। मंगल पाण्डेय के बयान से पता चलता है कि जिसने अन्तिम सुनवाई के समय इन विद्रोही मुक्तिवाहिनी सेना को भोजन के अभाव में तीन से चार दिनों तक भूखा रहना पड़ा था तो स्वाभाविक था कि वे खाने के लिए जनता से कुछ प्राप्त करते। जिसके लिए विद्रोहियों को बल का भी प्रयोग करना पड़ता था, उसे ही अंग्रेज इतिहासकारों ने लूट-खसोट की बात कही थी,[४] जो टोरी परगना में पड़ता था, जिसके कारण विरोध करनेवालों पर मौत तक की कार्रवाई की गई थी।[५]

डोरंडा से ६०० सैनिकों तथा चार छः पाउडर तोप एवं काफी मात्रा में अस्त्र-शस्त्र के साथ डोरंडा बटालियन रोहतासगढ़ की ओर चल पड़े।[६] विश्वनाथ शाहदेव और पाण्डेय गणपत भी इनके साथ-साथ चल रहे थे। साथ ही साथ लोगों को आगे बढ़ा रहे थे, क्योंकि अंग्रेजों को छोटानागपुर की धरती से भगा देने का अरमान मन में था। १६ दिनों के बाद २३ सितम्बर को वे सैनिकों के साथ चतरा पहुँचे थे। लेकिन उनलोगों के चतरा पहुँचने की खबर अंग्रेजों को पहले ही गद्दारों द्वारा पहुँच गई थी जिसके कारण पहले से अंग्रेज सिपाही और गद्दार जमींदार से लड़ाई करते विद्रोही सैनिक थक चुके थे। भूखे प्यासे थके सैनिकों को विश्राम का भी मौका नहीं मिल पाया था। इतना ही नहीं कोई प्रशिक्षित तोपची भी नहीं था। इन सभी खामियों के बाद भी भारतीय विद्रोही फौज एवं विश्वनाथ शाहदेव के साथियों ने अंग्रेजों के साथ जोरदार लड़ाई थी। विद्रोही मुक्तिवाहिनी चतरा पहुँचे तथा पाण्डेय गणपत राय ने बालूमाथ के महंत को इस क्षेत्र से चंदा करने तथा आदमी इकट्ठा करने को कहा तो वह महंत चंदा जमा करके भाग गया। जब खोजा गया तो बताया कि वह मुक्तिवाहिनी के लिए चंदा कर रहा है। उसके बाद मुक्तिवाहिनी सेना ने आगे बढ़ते हुए तीन दिनों तक उस महंत की प्रतीक्षा की तथा उसके बाद खाना खाने के लिए बालूमाथ शहर को लूटा गया। जब दो दिनों बाद तक महंत नहीं आया तो लूटे हुए रुपये को आपस में बाँटकर खाना खाया। उसके बाद तक भी महंत नहीं आया। वह भाग चुका था। छठे दिन मुक्तिवाहिनी सेना चतरा की ओर बढ़ी। इसी बीच महंत मुक्तिवाहिनी को रोकने के लिए चंदा देने के बदले उसके विरोध के लिए एक दल तैयार कर रहा था। इधर नहीं मिलने पर महंत के घोड़े को ही मुक्तिवाहिनी सेना लेकर चली गई थी तथा वे २७ सितम्बर को चतरा के लिए रवाना हो गये थे। टिकोघाट से बालूमाथ १० मील थी लेकिन जंगली रास्ते के कारण तोप नहीं पहुँच पायी थी, जबकि सेना २१ सितम्बर को बालूमाथ विलम्ब से पहुँच चुकी थी।[७]

विद्रोही सिपाही २१ सितम्बर को बालूमाथ पहुँचे थे और वहाँ तीन दिन रुकने के बाद चतरा की ओर बढ़े। इतना ही नहीं २ अक्टूबर को मुक्तिवाहिनी सेना का एक भाग शहर में खाने के लिए प्रयास करता रहा। सैनिकों के खाने के लिए माधव सिंह इस कार्य में लगे रहे। उन्हें ब्रिटिश फौज का पता ही नहीं था। भोला सिंह बड़ाई चौरेया की लूट में शामिल था लेकिन इस बार वह विद्रोहियों के साथ था जो चतरा के महाजनों से सेना के लिए खर्च जुटा रहा था। वास्तव में सवेरे से ही फंड जमा किया जा रहा था। इस समय भी स्थानीय लोगों को मुक्तिवाहिनी सेना में भर्ती भी की जा रही थी। यह कार्य मो० सैफउल्ला खान की देखरेख में चल रहा था। प्रतिदिन सुबह भर्ती नये रंगरूटों की हो रही थी। भोजपुर तथा गया से ५० व्यक्तियों की भर्ती की जा चुकी थी जिसमें कुछ का ५ महीना पहले तथा कुछ का १० दिन पहले और ५ दिन पहले तक भर्ती चल रही थी।[८] चतरा में प्रवेश करने से पहले २६ तारीख को उन्होंने एक अग्रिम दल चतरा भेजा था। विद्रोहियों का मुख्य दल चतरा शहर में ३० सितम्बर को घुसा। इस दल में छः-सात सौ सिपाही थे और अन्य कई लोग थे जिनमें संभवतः बाबू कुंवर सिंह के भी कुछ लोग थे। इसकी खबर मिलने पर अधिकारियों ने अपना सम्पूर्ण ध्यान चतरा की ओर लगाया।[९] पलामू तथा शेरघाटी मार्गों के सभी घाटों की नाकाबंदी कर दी गई। इस तरह १ अक्टूबर तक अपनी सारी तैयारियाँ पूरी कर लेने के बाद अंग्रेज चतरा पहुँचे विद्रोहियों पर २ अक्टूबर को ६ बजे सुबह आक्रमण किया गया। इस आक्रमण के लिए विद्रोही तैयार नहीं थे। चतरा पहुँचने पर वे लूटपाट में लग गये थे और लूटपाट के क्रम में ही उन्होंने देखा कि मेजर इंगलिश ने उनके मुख्य दल पर हमला कर दिया था। वे मुख्य दल से मिलने के लिए दौड़ पड़े, लेकिन मेजर सिम्पसन ने उनका रास्ता रोक लिया। इस तरह सिपाहियों का दल दो भागों में बँटकर कमजोर पड़ गया। संभवतः उनके पास हथियारों की भी कमी थी, लेकिन वे निराश नहीं हुए और उन्होंने डटकर मुकाबला किया।

विद्रोहियों ने चतरा शहर से पश्चिम एक सुरक्षित स्थान को अपने लिए चुना था। चतरा शहर की सड़कें संकीर्ण थीं और उन्हें पार करने में खतरा था। विद्रोहियों और शहर के बीच एक पुलिया थी जिसके उत्तर में धान के खेत थे। अतः उनसे होकर तेजी से पार होना कठिन था। इसलिए मेजर इंगलिश ने निश्चय किया कि शहर के दक्षिण की ओर से होकर पुराने जेल के सामने विद्रोहियों का सामना किया जाय। अंग्रेजी फौज की अग्रिम पंक्ति जेल से पश्चिम की ओर गई और पाया कि विद्रोही एक ऊँची जगह पर एकत्रित थे। बंगला मौजा के ऊँचे स्थल पर था। इसी स्थान पर मुख्य मुक्तिवाहिनी सेना थी। उत्तर की ओर धान के कुछ खेत कम चौड़े थे। अतः उस ओर से भी आक्रमण किया गया। सरकारी फौज ने ३०० मीटर की दूरी से एनफिल्ड राइफलों से गोली चलाई जिसका जवाब विद्रोहियों ने तत्काल दिया लेकिन तबतक अंग्रेजी और सिक्ख सैनिक धान के खेत पार कर चुके थे। इसके बाद कुलोरिया गाँव को पार कर उन्होंने विद्रोहियों पर दूसरी ओर से हमला किया। विद्रोही अंग्रेज सेना को पीछे से घेरने की कोशिश कर रहे थे लेकिन मेजर सिम्पसन और लेफ्टिनेंट अर्ल के सिक्ख सैनिकों ने एक सिपाही और एक जमादार को मार डाला।[१०] अब लड़ाई तीव्र हो गई लेकिन सिक्खों ने दक्षिण पूर्व की ओर से उन्हें पीछे ढकेल दिया। विद्रोहियों की दो तोपें आग उगल रही थीं और कई अंग्रेज एवं सिक्ख सैनिक मारे गये लेकिन इसी समय बंगाल एन०आई के लेफ्टिनेंट जे०सी०सी० डौंट ने बायीं ओर से हमला कर एक तोप पर कब्जा कर लिया। फिर भी विद्रोही गोलियाँ चलाते रहे और लड़ाई एक घंटे तक चलती रही। सूबेदार नादिर अली खाँ जो तोपों को चला रहा था उसे बायें पैर में बुलेट लगी जिससे वह घायल हो गया। उसके घायल हो जाने के बाद भी सिपाही लड़ते रहे किन्तु उनमें से १०० भाग खड़े हुए और लगभग ५० बुरी तरह घायल हो गये। अन्तिम समय तक शेष सिपाही लड़ते रहे। अर्जुन सिंह चौथा तोप चला रहा था जिसे लखनऊ के दांते ने कब्जा किया। जयमंगल पाण्डेय और सूबेदार माधव सिंह उनका नेतृत्व कर रहे थे। लेकिन तोप पर अंग्रेजों के कब्जा के कारण वे मैदान से चल दिये थे।[११] तुमुल युद्ध चल ही रहा था कि माधव सिंह सिपाहियों की एक टुकड़ी के साथ चतरा बाजार की ओर आगे बढ़े फिर उसी ओर से दूसरे ठिकाने की ओर चल पड़े। इसके कारण उन्हें पकड़ने के लिए १००० रुपयों के इनाम की घोषणा की गई लेकिन इसका कहीं पता नहीं चला। अंग्रेजों के साथ इसी क्षेत्र के रामगढ़ के राजाओं द्वारा साथ दिये जाने के कारण बची हुई विद्रोही सेना पकड़ी गयी थी। युद्ध में माधव सिंह के नहीं होने के कारण विद्रोही कमजोर होते गये और अंत में अंग्रेजों को विजय मिली। इस लड़ाई में सार्जेन्ट डेनीस ने मुक्तिवाहिनी को काफी क्षति पहुँचाई। अंग्रेजों की ओर से ४६ अंग्रेज और १० सिक्ख मारे गये। ४ अंग्रेज सिपाहियों के घाव इतने गंभीर थे कि उनकी टांगें काटनी पड़ी। मारे जानेवाले अंग्रेजों में विलियम कैलन, पैट्रिक बर्क, जान एंड जेम्स रियान, जॉन चार्ल्स और डाइनन प्रमुख थे। अंग्रेजों के हाथ लगे चार तोपें, सिपाहियों का सारा सामान, १ बक्सा अफीम, रेजीमेंट के झंडे, ४५ बैलगाड़ी गोला-बारूद तथा अन्य युद्ध सामग्री, ५ बक्सों में ५०,३०३ रुपये जो संभवतः विभिन्न सरकारी खजानों से लूटे गये थे।[१२] सिम्पसन के अनुसार ७ विद्रोहियों को और १०० क्रांतिकारियों को एक ही गड्ढे में दफन कर दिया गया था। सैकड़ों लोग जंगल में घायल अवस्था में पाये गये। १५० स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को फांसी पर लटका दिया गया।[१३] जो बच निकले थे उन्हें चौकीदारों तथा ग्रामीणों ने पकड़ लिया। बहुत से क्रांतिकारी जंगलों में अपने हथियारों को फेंकते हुए शेरघाटी की ओर चल दिये। उन फेंके गये हथियार को चुनकर सरकारी कर्मचारी ने अपने अधिकारियों को सौंपा। १० हाथी पकड़े गये थे। लोहरदगा और पुरुलिया ट्रेजरी से लूटी गई ५०,३०३ रुपये और २० सेर अफीम मुक्तिवाहिनी से बरामद हुई थी।[१४] इस युद्ध में भोला सिंह चौरया भी विद्रोही की ओर से युद्ध में मारा गया था। अन्य मुक्तिवाहिनी सेना के साथ ही जब युद्ध शुरू हुआ तो चतरा के लोगों द्वारा एक घर में बंद करके भूखे मार दिया गया था।[१५] जब वे पानी मांगते थे तो स्त्रियों के द्वारा पानी के बदले पेशाब दिया गया था।[१६] यहाँ के शहीदों की स्थिति ऐसी थी। शायद उनके लूटपाट तथा पहले मुक्तिवाहिनी के विरोध के कारण यह दुर्गति की गई हो। यह सोचने का विषय था। अंग्रेजी सेना से सौ से अधिक घायल हुए थे।[१७] विजय की भारी कीमत चुकानी पड़ी थी किन्तु इससे अंग्रेजों को बहुत लाभ भी हुआ। इस युद्ध के बाद तो अंग्रेजों के लिए सोन से लेकर कलकत्ता तक का मार्ग सुरक्षित हो गया।

कई क्रांतिकारी जंगलों में छिप गये जहाँ से उन्हें ग्रामीणों की सहायता से अंग्रेजों द्वारा पकड़ लिया गया क्योंकि इस क्षेत्र में रामगढ़ के राजा का प्रभाव था जो अंग्रेजों के पक्ष में था। जंगलों में सिपाहियों द्वारा फेंके गये हथियारों के अलावा ठाकुर विश्वनाथ शाही की पालकी और उनके दो नौकर भी पकड़े गये। इससे यह सिद्ध हो गया कि चतरा की लड़ाई में वे भी शामिल थे और पराजय के बाद उसी रात भाग निकले थे। ३ अक्टूबर को जयमंगल पाण्डेय जो महान क्रांतिकारी (कमांडर

इन चीफ डोरंडा सेना के थे) को भी पकड़ लिया गया। साथ में नादिर अली खान जो अटलरी के चार्ज में थे[१८] भी पकड़े गये।[१९] १८५७ ई० के एक्ट XVII के तहत उन पर मुकदमा चलाया गया और मेजर सिम्पसन ने उपर्युक्त कानून के अंतर्गत उन्हें मौत की सजा दी।[२०] उसी जगह जहाँ उन्होंने दो दिन पहले अंग्रेजों का डटकर विरोध किया था, उन्हें ४ अक्टूबर को फांसी दे दी गई। किन्तु विद्रोहियों के दो अन्य प्रमुख नेता विश्वनाथ शाही और गणपत राय भागने में सफल हुए।[२१]

कमिश्नर डाल्टन ने कैनिंग को विश्वास दिलाया था कि चतरा के युद्ध के बाद छोटानागपुर शांत हो जाएगा, किन्तु विद्रोहियों के प्रमुख नेता विश्वनाथ शाही और पाण्डेय गणपत राय चतरा के युद्ध क्षेत्र से निकल कर लोहरदगा पहुँच चुके थे। वहाँ के जंगलों में छिपकर उन्होंने सरकार के विरुद्ध छापामार युद्ध शुरू कर दिया था। अंग्रेजों के समक्ष इस छापामार युद्ध से एक नई समस्या उठ खड़ी हुई। डाल्टन ने विद्रोहियों में भय उत्पन्न करने के लिए कप्तान मेकडोनाल्ड को भेजा जिसने मद्रासी फौज की सहायता से उमरांव सिंह एवं उसके दीवान शेख भिखारी और भाई प्यासी सिंह को पकड़ लिया। जन आक्रोश के भय से उन्हें ओरमांझी में फांसी न देकर राँची लाया गया और मोराबादी में टैगोर हिल के निकट उमराव सिंह और शेख भिखारी को शनिवार ८ जनवरी, १८५८ ई० को फाँसी दे दी गई। इस ऐतिहासिक फांसी-स्थल को आज भी फांसी टोंगरी के नाम से जाना जाता है। डाल्टन ने अन्य विद्रोहियों, विशेषतः विश्वनाथ शाही तथा गणपत राय को पकड़ने के लिए सभी संभव उपाय किये। प्रायः २०० सिपाही पकड़े भी गये और उन्हें राँची के कचहरी के निकट के पेड़ों पर फांसी दे दी गई। इनमें बहोरन सिंह नामक कैदी भी था जो विद्रोहियों द्वारा जेल से छुड़ा लिया गया था।

बहोरन सिंह पर आरोप : बहोरन सिंह एक फरार कैदी था जो ठाकुर विश्वनाथ शाही और गणपत राय से २०० सशस्त्र आदमियों के साथ मिला। इसने खास तौर पर बरवा थाना को जलाने में भाग लिया था। लोहरदगा के मुख्य सहायक पर हमला करने की योजना बना रहा था। जब विश्वनाथ शाही गिरफ्तार कर लिये गये तो यह कैदी भाग निकला था लेकिन कुछ ही देर के बाद पकड़ लिया गया और अपराधी होने के फलस्वरूप ५ जनवरी १८५८ को फांसी पर लटका दिया गया।[२२]

चतरा से उत्तर की ओर से लौटकर लोहरदगा की ओर चले आये पाण्डेय गणपत राय फिर भागकर छिपते हुए बालूमाथ, चंदवा होते हुए लोहरदगा आ गये। वहीं फिर सेना इकट्ठी हुई तथा ११०० सैनिकों के साथ गुरिल्ला युद्ध करते रहे और लोहरदगा पहुँचे। बरवा थाना में आग लगा दी गयी। इस समय बहोरन सिंह जिन्हें कैद से छुड़ाया गया था, अपने २०० सैनिकों के साथ गणपत पाण्डेय से मिले एवं इनलोगों ने बरवा थाना को जला डाला।

वह अपने २०० सशस्त्र अनुयायियों के साथ विश्वनाथ शाही से जा मिला था। बरवा थाना को जलाने में अगुवाई करने में उसका मुख्य हाथ था। लोहरदगा में लगाये प्रिंसिपल असिस्टेंट के शिविर पर आक्रमण करने की उसकी योजना विफल रही। वहीं वे पकड़े गये तथा संक्षिप्त सुनवाई के बाद उसे ५ जनवरी १८५८ ई० को फांसी दे दी गई।[२३]

दोनों विद्रोही नेताओं ने चतरा की लड़ाई में पराजय के बाद भी कभी हार नहीं मानी और अपनी शहादत के राह पर चलने को तत्पर रहे। ठाकुर विश्वनाथ शाही और पाण्डेय गणपत राय ने, सरकारी आंकड़ों के अनुसार ११०० सैनिकों को फिर से जमा किया और गुरिल्ला युद्ध करते हुए बरवा थाना में आग लगा दी थी। कप्तान ओक्स पर हमला करने की उनकी योजना सफल नहीं हुई क्योंकि ओक्स उन दिनों दोनों बागियों को पकड़ने के लिये लोहरदगा में डेरा डाले हुए था। इस हमले में बहोरन सिंह ने भी सक्रिय रूप से भाग लिया था। वे अपने २०० सैनिकों के साथ विद्रोहियों से जा मिले पर वे पकड़े गये।

चतरा की लड़ाई में विद्रोहियों को बहुत अधिक हानि हुई थी और उसकी भरपाई के लिए उन्हें पैसों की सख्त जरूरत थी। ठाकुर विश्वनाथ शाही और गणपत राय के पास अब अपना कुछ भी नहीं जिससे वे थोड़े दिन भी विद्रोह को आगे बढ़ाते। इन दोनों नेताओं को अपने किये की सजा स्वरूप अंग्रेज सरकार द्वारा दिसम्बर १८५८ में ठाकुर साहब के ६७ गाँव और गणपत राय के ग्यारह गाँव जब्त कर लिए गये। लोहरदगा आयुक्त पत्र सं० ६ तिथि अक्टूबर १८५७ का अधिनियम १६ के अन्तर्गत उन दोनों की सम्पत्ति जब्त की गई थी। इस परिस्थिति में भी वे निराश होकर चुप बैठनेवालों में नहीं थे। उनके पास छिपकर गुरिल्ला युद्ध करने के सिवा कोई उपाय नहीं था। अंग्रेज सरकार ने इन्हें पकड़ने के लिए कई भेदिये छोड़ रखे थे। अंग्रेजों ने उन्हें अपराधी घोषित करार दिया। वे उन्हें किसी भी कीमत पर पकड़ लेना चाहते थे। उन्हें जिन्दा या मुर्दा पकड़वाने वाले के लिए ५००/- रुपये के इनाम की घोषणा की गई।[२४]

इधर विद्रोही अभी भी अंग्रेजों के पिट्ठू पर कहर ढा रहे थे। उन्होंने अंग्रेजों के स्वामिभक्त महाजनों पर गोला, चास, खड़गडीहा, कुजू और बगोदर में हमला किया और उनकी

सम्पत्ति पर कब्जा कर लिया। संथालों के बढ़ते हमले से अंग्रेज बहुत घबरा गये थे। चतरा की पराजय के बाद गणपत राय और विश्वनाथ शाही के अलावा भी अन्य भागे हुए विद्रोही भूमिगत होकर लूट-मार करते हुए एक बार फिर से विद्रोह की ज्वाला जलाने की योजना में लगे रहे। उनलोगों को पकड़ने के लिए अंग्रेजों द्वारा इतना कड़ा पहरा था कि वे खुलकर मिल भी नहीं सकते थे।

चतरा की लड़ाई के बाद भी अंग्रेजों की स्थिति स्थिर नहीं हो पा रही थी और विद्रोहियों की भूमिगत कार्यवाहियों से वे पहले से भी अधिक परेशान हो गये। सिम्पसन जो प्रधान सहायक कमिश्नर था, ने बंगाल सरकार को पत्र लिखकर सुझाव दिया कि एक्ट १२, १८५८ को हजारीबाग में भी लागू कर दिया जाए जिससे विद्रोहियों पर आसानी से दमन-चक्र चलाया जा सके। मार्शल कानून पूरे देश में लागू था।

यह तथ्य इस बात को साबित करती है कि १८५७ का विद्रोह केवल सिपाही विद्रोह नहीं था बल्कि यह एक जन-आन्दोलन था जिसे व्यापक समर्थन प्राप्त था। विद्रोह में हर धर्म, हर जाति के लोग शरीक हुए थे।[२५] अंग्रेज तमाम कोशिशों के बावजूद भूमिगत बागियों को पकड़ने में प्रायः असफल रहे।

विद्रोह के समय अंग्रेजों ने भाग कर जंगलों में, बगोदर, कलकत्ता या अन्य जगहों में पनाह लिया था। वे जब दुबारा लौटकर आए तब उन्होंने अपने ध्वस्त जगहों को फिर से बनाया। उसके बाद तो वे और वहशी हो गये। अपने प्रशासन-कानून और सजा के ढंग उन्होंने और कड़े किए। लोगों को जिन्दा आग में झोंक देना, फांसी पर लटका देना, औरतों को उठवा लेना जैसी बातें तो उनके लिए आसान सजा हो गई थी।

उन्हें पकड़ने के लिए कप्तान जी०एम० ऑक्स फौज की एक टुकड़ी के साथ लोहरदगा में डेरा डाले हुए बैठा था। उसका बस एक ही उद्देश्य था गणपत राय को जिन्दा या मुर्दा पकड़ लेना। उसका मानना था कि गणपत राय जैसे दबंग वीर और निर्भीक क्रान्तिकारी के कारण ही छोटानागपुर में हुआ विद्रोह इतने दिनों तक चल रहा है। चतरा की लड़ाई में पराजित सैकड़ों विद्रोही सैनिकों और असैनिकों को फांसी पर लटका दिया जाना, आम जनता के बीच एक भय और खौफ का माहौल बना दिया था। दिसम्बर १८५७ से लोहरदगा जिला के सभी जमींदार स्वयं नागवंशी महाराजा जगन्नाथ शाहदेव और उनके संबंधी, तीन भतीजे राजभक्ति के कारण गणपत राय के वे भी खिलाफ हो गये थे। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। गणपत राय और ठाकुर विश्वनाथ शाही असली योद्धा के रूप में लड़ रहे थे। उनको पकड़ने के लिए कड़ा पहरा और अंग्रेजों द्वारा छोड़े गये जासूस उनके पीछे लगे रहे। गणपत राय एवं स्थानीय जनता को अलग-थलग करने का प्रयास होता रहा। समय बीतता गया, लोगों पर गणपत राय का नियंत्रण कम नहीं हो रहा था।[२६] जनवरी १८५८ तक सरकार इस क्षेत्र में अपनी स्थिति मजबूत करती गयी। ठीक इसके विपरीत विश्वनाथ शाहदेव और उनके अनुयायियों की स्थिति कमजोर पड़ती जा रही थीं। अंग्रेजों से अपने को बचाते हुए जंगली पहाड़ी इलाकों में अशान्ति बनाकर अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु संघर्ष जारी रखना। इसी से प्रेरित होकर गणपत राय लोहरदगा से २० मील दूर एक स्थान पर अपने अनुयायियों को एकत्र कर रहे थे। इसी समय पलामू के भोगता लोगों से साँठ-गाँठ करके अपनी स्थिति को मजबूत बनाना चाहते थे। नीलाम्बर पीताम्बर के साथ मिलकर संघर्ष करने का प्रयास करने लगे थे क्योंकि अभी भी पलामू के नेता के पास १०००० सेना बल थी जो ८ फरवरी तक घटती चली गई। अंत तक १००० में पहुँच गई।[२७] नवागढ़ के आस-पास के पहाड़ियों में विद्रोहियों का एक दल मार्च के मध्य गणपत राय तथा विश्वनाथ शाहदेव की देखरेख में संगठित किया जा रहा था। दूसरी ओर इनलोगों को पकड़ने के लिए कप्तान डाल्टन ने लोहरदगा की ओर प्रस्थान किया, परन्तु बीमार पड़ जाने के कारण गणपत राय एवं उनके साथियों को पकड़ने के लिए कप्तान ओक को नियुक्त किया गया। कप्तान नेशन की अध्यक्षता में मद्रास राइफल्स, रामगढ़ इरेगुलर केभेलरी और १६० कोल तथा संथाल सेनाओं के साथ शीघ्रतापूर्वक इन नेताओं को घेरने लगे। अचानक अंग्रेजों के बीच में पाकर दोनों क्रांतिकारी वृन्द अपने को घिरे हुए पाये, इसमें भी विश्वनाथ शाहदेव के नजदीक के रिश्तेदार ने गद्दारी की थी जिसके कारण वे दोनों संकट में घिर गये थे। ये दोनों वीर उस समय अंग्रेजों के चंगुल में फंस गये थे। विश्वनाथ शाहदेव ने तो उसी स्थान पर भागने का प्रयास किया लेकिन गद्दार जमींदारों तथा बन्दूकधारियों द्वारा पीछा करने के बाद विश्वनाथ पकड़ लिये गये।

अंग्रेजों के पिट्ठू जमींदारों ने भी अपने-अपने आदमियों को खास-खास जगहों में तैनात कर रखा था फिर भी गणपत राय अंग्रेजों की पकड़ में नहीं आ रहे थे। ऐसा लगता था कि सरकार की सारी पुलिस व्यवस्था बेकार जा रही थी। इतने कड़े पहने के बावजूद गणपत राय और ठाकुर साहब ने रास्ते पर कई जगहों पर पेड़ गिराकर मार्गों को अवरुद्ध कर दिया था। वे अपने अनुयायियों के साथ छापामार युद्ध चलाते रहे। अभी भी वे अपनी स्थिति मजबूत करने में लगे थे जिससे एक

बार फिर से उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ गई। उधर नीलाम्बर शाही और पीताम्बर शाही और नलकोट मांझी बराबर अंग्रेजों पर पूरा दबाव बनाये हुए थे। ये लोग अमर सिंह के थे और अंग्रेजों पर पूरा दबाव बनाये हुए थे। पलामू के इन पीताम्बर लोगों ने स्वयं राँची में रामगढ़ पलटन के विध्वंसक कार्यों को अपनी आँखों से देखा था जिससे प्रतीत होता है कि उस समय भी वे विश्वनाथ शाहदेव एवं पाण्डेय गणपत राय के साथ संबंध बनाये हुए थे। उस समय की स्थिति को देखने के बाद उन्होंने महसूस किया कि अब छोटानागपुर से अंग्रेजी राज्य खत्म हो जायेगा। इनका संबंध अमर सिंह के साथ भी था। करीब मार्च के मध्य में पाण्डेय गणपत राय और विश्वनाथ शाही एक बड़े विद्रोही दल के साथ नवागढ़ की पहाड़ियों पर जमा हुए और अंग्रेजों पर हमला और तेज कर दिया। उनलोगों ने अपने अनुयायियों और परगना नावागढ़ की सहायता से कुछ थानों को लूटा, इससे छोटानागपुर के कमिश्नर डाल्टन को बहुत चिन्ता होने लगी।२८ मार्च १८५८ के मध्य में डाल्टन स्वयं लोहरदगा पहुँचा क्योंकि गणपत राय उस समय लोहरदगा के निकट ही छिपे थे वे लोहरदगा थाना के साथ वहाँ के खजाने को लूटने के कार्यक्रम को अंजाम देने की तैयारी कर रहे थे।

३० मार्च सन् १८५८ की काली अंधेरी रात में लोहरदगा थाना और वहाँ का खजाना लूटने के लिए ठाकुर विश्वनाथ शाही और पाण्डेय गणपत राय अपने ११०० सहयोगियों के साथ वहाँ पहुँचे पर वहाँ उनलोगों का दुर्भाग्य उनका इन्तजार कर रहा था। अंग्रेजों के भेदियों विश्वनाथ दूबे और महेश नारायण शाही के द्वारा ऑक्स को मालूम हो गया था कि गणपत राय और विश्वनाथ शाही दोनों वीर क्रांतिकारी एक साथ खजाने को लूटने आनेवाले हैं। इधर पहरा और भी कड़ा कर दिया गया। जैसे ही विद्रोही वहाँ पहुँचे, पहले से घात लगाकर बैठी अंग्रेजी सेना ने उनपर धावा बोल दिया।[२९] इस अचानक हमले से पाण्डेय गणपत राय एवं विश्वनाथ शाहदेव घबरा गये, बचने तथा भागने के प्रयास में कई विद्रोही शहीद हो गये तो कुछ पकड़ लिये गये जिसमें विश्वनाथ शाही को भी अंग्रेजों ने लखराज गाँव में गिरफ्तार कर लिया। इस समय भी भाग्य ने पाण्डेय व गणपत राय का साथ दिया। अपने आपको बचाकर भाग निकलने में सफल रहे और अंग्रेजी सेना पकड़ने के लिए हाथ मलती रह गयी।[३०]

ठाकुर विश्वनाथ शाही पर अंग्रेजों ने बहुत से आरोप लगाये तथा १८५७ के अनुसार संक्षिप्त सुनवाई हुई। विश्वनाथ शाही पर आरोप छोटानागपुर प्रमंडल में १८५७ की धारा १४ के आधार पर प्राणदंड के साथ उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उन पर निम्नलिखित आरोप लगाये गये थे। छोटानागपुर का एक प्रमुख जमींदार, कैदी ने रामगढ़ बटालियन के विद्रोहियों का शुरू से साथ दिया और देशी पदाधिकारियों से कुछ रुपये पाकर घाट बन्द करवा दिया जिससे सरकारी अधिकारी लोग जिले में वापस नहीं आ सके। इसके अलावे कैदी ने बागियों को बादशाही तनख्वाह देने का वादा किया तथा कुछ धनी व्यापारियों को पकड़कर तंग किया और लुटवाया। इसका मतलब था कि वे २५,००० रुपये जमा करें जिससे सरकार के विरुद्ध लड़ाई लड़ी जा सके। चतरा में रामगढ़ तथा बरवा थाने में आग लगा दी। कैदी १,१०० आदमियों का एक दल तैयार कर लोहरदगा पर आक्रमण करने के ख्याल से उसके निकट आ पहुँचा जबकि कुछ सैनिकों के साथ लोहरदगा में ठहरे हुए प्रधान सहायक ने रात में तेजी से उस पर हमला करने का आरोप लगाया और १६ अप्रैल को उसे न्यायालय में फांसी की सजा मिली। फलतः उन्हें सजा स्वरूप १६ अप्रैल १८५८ को राँची में वर्तमान शहीद स्थल पर खड़े कदम्ब के पेड़ पर फांसी पर लटका दिया गया। उन्होंने अपने प्राणों की आहुति देश की रक्षा के लिए दे दी।[३१]

निष्कर्ष : १८५७ ई० के विद्रोह ने अंग्रेजों के लिए पूरे देश में शासन का रास्ता साफ कर दिया क्योंकि बंगाल, बिहार, उड़ीसा, अवध के राजा अंग्रेजों के साथ युद्ध में छल-कपट के कारण पराजित हुए ठीक उसी तरह १८५७ ई० में झारखण्ड के प्रमुख देशप्रेमी जिन्होंने अंग्रेजों को समूल नष्ट करने का बीड़ा उठाया था, अपने ही गद्दार भाइयों के कारण वे अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो सके। यही कारण था कि १८५७ ई० में झारखण्ड के प्रमुख शहीद विश्वनाथ शाहदेव का लक्ष्य बाबू कुंवर सिंह से मिलकर अंग्रेजों को भगाने का जो प्रयत्न किया था वह इसलिए सफल नहीं हो पाये क्योंकि अंग्रेजों के संवादवाहक भेदिया का कार्य विश्वनाथ शाहदेव के कैंप में रहकर भी कर रहे थे।

दूसरी महत्वपूर्ण घटना यह थी कि जब डोरंडा बटालियन के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया था उस समय उचित मार्गदर्शन नहीं मिल पाया था क्योंकि बोर्ड ऑफ डायरेक्टर में आपसी मतभेद के कारण कभी हजारीबाग तो कभी चतरा की ओर कूच करने के विचार ने भी हतोत्साहित किया। चतरा जाने का अन्तिम निर्णय विश्वनाथ शाहदेव व अन्य विद्रोही सैनिकों द्वारा लेने के बाद बरियातु एवं घाट में सुरक्षा के लिए स्थानीय लोगों ने भी भरपूर मदद नहीं की। भले ही बाद में चोरेया के भोला सिंह जैसे लोगों ने चतरा पहुँचने के बाद ही मदद की तबतक काफी

विलम्ब हो चुका था। अंग्रेजों के भेदिये विद्रोही सैनिकों की सारी कार्यवाही की सूचना अंग्रेजों तक पहुँचाते रहे जिसका लाभ उठाकर चतरा के चारों ओर जी०टी० रोड को घेर रखा था और विद्रोही सैनिकों के आने का इंतजार कर रहे थे जिसका नतीजा इतना भयावह हुआ कि अगले २०० वर्षों तक भारत में अंग्रेजी सत्ता कायम रही। यह १८५७ ई० के विद्रोह की असफलता का दूरगामी परिणाम सामने आया।

संदर्भ

१. हजारीबाग ओल्ड रेकर्डस, १७६१-१८७८, पटना जिल्द ८, १६५८, पृष्ठ १२४, सर्वे सेटलमेंट रिपोर्ट ऑफ हजारीबाग डिस्ट्रिक्ट, जे०डी० शिफ्टन, १६१५, पृष्ठ १४८

२. ज्यूडिशियल प्रोसिडिंग्स नं० १६८ दिनांक १२ नवम्बर, १८५७, नं० १६८, के०के० दत्त, हिस्ट्री ऑफ द इंडियन फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, जिल्द १, पृ० ६०, पी०सी० चौधरी, वही, पृ० ४४

३. ज्यूडिशियल प्रोसिडिंग्स डिस्पैच भौ० २१८, डाल्टन टू यंग नं० २६ तिथि २३ सितम्बर १८५७

४. छोटानागपुर कमिश्नर डिस्पैच भौ० २१८, डाल्टन टू यंग नं० २६ तिथि २३ सितम्बर १८५७

५. वही, ३१ अक्टूबर १८५७ चिट्ठी डाल्टन टू यंग ३२, तिथि ३० सितम्बर १८५७

६. गृह पब्लिकेशंस नं० ६४ तिथि २५ सितम्बर १८५७ डाल्टन टू यंग तिथि १४ सितम्बर १८५७

७. वही, गृह पब्लिकेशन कन्सलटेंट नं ७२, ६ अक्टूबर १८५७

८. छोटानागपुर कमिश्नर डिस्पैच, भौ० २१८, डाल्टन टू यंग नं० ६१ तिथि २३ अक्टूबर १८५७ एविडेन्स ऑफ नादिर अली खान और जयमंगल पाण्डेय ३ अक्टूबर १८५७ एट चतरा।

६. गृह पब्लिकेशन्स कन्सलटेंट नं० ७२, तिथि ६ अक्टूबर १८५७

१०. वही, पृ० १६८

११. छोटानागपुर कमिश्नर डिस्पैंच, भौ०, २१८, डाल्टन टू यंग नं० ६१ तिथि २३ अक्टूबर १८५७ एभिडेन्स ऑफ नादिर अली खान और जयमंगल पाण्डेय ३ अक्टूबर १८५७ एट चतरा।

१२. ३ अक्टूबर को मेजर सिम्पसन के समक्ष का बयान जयमंगल पाण्डेय का जिसमें १८ प्रश्न पूछा गया था। जयमंगल पांडेय का बयान डाल्टन का पत्र यंग का नं० ६१ तिथि २३ अक्टूबर

१३. छोटानागपुर कमिश्नर डिस्पैच भौ० ६० न० प० ७०, तिथि ७ अक्टूबर १८५७

१४. जु० क० दिनांक १२ नवम्बर १८५७, नं० १६८

१५. वही, पत्र नं० १७

१६. लोक कथा (किंवदन्ती)

१७. जु० क० वही, पत्र नं० २०

१८. वही, पत्र नं० १०७,

१६. वही, पत्र नं० १०७

२०. वही, पत्र नं० १०७

२१. वही, पत्र नं० १०७

२२. पी०सी० राय चौधरी, बिहार १८५७ पृ० ११४

२३. ओल्ड इंग्लिश कोरसपौंडेंस, राँची नं० ६७, डाल्टन का बंगाल के सचिव को पत्र

२४. चटर्जी हरप्रसाद (बंगाल पास्ट एण्ड डेभलपमेंट), खण्ड-७५, प्रथम भाग, पृ० ११४

२५. पी०सी० राय चौधरी, बिहार १८५७ पृ० ११७

२६. ११ जनवरी १८५८, जुडिसियल प्रोसिडिंग्स, फोर्ट विलियम गवर्नमेंट ऑफ बंगाल टू कमिश्नर ऑफ छोटानागपुर, १३०

२७. लेफ्टिनेंट गवर्नर का लेख, लोअर प्रोभिंसेज में गदर के प्रभाव, पी०सी० राय चौधरी, पृ० ८१

२८. इण्डियन म्यूटनी, कटिंग फ्रोम न्यूज पेपर्स पब्लिस्ड वीकली ड्यूरिंग द इण्डियन म्यूटनी, पृ० ७११

२६. दी टाइम्स पेपर्स, १८५७-१८५८

३०. लोहरदगा आयुक्त पत्र संख्या ६ अक्टूबर ४, १८५८, बंगाल सरकार।

३१. फोर्ट विलियम, नं० २३४/२६७, फोरवार्डेड स्टेटमेंट ऑफ इंडिया अण्डर एक्ट १६ ऑफ १८५७ स्टेटमेंट ऑफ जयमंगल पाण्डेय।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

ग्रामीण कुमाऊँ की पिछड़ी जातियों में आधुनिकीकरण

❑ **डॉ० मन्जू पनेरू**

उत्तराखण्ड राज्य के कुमाऊँ मंडल के अन्तर्गत जातिगत विवधता एक विशेष प्रवृत्ति के रूप में विद्यमान है। समाज के उच्च्व एवं समृद्ध वर्ग की तुलना में यहाँ निवास करने वाले अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के लोग आधुनिकीकरण की दिशा में उतनी अपेक्षित गति से प्रगति नहीं कर सके जितनी की जानी चाहिए थी। उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा जिले के चौखुटिया विकासखण्ड में निवास करने वाले गिरि समुदाय की शैक्षिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी, वैवाहिक, धार्मिक, व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिकी की स्थिति का अध्ययन करने के उपरान्त प्राप्त निष्कर्ष संकेत करते हैं कि अन्य पिछड़ा वर्ग के अन्तर्गत आने वाले गिरि समुदाय में तीव्र गति से न सही आधुनिकीकरण का प्रभाव आश्चर्यजनक रूप में परिलक्षित होने लगा है। अतः प्रस्तुत अध्ययन गिरी समुदाय के संदर्भ में आधुनिकीकरण के मूल्यांकन का एक प्रयास रहा है।

भारतीय संस्कृति एक ऐसी समन्वयकारी संस्कृति है जिनमें अनेक धार्मिक, भाषायी, प्रजातीय, जातिगत तथा सजातीय (Ethnic) समूहों की विशेषताओं का अनूठा मिश्रण देखने को मिलता है। विभिन्न समूहों की सांस्कृतिक विशेषताओं, खान-पान, व्यवहार प्रतिमानों, वेश-भूषा तथा व्यावसायिक पृष्ठभूमि में भी बहुत अन्तर है। विभिन्न क्षेत्रों की जनसंख्यात्मक विशेषताऐं व्यवहार के नियम, शारीरिक रचना, धार्मिक विश्वास, त्यौहारों की प्रकृति तथा रीति-रिवाज एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। विभिन्न संस्कृतियों का संगम-स्थल होने के कारण भारतीय संस्कृति को एक विविधताकारी संस्कृति कहा जाता है इसी आधार पर बहुत से समाज विज्ञानी भारत को एक बहुजन समाज (Plural Society) के नाम से सम्बोधित करते हैं।

पिछड़ा वर्ग भी भारत की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा है। भारत का पिछड़ा वर्ग सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ा हुआ है। परन्तु भारत के संविधान ने पिछड़ी जातियों को अनेक सुविधाऐ दी हैं तथा वे अपनी स्थिति सुधारने का भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं तथा समाज में अपनी अच्छी स्थिति को बनाने में संलग्न हैं।

वर्ष १९५० में जब भारत का संविधान बना तब यह तय किया गया कि पिछड़े वर्गो की शैक्षिक एवं आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए विशेष अधिनियम बनाये जायें। राज्य सरकारों को भी यह निर्देश दिए गए कि पिछड़ी जातियों को सामाजिक न्याय मिले तथा शोषण से मुक्ति हेतु समुचित संरक्षण दिये जाए।

२०११ की जनगणना के अनुसार अन्य पिछड़ा वर्ग की जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या का ४१ प्रतिशत है। योजना आयोग (१९५१) ने उन्हें लगभग २० प्रतिशत अनुमानित किया था।[१]

प्रस्तुत अध्ययन अल्मोड़ा जिले के विकासखण्ड चौखुटिया के गिरि समुदाय में आधुनिकीकरण की स्थिति के अध्ययन से सम्बन्धित है, इसके अन्तर्गत शिक्षा, विवाह, स्वास्थ्य, व्यवसाय एवं प्रौद्योगिकी आदि में आयें परिवर्तनों का मूल्यांकन किया गया है।

एक अवधारणा के रूप में आधुनिकीकरण को परिवर्तन की एक नयी प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। लेकिन मानव सभ्यता का सम्पूर्ण इतिहास परम्परा से आधुनिकीकरण की दिशा में होने वाले परिवर्तन का ही इतिहास है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सभी देशों में समान गति से नहीं चलती है। भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बहुआयामी है जो आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में देखी जा सकती है। नगरीकरण, औद्योगीकरण, संस्कृतीकरण, धर्मनिरपेक्षता एवं आधुनिकीकरण आदि कुछ ऐसे संकेतक हैं, जो सामाजिक परिवर्तन की स्थिति को प्रकट करते हैं। इन संकेतकों में सबसे महत्वपूर्व स्थान आधुनिकीकरण को प्राप्त है क्योंकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया किसी भी समाज में सदा एक सकारात्मक प्रक्रिया के रूप में गतिशील रहती है। आधुनिकीकरण एक व्यापक अवधारणा है क्योंकि समाज के प्रत्येक क्षेत्र को यह प्रक्रिया प्रभावित करती है। यह प्रक्रिया समाज के ढाँचे में परिवर्तन लाकर उसे नये रूप में प्रस्तुत करती है। आधुनिकीकरण शब्द का निर्माण आधुनिकता से हुआ है। जब कोई वस्तु, व्यक्ति या समाज आधुनिकता के घेरे में आ जाता है तो उसमें आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। आधुनिकीकरण सामाजिक संगठन के संरचनात्मक पक्ष तथा समाजों के सामाजिक

❑ प्रवक्ता समाजशास्त्र एम० बी० राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

एवं जनसंख्यात्मक, दोनों पक्षों की व्याख्या करता है। आधुनिकीकरण सांस्कृतिक क्रियाओं का एक विशेष रूप है जिसमें मुख्य रूप से सार्वभौमिक और विकासवादी लक्षणों का समावेश होता है। ये लक्षण अतिमानवता से संबंधित होने के साथ ही सजातीयता और वैचारिक आधार से परे होते हैं।[२] किसी गैर पश्चिमी देश में एक पश्चिमी देश के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव के फलस्वरूप उसके होने वाले परिवर्तन का नाम ही आधुनिकीकरण है।[३]

डेनियल लर्नर ने आधुनिकीकरण की अवधारणा को, इसकी पांच प्रमुख विशेषताओं के आधार पर स्पष्ट किया है १. समानता, स्वतंत्रता तथा लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित नगरीयता में वृद्धि, २. संचार के साधनों में वृद्धि तथा शिक्षा का प्रसार, ३. आर्थिक और राजनीतिक जन-सहयोग में वृद्धि, ४. सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, ५. धर्मनिरपेक्ष और तर्कपूर्ण विचारों में वृद्धि।[४] लर्नर के अनुसार किसी समाज में जब ये पांच विशेषताएं स्पष्ट होने लगती हैं तब यह कहा जा सकता है कि वह समाज परम्परा से आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है।

गिरि समुदाय का परिचय :- गिरि समुदाय के लोग भारत एवं नेपाल दोनों देशों में रहते हैं। गिरि समुदाय कुमाऊँ में अन्य पिछड़ा वर्ग के अन्तर्गत आता है। इस समुदाय के लोग कुमाऊँ के पिथौरागढ़, चम्पावत, अल्मोड़ा, बागेश्वर एवं नैनीताल जिले में मुख्य रूप से निवास करते हैं। वर्षो से यह समुदाय शिव की उपासना किया करता था, फलस्वरूप ये लोग कनफटे जोगी बन गए।[५] परन्तु कुछ गिरि जनों ने विवाह कर लिया और गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे हैं। ये आदि गुरू शंकराचार्य के शिष्य माने जाते हैं। ये भी दो भागों में बंट गए - एक जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया, आसनधारी या मठाधारी कहलाये एवं विवाह करने वाले गृहस्थ कहलाये। गिरि (पर्वत) नाम शिव की उपासना करने के प्रतीक के रूप में चल पड़ा है जो कि इनका परम्परागत व्यवसाय माना जाता है।

गिरि समुदाय आर्थिक रूप से पिछड़ा है जिसका प्रमुख कारण इनका कृषि पर निर्भर होना और पशु पालन करना है। परन्तु वर्तमान में शिक्षा के द्वारा इन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति में उल्लेखनीय प्रगति की है। ये आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में हैं। सरकार द्वारा विभिन्न कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं जिससे इस समुदाय ने अपनी सामाजिक स्थिति में भी सुधार किया है।

अध्ययन के उद्देश्य :-

१. गिरि समुदाय में शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह एवं धर्म पर आधुनिकीकरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

२. गिरि समुदाय में आधुनिकीकरण के फलस्वरूप व्यवसाय एवं प्रौद्योगिकी में आए परिवर्तनों की स्थिति का मूल्यांकन।

शोध प्रारूप :- अध्ययन का प्रमुख क्षेत्र जिला अल्मोड़ा का विकासखण्ड चौखुटिया है। यद्यपि गिरि समुदाय के लोग उत्तराखण्ड के विभिन्न जिलों में फैले हुए हैं, परन्तु इसकी सर्वाधिक जनसंख्या अल्मोड़ा जिले के चौखुटिया विकासखण्ड में निवास करती हैं।

अध्ययन की प्रकृति एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अध्ययन हेतु १०० गिरि परिवारों का चयन दैव निदर्शन पद्धति (लाटरी पद्धति) के आधार पर किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के उत्तरदाता चूंकि स्त्री, पुरूष, शिक्षित-अशिक्षित युवा, वृद्ध सभी (२० से ७१ वर्ष) है, ऐसी स्थिति में उनसे प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही स्रोतो का उपयोग किया गया है।

उपलब्धियाँ

उत्तरदाताओं की आयु एवं लिंग

सारणी संख्या ०१

उत्तरदाताओं की आयु एवं लिंग

आयु वर्ग	लिंग			
	पुरूष	स्त्री	योग	प्रतिशत
०-२०	०२	-	०२	०२
२१-३०	०३	०४	०७	०७
३१-४०	१६	०४	२०	२०
४१-५०	२६	०३	२९	२९
५१-६०	२२	०६	२८	२८
६१-७०	०९	-	०९	०९
७१ से ऊपर	०४	०१	०५	०५
कुल योग	८२	१८	१००	१००

सारणी संख्या ०१ से पता चलता है कि ८२ प्रतिशत उत्तरदाता पुरूष है तथा केवल १८ प्रतिशत उत्तरदाता महिलायें हैं। सबसे अधिक (२९ प्रतिशत) उत्तरदाता ४१-५० आयु वर्ग के हैं तथा सबसे कम ०-२० आयु वर्ग के ०२ प्रतिशत हैं।

शिक्षा :- शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की शिक्ष धातु से हुई है जिसका अर्थ है सीखना और सिखाना। मानव जीवन को सजाने व संवारने में शिक्षा की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी संस्कृति व सभ्यता की रक्षा करते हुए उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित करता है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री अरस्तु ने कहा है कि शिक्षा मनुष्य को पाशविक प्रवृत्तियों से ऊँचा उठाने का कार्य करती है। समाजशास्त्रीय विचारधारा के अनुसार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है।[६] शिक्षा समाज में समाज के लिए तथा समाज द्वारा संचालित एक प्रक्रिया

है। समाज के अस्तित्व पर ही शिक्षा का अस्तित्व निर्भर करता है। अतः यह एक सामाजिक प्रक्रिया है। उत्तरदाताओं से जब उनके बच्चों की शिक्षा के प्रति विचार पूछे गये तो अधिकांशतः यह पाया गया कि यह समुदाय अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहता है। वे महिलाओं की शिक्षा का भी समर्थन करते हैं। अधिकतर उत्तरदाता अपनी बेटियों को स्कूल भेजते हैं।

सारणी संख्या - ०२

बच्चों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

शिक्षा का स्तर	लड़का		लड़की	
	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
प्राइमरी	-	-	०१	०१
जूनियर हाई स्कूल	०१	०१	१०	१०
हाई स्कूल	०१	०१	३८	३८
इण्टरमीडिएट	४३	४३	३७	३७
स्नातक	४६	४६	१३	१३
स्नातकोत्तर	०६	०६	०१	०१
अन्य	-	-	-	-
योग	१००	१००	१००	१००

सारणी संख्या ०२ से ज्ञात होता है कि ०१ प्रतिशत उत्तरदाता अपने बेटों को जूनियर हाईस्कूल तथा ०१ प्रतिशत हाईस्कूल तक की शिक्षा देना चाहते हैं। ४३ प्रतिशत इण्टरमीडिएट तक की शिक्षा देना चाहते हैं। सबसे अधिक (४६ प्रतिशत) अपने बेटों को स्नातक स्तर की शिक्षा देना चाहते हैं तथा ०६ प्रतिशत परास्नातक। इससे यह सिद्ध होता है कि अधिकांश उत्तरदाता (५५ प्रतिशत) अपने बेटों को उच्च शिक्षा दिलवाने के पक्ष में हैं। बेटियों की शिक्षा के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की स्थिति यह है कि केवल ०१ प्रतिशत उत्तरदाता अपनी बेटियों को प्राइमरी स्तर की शिक्षा देने के पक्ष में हैं, जिससे कि वे लिखना-पढ़ना सीख लें। १० प्रतिशत उत्तरदाता जूनियर हाईस्कूल तक की शिक्षा देना चाहते हैं क्योंकि इसके बाद पढ़ाई के लिए गाँव में स्कूल नहीं हैं तथा वे अपनी बेटियों को गाँव से दूर नहीं भेजना चाहते हैं। ३८ प्रतिशत उत्तरदाता अपनी बेटियों को हाईस्कूल तक की शिक्षा देना चाहते हैं ताकि वे अपने निर्णय खुद ले सकें। ३७ प्रतिशत इण्टरमीडिएट, १३ प्रतिशत स्नातक एवं ०१ प्रतिशत स्नातकोत्तर तक की शिक्षा देने के पक्ष में हैं क्योंकि उनका विचार है कि लड़कियों को भी लड़कों की तरह शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलना चाहिए। अन्य का मानना है कि लड़कियों का विवाह समय से हो जाना चाहिए।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि गिरि समुदाय में शिक्षा का महत्व बढ़ने लगा है। १०० प्रतिशत बच्चे शिक्षा ग्रहण करने विद्यालय जाते हैं। समय-समय पर सरकार द्वारा नए विद्यालय खोले जा रहे हैं। साक्षरता दर में वृद्धि होने लगी है। अतः आधुनिकीकरण का प्रभाव गिरि समुदाय के बच्चों की शिक्षा पर भी स्पष्टतः देखा जा सकता है।

स्वास्थ्य :- गिरी समुदाय पर आधुनिकीकरण का प्रभाव जानने के लिए उत्तरदाताओ के स्वास्थ्य से सम्बन्धित विचारों का विश्लेषण एक पृथक सारणी के अन्तर्गत किया गया है।

सारणी संख्या - ०३

बीमार पड़ने पर लिये जाने वाले उपचार

उपचार का प्रकार	आवृत्ति
होम्योपैथी	१०
एलोपैथी	४३
आयुर्वेद	२१
घरेलू उपचार	०६
झाड़-फूँक	०४
जादू टोना /काला जादू	०५
देवी देवताओं की पूजा	०८
योग	१००

उत्तरदाताओं से जब यह पूछा गया कि बीमार पडने पर वे किस प्रकार का उपचार लेते हैं तो सबसे अधिक उत्तरदाताओं ने प्रथम प्राथमिकता एलौपैथी दूसरी आर्युर्वेद तीसरी होमयोपैथी चौथी घरेलू उपचार पांचवी देवी देवताओं की पूजा छठी जादू-टोना तथा सबसे अन्त में झाड़-फूँक को दी। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये लोग उपचार के आधुनिक साधन अपनाने को महत्व देने लगे हैं।

विवाह :-

सारणी संख्या -०४

जीवन साथी के चयन का आधार

आयु वर्ग	माता पिता के अनुसार	बच्चों की इच्छानुसार	अपनी जाति में	योग
०-२०	-	०२	-	०२
२१-३०	०७	-	-	०७
३१-४०	०६	०६	०५	२०
४१-५०	१६	०७	०६	२६
५१-६०	१८	०४	०६	२८
६१-७०	०७	०२	-	०६
७१ से ऊपर	०१	-	०४	०५
योग	५८	२१	२१	१००
प्रतिशत	५८	२१	२१	१००

उपर्युक्त सारणी संख्या ०४ के विश्लेषण से उत्तरदाताओं का

अपने बच्चों के विवाह के लिए जीवन साथी चुनने को लेकर विभिन्न विचार देखने के मिले। सबसे अधिक (५८ प्रतिशत) उत्तरदाता माता-पिता द्वारा चुने गए जीवन साथी से विवाह करने को उचित मानते हैं। बच्चों की इच्छानुसार एवं अपनी जाति में विवाह करने को ४२ प्रतिशत उत्तरदाता उचित मानते हैं।

गिरी समुदाय मे अर्न्तविवाह (Endogamy) का प्रचलन है परन्तु कुछ स्थानों में अनुलोम विवाह (Hypergamy) भी प्रचलित है। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि गिरि समुदाय एवं अनुसूचित जाति में विवाह नहीं हुए है परन्तु कुछ विवाह ब्राहमण एवं क्षत्रिय जाति में देखने को मिलते हैं। इसे वे बुरा नहीं मानते हैं। एक ही गाँव में तथा भाई बहनों में विवाह वर्जित है। विवाह अन्य गोत्र में किया जाता है।

धर्म :- पूजा पाठ के प्रति उत्तरदाताओं के विचार सारणी संख्या ०५ में दर्शाये गये हैं।

सारणी संख्या -०५

उत्तरदाताओं द्वारा की जाने वाली पूजा

पूजापाठ की प्रवृत्ति	आवृत्ति	प्रतिशत
रोजाना	८१	८१.००
कभी-कभी	१७	१७.००
त्यौहारों में	०२	०२.००
योग	१००	१००

कुछ उत्तरदाताओं ने बताया कि वे भगवान में आस्था रखते हैं, परन्तु वे त्यौहारों में कभी कभार पूजा करते हैं। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि गिरि समुदाय पूजा में विश्वास करता है एवं अधिकांश उत्तरदाता (८१ प्रतिशत) रोज पूजा पाठ करते हैं। धार्मिक विश्वासों की कट्टरता में कमी हुई है। आर्थिक समृद्धि एवं प्रगति की चाह के चलते धर्म पर आस्था की स्थिति कमजोर होती चली है।

व्यवसाय :-

सारणी संख्या -०६

उत्तरदाताओं के व्यवसाय

व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत
कृषि	५७	५७.००
सरकारी नौकरी	१४	१४.००
प्राइवेट नौकरी	१८	१८.००
मजदूरी	०८	०८.००
परम्परागत व्यवसाय	-	-
व्यापार	०३	०३.००
कुल योग	१००	१००

गिरि समुदाय में ६६ प्रतिशत महिलायें घरेलू कार्यों प्रमुखतः कृषि कार्यों में व्यस्त रहती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि महिलाये शिक्षित नही हैं। फलस्वरूप नौकरी नहीं कर सकती हैं। गिरि समुदाय का परम्परागत व्यवसाय शिव मंदिरों में भगवान शिव की उपासना करना था। वर्षो से यह समुदाय भगवान शिव की उपासना करता आया है परन्तु वर्तमान में कृषि गिरि समुदाय का मुख्य व्यवसाय है। सारणी संख्या ०६ से स्पष्ट होता है कि ५७ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मुख्य व्यवसाय कृषि है एवं इनकी आय का मुख्य स्रोत है। ०८ प्रतिशत उत्तरदाता मजदूरी करते हैं। कृषि कार्य में महिलाऐं हल जोतने के अलावा सभी कार्य करती हैं। १४ प्रतिशत सरकारी तथा १८ प्रतिशत प्राइवेट नौकरी करते हैं। केवल ०३ प्रतिशत व्यापार करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन द्वारा यह तथ्य सामने आया कि वर्तमान में कोई भी गिरि व्यक्ति अपने परम्परागत व्यवसाय को नही करता। वे या तो कृषि करते हैं या फिर अन्य व्यवसाय करते हैं।

प्रौद्योगिकी :- किसी राष्ट्र के आधुनिकीकरण से तात्पर्य विज्ञान एवं तकनीकी के प्रयोग से उस राष्ट्र के आर्थिक विकास करने और जनसाधारण के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने से है। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि समय के साथ-साथ परम्परागत गिरि समुदाय की जीवन शैली में भी परिवर्तन आया है। सारणी संख्या-०७ में उत्तरदाताओ की वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपकरणों के प्रयोग की स्थिति को दर्शाया गया है।

सारणी संख्या -०७

उत्तरदाताओं द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उपकरण

उपकरण	उत्तरदाताओं की आवृति		योग
	हाँ	नहीं	
कार/जीप	०२	९८	१००
स्कूटर/मोटर साइकिल	०६	९४	१००
साइकिल	१४	८६	१००
रेडियों	५७	४३	१००
टेलीविजन	४५	५५	१००
वाशिंग मशीन	०२	९८	१००
सिलाई मशीन	३०	७०	१००
फोन	३०	७०	१००
पंखा	०५	९५	१००
फ्रीज	०२	९८	१००

उपर्युक्त सारणी संख्या ०७ से यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदाता आधुनिक युग के वैज्ञानिक और तकनीकी उपकरणों अर्थात दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाले उपकरणों का प्रयोग करते हैं। चौखुटिया विकासखण्ड के गिरी समुदाय का मुख्य व्यवसाय (५१ प्रतिशत) कृषि है। परन्तु उनका कृषि कार्य करने का परम्परागत

तरीका बदल रहा है।

अध्ययन में पाया गया कि ७० प्रतिशत लोग खेती में हल, बैल आदि का प्रयोग करते हैं। परन्तु कृषि यंत्रों तथा रासायनिक उर्वरक आदि का उपयोग दिनों-दिन बढ़ रहा है। सारणी संख्या ०८ में उत्तरदाताओं द्वारा कृषि यंत्रों एवं रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से सम्बन्धित दृष्टिकोण को दर्शाया गया है।

सारणी संख्या - ०८

कृषि यंत्रों एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग

यंत्र	आवृत्ति	प्रतिशत
ट्रैक्टर	१०	१०.००
थ्रेशर	०६	०६.००
उन्नत बीज	२०	२०.००
रासायनिक उर्वरक	४०	४०.००
कीटनाशक दवा	१७	१७.००

अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि चौखुटिया विकासखण्ड के गाँव चॉदीखेत की कृषिभूमि मैदानी है तथा वहॉ ट्रैक्टर से खेतों की जुताई चल रही है। सिंचाई के लिए पास की नदी से नहरे बनाई गई हैं तथा सिंचाई प्रबन्ध संतोषजनक हैं। वे ट्रैक्टर, थ्रेशर, उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग कर रहे हैं। उत्तरदाताओं द्वारा कृषि यंत्रों एवं रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग किये जाने से उनकी प्रति एकड़ कृषि पैदावार में वृद्धि हो रही है। मानव शक्ति एवं समय की बचत हो रही है कृषि उत्पादन अधिक हो रहा है एवं आर्थिक स्थिति सुधर रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि गिरि समुदाय के लोग कृषि के परम्परागत साधनों के स्थान पर आधुनिक साधन ग्रहण करने लगे हैं। कुल मिलाकर सम्पूर्ण गिरि समुदाय तकनीकी समाज के रूप में परिवर्तित हो रहा है।

निष्कर्ष :- निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गिरि समुदाय में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी है। शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह, धर्म एवं व्यवसाय में परिवर्तन आ रहे हैं। प्रौद्योगिकी ने इस समुदाय के जीवन का आइना ही बदल दिया है। उनकी आर्थिक दशा में सुधार हो रहा है। समुदाय में शिक्षा का महत्व बढ़ने लगा हैं। वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा भी देना चाहते हैं। सरकार द्वारा नये-नये शिक्षण संस्थानों की स्थापना हो रही है।

साक्षरता दर में वृद्धि हो रही है। वे आधुनिक चिकित्सा पद्धति अपना रहे हैं। परम्पराओं, कुप्रथाओं, विवाह की परम्परा, अन्धविश्वासों एवं धार्मिक मान्यताओं इत्यादि का प्रभाव कम होने लगा है। अतः धर्म तथा परम्परा सम्बन्धी संकीर्णता दूर हो रही हैं। गिरि समुदाय अपने परम्परागत व्यवसाय छोड़ कृषि नौकरी, व्यापार एवं अन्य कार्य करने लगा है। कृषि में आधुनिक यंत्रों का प्रयोग किया जा रहा है जिससे उत्पादन बढ़ रहा हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण गिरि समुदाय के परम्परागत समाज को आधुनिक समाज मे बदल रहा है।

सन्दर्भ

1. Source: Census of India, Govt of India 2011.
2. Singh, Yogendra, 'Modernization of Indian Tradition', Rawat Publications, Jaipur 1973, p. 61
3. Srinivas M.N., 'Social Change in Modern India', Orient-Longman, New Delhi, 1995, p. 50
4. Lerner Deniel : The Passing of Traditional Socieity, Free Press Glincoe, New York, 1964. PP - 45-49.
5. B.V. Shah : Problems of Modernization of Education in India, 1969
6. यादव सुकेश एवं सक्सेना सविता : शिक्षा के दार्शनिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा-२००६, पृ० ३.
7. Atkinson, E.T. : The Himalayan Gazetter, Vol - II, Part-II, Natraj Publishers, Dehradun, 1996, p-773.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

महिलाओं की प्रस्थिति एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ कु. सरिता
❖ डॉ. रेनू प्रकाश

स्वतत्रोपरांत भारत में शिक्षा के प्रसार, औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात एवं संचार के साधनों के विकास, संयुक्त परिवारों के विघटन, पाश्चात्यीकरण, आधुनिकीकरण तथा महिला-कल्याण हेतु बने सामाजिक विधानों के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति में अतिशय परिवर्तन आया है। हिन्दू और मुस्लिम महिलाओं पर विचार करें तो दोनों के सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोणों में भिन्नता के कारण अलग-अलग परिवर्तन दिखाई देता हैं। प्रस्तुत अध्ययन सांप्रत भारतीय समाज में हिन्दू और मुस्लिम महिलाओं की स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण करने का एक प्रयास है।

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य हिन्दू एवं मुस्लिम महिलाओं की जीवन शैली का एक तुलनात्मक अध्ययन करना है। भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है, जिसमें विभिन्न धर्म और अलग-अलग जाति के लोग रहते हैं जिनकी अपनी जीवन शैली, भाषायें और अलग-अलग तरह की संस्कृति है। प्रत्येक धर्म को मानने वाले लोग अपने-अपने तरीके, रीति-रिवाज और परम्पराओं का पालन करते हुए अपने धार्मिक मूल्यों के अनुसार अपना जीवन निर्वाह करते हैं। भारत में अगर महिलाओं के सन्दर्भ में बात की जाए तो वैदिक काल में महिलाओं की दशा अत्यन्त उच्च मानी गई है।

समाज को स्वरूप व दिशा प्रदान करने में महिलाओं व पुरुष का बराबर योगदान रहा है, किन्तु पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को सार्वभौमिक अधिकार की अभी भी दरकार है, जबकि इतिहास साक्षी है कि परिवार समाज व देश को जब भी महिला की आवश्यकता पड़ी उसने अपनी सार्थकता को सिद्ध कर दिया है। हमारा देश अपने धार्मिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं, धर्म, सभ्यता व संस्कृति के लिए विश्व के राष्ट्रों में अग्रणीय रहा है। हमारी धार्मिक मान्यताओं में महिलाओं के स्वरूप को सरस्वती, लक्ष्मी, भगवती, सावित्री, सीता व राधा के रुप में पूजा व सम्मान दिया जाता है। उसी महिला शक्ति को आज अत्याचार व पीड़ादायक जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। ''हिन्दूओं के रीति-रिवाज व मान्यताएं'' नामक पुस्तक में प्रकाश गंगराडे ने लिखा है ''माँ सरस्वती विद्या, संगीत और बुद्धि की देवी मानी गयी हैं। प्राचीन ग्रन्थों में बाग्देवी, वाणी, शरदा, भारती बीणापणि, विद्याधरी 'सर्वमंगल' आदि नामों से अलंकृत किया गया है।[१]

वैदिक काल में महिलाओं के लिए शिक्षा की व्यवस्था थी। प्रत्येक बेटी को अपने जीवन साथी चुनने का अधिकार था। विश्धारा, अपाला और घोषा ने मंत्रों की रचना कर ऋषि पद प्राप्त किया था। घोषा अपने माता-पिता के घर ही रही उसने विवाह नहीं किया था।[२] मनु के अनुसार स्त्रियों के जीवन में किसी भी अवस्था में स्वतंत्रता संभव नहीं है। विवाह के पूर्व तक माता-पिता के संरक्षण में रहना है। ऐसी स्थिति में आर्थिक दृष्टि से महिला एक दायित्व बन गई और इस प्रकार समाज पुरूष केन्द्रित होता गया।[३] राजा राम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, राम कृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी आदि के प्रयासों से इन कुरीतियों का अन्त करने का प्रयास किया गया। समाज सुधार और देश की आजादी के संयुक्त लक्ष्य में कहीं भी स्त्री और पुरुष का भेदभाव आड़े नहीं आया। दोनों परस्पर सहयोग व पूरक वर्ग भूमिका निभाते रहे।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात स्त्रियों, की स्थिति में काफी परिवर्तन हुए हैं। ''स्वतंत्रता के पश्चात अनेकों ऐसे परिवर्तन व नवाचारों के कारण महिलाओं को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का अवसर मिल सका। इस परिस्थितियों में श्री निवास (१९७६) ने पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण और जातीय गतिशीलता के हुए प्रभाव को प्रमुख स्थान दिया है। इसके अतिरिक्त महिलाओं में शिक्षा का प्रसार होने व औद्योगीकरण के फलस्वरूप भी उन्हें आर्थिक जीवन में प्रवेश करने के अवसर मिले। संचार के साधनों, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं का विकास होने से महिलाओं ने अपने विचारों को अभिव्यक्त करना आरम्भ कर दिया। संयुक्त परिवार का विघटन होने से महिलाओं के परिवार-अधिकारों में वृद्धि हुई और सामाजिक

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

अधिनियमों के प्रभाव से सामाजिक कुरीतियों का प्रभाव आंशिक हो गया। इन सब कारकों के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति मे काफी हद तक परिवर्तन आया।[५]

परम्परागत भारतीय समाज की बात की जाए तो हिन्दू एवं मुस्लिम महिलाओं की जीवनशैली अलग-अलग नहीं है। जातिगत स्त्रीकरण के कारण प्रत्येक जाति की भूमिका परिस्थिति अलग-अलग क्षेत्र में उसकी सहभागिता एक समान रही है। **हिन्दू एवं** मुस्लिम जीवन शैलियों का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो भारत में मुगल काल के प्रारम्भ होने पर स्त्रियों की स्थिति बदतर होने लगी। मुस्लिम महिला को एक चादर में लिपटी सोचा जाता है, जो कि पूर्णतः भ्रांतिपूर्ण और भ्रामक अवधारणा है। यद्यपि इस्लाम धर्म में मुस्लिम महिला के लिए परदे का प्रावधान है, लेकिन अधिकारों को प्रयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। महिला और पुरुष, दोनों से ही समाज का निर्माण हुआ संसार में सर्वप्रथम खुदा ने हजरत आदम साहब को पैदा किया, तभी से दुनिया की शुरुआत हुई। इस्लाम धर्म के अनुसार हम सभी उन्हीं का सन्तान है। "मुस्लिम समाज में महिला की दयनीय स्थिति का आरम्भ बहुत समय पूर्व हुआ था। इस्लाम से पहले औरतों के कोई हुकूक (अधिकार) नहीं थे। उनकी जान की कोई कीमत नही थी। पत्नियों की गिनती नहीं थी। इसलिए जो व्यक्ति जिस औरत को चाहता उसे अपने निकाह में ले लेता और उसके साथ वहीं व्यववहार करता जो जानवरों के साथ किया जाता है।"[६]

अल्पसंख्यक महिलाओं में मुस्लिम महिलाओं के आज भी अधिकारों में बदलाव नहीं हुआ है। आज भी उन्हें उनके अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाता है। उनमें आज भी उनमें पर्दा प्रथा लागू है। भारतीय समाज में मुस्लिम समाज में विशिष्ट श्रेणी के रूप में मुस्लिम महिलाओं को उनके धार्मिक मूल्यों परम्पराओं पर्दा व तलाक आदि की विशिष्टताओं के रूप में जान सकते हैं।"[७]

भारतीय समाज में मुस्लिम महिलाओं को यद्यपि आम महिलाओं से भिन्न करके नहीं देख सकते हैं। इस्लाम में कुरान शरीफ पुरुष और महिलाओं को समानता का दर्जा देता है और वह महिलाओं को धर्म के मार्ग पर बाधक नहीं मानता है। कुरान ने उसकी आयातों की विभिन्न व्याख्याओं ने उन्हें निम्न स्थान दे दिया। समय-समय पर मुस्लिम महिलाओं की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन होता रहा है। साथ ही सिद्धान्त और व्यवहार तथा आर्थिक स्थिति में बहुत सुधार पाया गया है। प्राचीन अरबी समाज में मुस्लिम महिलाओं की वैवाहिक परिवारिक एवं सम्पत्ति की दृष्टि से अनेक अधिकार प्राप्त थे। सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक दृष्टि से इनकी सामाजिक स्थिति काफी मजबूत थी। भारत में मुसलमानों के आगमन से महिलाओं की स्थिति में अनेक परिवर्तन आये जिससे महिलाओं के अधिकारों में रोक लगा दी गयी। जिस कारण महिलाएं घर के कामकाजों तक ही सीमित रह गई। मध्य युग में महिलाओं के अपहरण तथा यौन शोषण जैसे घटनाओं ने बाल विवाह एवं पर्दा प्रथा को बढ़ावा दिया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत में महिलाओं की स्थिति में कई सामाजिक एवं वैचारिक बदलाव आये हैं। मध य युगीन काल के निम्न स्तरीय जीवन की बात यदि छोड़ दी जाये तो कई सामाजिक सुधारों के परिणामस्वरूप महिलाओं के जीवन स्तर में अनेकों विचारणीय परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आज भी समाज में महिलाओं के प्रति सामाजिक तौर पर परम्परागत सोच में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। हिन्दू और मुस्लिम दोनों महिलाओं के परिवेश, भाषा तथा स्वतंत्रता सम्बन्धी अलग-अलग दृष्टिकोण होने के कारण दोनों के जीवन स्तर में तुलनात्मक रुप से अलग-अलग परिवर्तन दिखाई देते हैं, जिसका मुख्य कारण अलग धर्म रीति-रिवाज, परम्पराऐं तथा संस्कृति है।

अध्ययन का उद्देश्य- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य बागेश्वर नगर के हिन्दू एवं मुस्लिम महिलाओं की सामाजिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना हैं। प्रस्तुत अध्ययन इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हो जाता हैं कि इन दोनों अलग-अलग धर्मो की महिलाओं का जीवन स्तर कैसा है तथा एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न है।

शोध अभिकल्प- प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अन्वेषणात्मक है। अतः शोध हेतु इस अध्ययन में अन्वेषणात्मक एवं विवेचनात्मक शोध अभिकल्प का उपयोग किया गया है। अन्वेषणात्मक दृष्टिकोण से सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में हिन्दू तथा मुस्लिम महिलाओं के जीवन स्तर का अध्ययन करके उसकी एक समाजशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। अध्ययन समग्र एवं निदर्श दोनों पर आधारित है। अध्ययन बागेश्वर नगर के वार्ड न. ०६ घटबगड़, बाल्मीकि गोमती बस्ती बागेश्वर पर आधारित है। प्राथमिक सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि इस वार्ड में कुल २२६ महिलाएँ है, जिसमें २०२ हिन्दू महिलाएं तथा २७ मुस्लिम महिलाएं हैं। मुस्लिम महिलाओं कि संख्या कम होने के कारण अध्ययन हेतु इन्हें समग्र रुप में सम्मिलित किया गया। हिन्दू महिलाओं की संख्या अधिक होने से कारण इन्हें समग्र रुप में सम्मिलित नहीं किया गया। अतः दैव निदर्शन पद्धति का उपयोग कर निदर्श के रुप में १२.५

प्रतिशत का चयन किया गया। इस प्रकार अध्ययन में कुल ५२ (२७ मुस्लिम महिलाएँ और २५ हिन्दू महिलाएँ) महिलाओं को सम्मिलित किया गया है। अध्ययन मुख्य रुप से प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है तथा आँकड़े एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची तथा आवश्यकतानुसार असहभागी अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

उपलब्धियाँ- वर्तमान समय में पश्चिमीकरण आधुनिकीकरण शिक्षा, वैचारिक स्वतंत्रता तथा जाति गतिशीलता के कारण महिला परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। जहाँ एक ओर भारतीय समाज में हिन्दू महिलाओं को भिन्न परिपेक्ष्यों में अनेक स्वतंत्रता प्राप्त है वहीं अरबी समाज मे भी मुस्लिम महिलाओं की सामाजिक स्थिति सैद्धान्तिक एवं व्यवाहिक दृष्टिकोण से काफी मजबूत हो गई है। वर्तमान समय में दोनों धर्म की महिलाओं की स्थिति में काफी परिवर्तन दिखाई देते है। जैसे कि निम्न सारणी से स्पष्ट होती है-

सारणी संख्या १

समाज में महिलाओं की स्थिति

समाज में महिलाओं की स्थिति	सामान्य		अच्छी		निम्न		योग	
	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
हिन्दू	१५	६०	०५	२०	०६	२४	२५	१००
मुस्लिम	१५	५५.५	–	–	१२	४४	२७	१००
योग	३०	५७.६	०५	६.६	१८	३४.६	५२	१००

तुलनात्मक दृष्टिकोण से यदि देखा जाए तो हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म को मानने वाली दोनों महिलाओं की सामाजिक स्थिति सामान्य है, क्योंकि ६० प्रतिशत हिन्दू महिलाएँ तथा ५५ प्रतिशत मुस्लिम महिलाएँ इस तथ्य को स्वीकार करती हैं। सारणी में एक रोचक प्रवृत्ति यह परिलक्षित होती है कि मुस्लिम समाज की एक बड़े वर्ग की उत्तरदाताओं ने महिलाओं की निम्न स्थिति को भी स्वीकार किया है।

इसी निरन्तरता में यह जानना भी आवश्यक है कि विभिन्न सामाजिक क्रिया-कलापों के निर्वहन में महिलाओं की प्रमुख भूमिका एवं सहभागिता कितनी है। प्रस्तुत सारणी इसी तथ्यों को स्पष्ट करती है।

सारणी संख्या - २

सामाजिक स्तर में सदस्यों द्वारा विभिन्न क्रिया-कलापों का निर्वहन

सामाजिक स्तर में सदस्यों द्वारा क्रियाकलापों का निर्वहन	युवा सदस्य द्वारा		बुजुर्ग सदस्य द्वारा		स्वयं		योग	
	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
हिन्दू	०५	२०	०८	३२	१२	४८	२५	१००
मुस्लिम	०७	२५	२६	७०.३	०१	३.७	२७	१००
योग	१२	२३	२७	५१.६	१३	२५	५२	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि तुलनात्मक दृष्टिकोण से हिन्दू धर्म की (४८ प्रतिशत) उत्तरदाता सामाजिक क्रिया-कलापों का निर्वह्न स्वयं करती है, जबकि मुस्लिम समुदाय की ७०.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि सामाजिक स्तर में भिन्न क्रिया-कलापों का निर्वह्न उनके परिवार के बुजुर्ग सदस्यों द्वारा किया जाता है। अतः सारणी से स्पष्ट होता है कि मुस्लिम धर्म की महिलाओं पर हिन्दू धर्म की महिलाओं की अपेक्षा बुर्जुग सदस्यों का वर्चस्व अधिक है।

इसी निरन्तरता में यह जानना आवश्यक है कि महिलाओं को किसी भी स्थान में जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है या नहीं।

सारणी संख्या- ३
महिलाओं को विभिन्न स्थानों में जाने की पूर्ण स्वतंत्रता

स्वतंत्रता के संदर्भ में मत	हां		नहीं		कभी-कभी		योग	
	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
हिन्दू	१६	७६	०४	१६	०२	०८	२५	१००
मुस्लिम	१६	४५.२	११	२६.७	–	–	२७	१००
योग	३५	६४.५	१५	४०.०५	०२	५.४	५२	१००

तुलनात्मक दृष्टिकोण से यदि देखा जाए तो हिन्दू धर्म की ७६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया है कि उन्हें विभिन्न स्थानों में जाने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हैं, जबकि मुस्लिम समुदाय में ४३.२ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि उन्हें विभिन्न स्थानों में जाने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। सारणी में एक रोचक प्रवृत्ति यह परिलक्षित होती है कि मुस्लिम समाज के एक छोटे वर्ग को ही इस प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त है, जबकि ३६.७ प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस प्रकार की कोई स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। इसी निरन्तरता में यह जानना भी आवश्यक है कि अपने कर्त्तव्य तथा अधिकारों के विभाजन पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है या नहीं।

सारणी संख्या - ४
महिलाओं के कर्त्तव्य तथा अधिकारों का विभाजन

कर्त्तव्य तथा अधिकार	स्वयं के द्वारा		बुजुर्ग के द्वारा		कमाने वाले सदस्य द्वारा		पति के द्वारा		योग	
	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
हिन्दू	१२	४८	१३	५२	–	–	–	–	२५	१००
मुस्लिम	०७	२५.६	१८	६६.६	०१	३.७	०१	३.७	२७	१००
योग	१६	३.६५	३१	५६.६	०१	१.६	०१	१.६	५२	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म की ४८ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि वे स्वयं अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का विभाजन करती हैं, जबकि इसके विपरीत ६६.६ प्रतिशत मुस्लिम उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का विभाजन उनके परिवार के बुजुर्ग सदस्यों द्वारा किया जाता है। अतः सारणी से स्पष्ट होता है कि हिन्दू महिलाएं मुस्लिम महिलाओं की अपेक्षा एक स्वतंत्र पारिवारिक सामाजिक स्थिति को प्राप्त करती हैं। सामाजिक स्तर पर महिलाओं को पुरुषों के समान ही स्वतंत्रता प्राप्त है या नहीं इस तथ्य को निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है।

सारणी संख्या- ५
सामाजिक स्तर पर महिलाओं को पुरुष के समान स्वतंत्रता

महिलाओं को पुरुषों के समान स्वतंत्रता	हां		नहीं		योग	
	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
हिन्दू	२१	८४	०४	१६	२५	१००
मुस्लिम	२७	१००	–	–	२७	१००
योग	४६	८४.४	०४	७.६	५२	१००

सारणी से स्पष्ट होता है कि हिन्दू धर्म की ८४ प्रतिशत तथा मुस्लिम धर्म की शत प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सामाजिक स्तर पर महिलाओं को पुरुषों के समान, स्वतंत्रता प्राप्त होना स्वीकार किया है। सामाजिक स्तर पर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के अवसर प्राप्त हो, किन्तु व्यवहारिक रूप से अगर देखा जाए तो महिलाओं की समाज में निम्न स्थिति के कई कारण विद्यमान है। सारणी संख्या ६ इन्हीं कारणों को स्पष्ट करती है।

सारणी संख्या- ६
महिलाओं की समाज में निम्न स्थिति के कारण

निम्न स्थिति	अशिक्षा		बाल-विवाह		संयुक्त परिवार व्यवस्था		सभी		योग	
	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
हिन्दू	०३	१२	–	–	०२	८	२०	८०	२५	१००
मुस्लिम	२३	८५.१	–	–	०१	३७.७	०३	११.१	२७	१००
योग	२६	५२	–	–	०३	५७	२३	४४.२		१००

उपर्युक्त सारणी के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म की ८० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अशिक्षा, बाल विवाह तथा संयुक्त परिवार व्यवस्था को समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति के लिए उत्तरदायी माना है। इसके विपरीत ८४ प्रतिश मुस्लिम उत्तदाता ने अशिक्षा को इसका मुख्य कारण माना है।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विभिन्न सारणियों के आधार पर प्राप्त किये गये निष्कर्ष इस प्रकार है-

१. समाज में महिलाओं को सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में दोनों धर्मो की अधिकांश उत्तरदाताओं ने महिलाओं की सामान्य स्थिति को स्वीकार किया है। किन्तु एक प्रवृत्ति अध्ययन में यह पायी गयी कि मुस्लिम समाज के एक बड़े वर्ग ने महिलाओं को निम्न स्थिति (४४ प्रतिशत) को स्वीकार किया है।

२. सामाजिक स्तर में विभिन्न क्रिया-कलापों के निर्वहन के सन्दर्भ में जहां एक ओर हिन्दू धर्म की अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया है कि वे सामाजिक क्रिया-कलापों का निर्वहन का स्वयं करती हैं वहीं दूसरी ओर मुस्लिम धर्म की सर्वाधिक उत्तरदाताओं के परिवार को बुजुर्ग सदस्यों द्वारा ही इस प्रकार के सामाजिक क्रिया-कलापों का निवर्हन किया जाता है। अतः अध्ययन में यह स्पष्ट होता है की हिन्दू धर्म की महिलाएँ मुस्लिम धर्म की महिलाओं से सामाजिक स्तर पर अधिक स्वतंत्रता पूर्वक अपना जीवन निर्वहन करती हैं।

३. विभिन्न स्थानों में जाने की पूर्ण स्वतंत्रता के सन्दर्भ में हिन्दू धर्म की अधिकांश महिलाओं ने यह स्वीकार किया है कि उन्हें विभिन्न स्थानों में जाने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। अध्ययन में एक रोचक प्रवृत्ति यह परिलक्षित होती है कि मुस्लिम समाज के छोटे से वर्ग को ही इस प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त है, जबकि ३६.७ प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस प्रकार की कोई स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है।

४. कर्त्तव्य तथा अधिकारों को विभाजन के सन्दर्भ में हिन्दू धर्म की अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया है कि वे स्वयं अपने कर्त्तव्य तथा अधिकारों को विभाजन करती है, वहीं दूसरी ओर मुस्लिम धर्म कि सार्वाधिक उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि कत्तव्यों तथा अधिकारों का विभाजन उनके परिवार के बुजुर्ग सदस्यों द्वारा किया जाता है। अतः अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हिन्दू महिलाएं मुस्लिम महिलाओं की अपेक्षा एक स्वतंत्र पारिवारिक सामाजिक स्थिति को प्राप्त करती हैं।

५. सामाजिक स्तर पर महिलाओं को पुरुषों से समान स्वतंत्रता प्राप्त होने के सन्दर्भ में हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों ही धर्मो की अधिकांश महिलाओं को पुरुषों के समान ही स्वतंत्रता प्राप्त होना स्वीकार किया है।

६. महिलाओं की समाज में निम्न स्थिति के कारण के सन्दर्भ में हिन्दू धर्म की महिलाओं ने अशिक्षा, बाल विवाह तथा संयुक्त परिवार व्यवस्था को समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति का कारण माना है, दूसरी ओर मुस्लिम समुदाय की महिलाओं ने अशिक्षा को इसका प्रमुख कारण माना है।

संदर्भ

१. छापड़िया, मनोज, 'स्त्री शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता', सीरियल्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००८, पृ० ६३-३४
२. मजूमदार, रमेश चन्द्र, 'प्राचीन भारत', अनुवाद परमेश्वरी लाल गुप्त, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, १६३५, पृ० ३०
३. छापड़िया, मनोज, पूर्वोक्त, पृ० ८५
४. बोरा, आशा रानी, 'महिलाएं और स्वराज्य', सूचना व प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, १६८८ पृ० ६४
५. छापड़िया मनोज, पूर्वोक्त, पृ० १०८
६. आजमी अब्दुल मुस्तफा, 'जन्नती जेवर जियाउल कुरान', लाहौर, १६७६, पृ. ११६
७. छापड़िया, मनोज, पूर्वोक्त, पृ० ६५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजनाः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ राकेश कुमार तिवारी

भारत सरकार ने सन् १९९९ स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार सृजन कर ग्रामीण निर्धनों में स्वावलम्बन द्वारा आर्थिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित कर सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से सशक्त बनानें की योजना बनायी एवं क्रियान्वित की। सन् १९९२ के बाद स्वयं सहायता समूहों के विकास एवं विस्तार में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। भारत सरकार ने अपनी तत्कालीन योजनाऐं जो एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत आती थी यथा ट्राइसेम, ड्वाकरा, गंगा कल्याण योजना को, पिछले अनुभवों एवं विसंगतियों को दूर करते हुए स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना में शामिल कर दिया और एकीकृत ग्राम्य विकास योजना के लाभार्थी शब्द को "स्वरोजगार" नाम दिया। प्रस्तुत शोध के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना किस प्रकार स्वयं सहायता समूहों के स्वरोजगारियों के सामाजिक-सांस्कृतिक समाजीकरण में योगदान करती है।

भारत का ग्रामीण जीवन एवं सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवेश स्वतंत्रता के पश्चात के लगभग सात दशकों में व्यापक परिवर्तन के दौर से गुजरा है। भारत सरकार ने अपने अनेक अभिकरणों के द्वारा नियोजित परिवर्तन को प्रगति एवं विकास की एक निश्चित दिशा देने का भरपूर प्रयास किया है जिसके माध्यम से ग्रामीण जन-जीवन को भौतिक अभावों एवं दृष्टिकोणगत रूढ़िवादिता से मुक्ति प्रदान की जा सके। वर्तमान समय में भारत की जनंसख्या लगभग १२१ करोड़ है जिसमें ८३.३७ करोड़ जनसंख्या गाँवों में रहती है। इस प्रकार गाँवो की अर्थव्यवस्था पर व्यापक दबाव है। भारत में ग्रामीण जीवन के महत्व का ऑकलन इस बात से किया जा सकता है कि गाँव को गाँधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन की विचारधारा में समाहित करते हुए ग्राम स्वराज का नारा दिया। अर्थव्यवस्था के ग्रामीण चरित्र एवं ग्रामीण जीवन के पुनरूद्धार के लिए महात्मा गाँधी जी ने जोर देते हुए 'हरिजन' पत्रिका में ४ अप्रैल १९३६ को लिखा था, "भारत की पहचान इसके कुछ शहरो में न होते हुए इसके सात लाख गाँवों में है लेकिन हम कस्बों एवं शहरों में रहने वाले लोगों का मानना है कि भारत कस्बों एवं शहरों में रहता है तथा गांवों को हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाया गया है। हमनें तनिक यह ठहर कर जानने का प्रयास नहीं किया कि क्या इन गरीब ग्रामीणों के पास खाने के लिए पर्याप्त भोजन एवं पहननें को पर्याप्त कपड़े हैं, तथा क्या उनके पास धूप एवं बारिश से बचनें के लिए उनकी अपनी छत है?"[1] भारत के कृषि प्रधान स्वरूप की चर्चा करते हुए ए०आर० देसाई ने लिखा है, 'जो लोग सृजनात्मक व सामाजिक परिवर्तन के हेतु प्रयत्न करने के इच्छुक हैं उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत वर्ष प्रबल रूप से कृषि प्रधान देश है। यहाँ की तीन चौथाई जनता कृषि कार्य में लगी हुई है और यहाँ की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था जो इस विशाल जनसमूह के जीवन का भौतिक आधार है, उनके सामाजिक संगठन को (संस्थात्मक व्यूह जिसमें कि समस्त प्रक्रियाएं प्रवाहित होती हैं) निश्चित करती हैं तथा उनके मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक जीवन का निर्माण करती हैं। अतः ग्रामीण समाज के पुर्नगठन के विशेष कार्यक्रम को उच्च आर्थिक तथा सांस्कृतिक आधार पर परिवर्तन की किसी भी योजना में निर्णयात्मक भूमिका अदा करना चाहिए।"[2]

हम कह सकते हैं, "विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो ग्रामीण व्यक्तियों विशेषकर गरीबों के सतत् उन्नयन की ओर प्रशस्त होती है"[3] ग्रामीण विकास एक व्यापक कार्यक्रम है, जिसमें कृषि विकास, आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति के आधार की तैयारी, भूमिहीनों के लिए उचित पारिश्रमिक, मकान तथा मकान बनाने के लिए भूमि, नियोजन, जन स्वास्थ्य, शिक्षा, साक्षरता तथा संचार आदि शामिल है। इसके दो महत्वपूर्ण पहलू है- विभिन्न क्षेत्रों में परस्पर निकट समन्वय द्वारा आर्थिक विकास तथा ग्रामीण गरीबों का उत्थान। इन कार्यक्रमों में विशेष बल कमजोर वर्गो को दिया गया है जिसका उद्देश्य केवल विकास के लिए प्रोत्साहन ही नहीं वल्कि गतिविधियों को सुनियोजित व्यवस्था से जोड़ना भी है।"[4]

भारत सरकार ने सन् १९९९ स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार सृजन कर ग्रामीण निर्धनों में स्वावलम्बन द्वारा

❑ शोध अध्येता समाजशास्त्र, डी.डी.यू., गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)

आर्थिक सशक्तीकरण की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित कर सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से सशक्त बनानें की योजना बनायी एवं क्रियान्वित की। भारत में स्वयं सहायता समूहों का विकास एक प्रक्रिया है। सन् १६६२ के बाद स्वयं सहायता समूहों के विस्तार में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। भारत सरकार ने अपनी तत्कालीन योजनाऐं जो एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत आती थीं यथा ट्राइसेम, ड्वाकरा, गंगा कल्याण योजना को, पिछले अनुभवों एवं विसंगतियों को दूर करते हुए स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना में शामिल कर दिया और एकीकृत ग्राम्य विकास योजना के लाभार्थी शब्द को ''स्वरोजगार'' नाम दिया।

ऐसे सन्दर्भित अध्ययनों की समीक्षाएं की गयी है जो इस अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है। फ्रैन्सिस सिन्हा एवं अन्य[५] ने अपने एक अध्ययन ''माइक्रो फाइनैन्स सेल्फ-हेल्प ग्रुप्स इन इंडिया-लिविंग अप टू देयर प्रामिस'' में बताया कि हमें स्वयं सहायता समूहों से बहुत बढ़चढ़कर उम्मीद नहीं करनी चाहिए और इस बात पर बहुत जोर नहीं देना चाहिए कि समूह कितने निर्मित किये गये या अधिक से अधिक कितने निर्मित कर दिये जायें। हमारा जोर उनकी गुणवत्ता एवं प्रदर्शन पर अधिक होना चाहिए, हमें समूहों एवं स्वरोजगारियों की और व्यवस्थित एवं रणनीतिक सहायता प्रदान करनी चाहिए। इसके अनेक उपागमों की पहचान करनी चाहिए विशेष कर निर्धन महिलाओं की सहायता के लिए क्योंकि उनको और अधिक सहयोग की आवश्यकता है। उन्होंने बताया कि स्वयं सहायता समूह आर्थिक सशक्तीकरण का एक बड़ा साधन हैं।

माइराडा[६] ने अपने दक्षिण भारतीय राज्यों में किये एक अध्ययन में बताया कि समूह के स्वरोजगारियों की आर्थिक स्थिति बेहतर हुई है। वे अपने परिवार में अपनी हिस्सेदारी निभा रही है। साथ ही साथ लोगों एवं संस्थाओं से संवाद करने में उनका आत्मविश्वास बढ़ा है। परिवार के सदस्यों पर भी उनके नियंत्रण में वृद्धि हुई है। लेकिन इनका मानना है कि कुछ कमियां भी हैं जैसे जन-संचार एवं सूचना-संचार जैसे आधुनिक साधनों तक इनकी पहुँच कम है। ज्यादा मात्रा में ऐसे स्वरोजगारी हैं जो समाचार पत्र तक नही पढ़ सकते। साथ ही स्वयं सहायता के रूप में विकसित करने की बजाय बचत एवं ऋण पर ज्यादा केन्द्रित हैं। लेकिन उनका कहना है कि स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से सदस्यों की सामाजिक एवं राजनीतिक भागीदारी बढ़ी है।

उत्तर प्रदेश में स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना सिद्धान्त एवं कार्य योजना : इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन की दिशा में सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया के माध्यम से निचले स्तर (ग्रास रूट लेवल) पर निर्धन लोगों को संगठित करने पर बल दिया गया है। यह अवधारणा इस तथ्य पर बल देती है कि निर्धन लोगों में स्वयं सहायता करने की असीमित क्षमता है और उनको संगठित करके उनकी क्षमता में वृद्धि की जा सकती है तथा यह संगठन (स्वयं सहायता समूह) ग्रामीण गरीबों को सामर्थ्य प्रदान करता है, जिसमें वे पूर्णतया और सीधे भाग लेते हुए गरीबी उन्मूलन संबंधी मुद्दों पर निर्णय ले सकें।

स्वयं सहायता समूह ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले चिन्हित परिवारों के लोगों का एक समूह है, जिनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति एक जैसी है। ये लोग अपनी इच्छा से एक समूह में संगठित होकर नियमित रूप से १० या २० रू० या इससे अधिक बचत करके समूह के जरूरतमंद सदस्यों को ऋण का लेन-देन करते हैं।

अशिक्षा, कुपोषण एवं सामाजिक आर्थिक समस्याओं से निपटनें के लिए निर्धन लोगों के पास एक ही पूँजी होती है वह है उनका श्रम। आर्थिक रूप से सुदृढ़ करने हेतु उन्हें योजना अन्तर्गत आर्थिक सहायता के तौर पर आय-सृजन गतिविधियों हेतु रिवाल्विंग फंड बैंक ऋण एवं अनुदान उपलब्ध कराया जाता है ताकि आच्छादित समुदाय के पात्र लोग अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु स्वयं संगठित रूप से सक्षम हो सकें।

शोध अभिकल्प : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत कार्यरत 'स्वयं सहायता समूहों' का महिला सशक्तीकरण पर पड़ने वाले प्रभाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना है। अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। अध्ययन क्षेत्र में उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के चरगावाँ विकास खण्ड के कुल ४२ ग्राम पंचायतों में से उन ३४ ग्राम पंचायतों का चयन किया गया जहाँ पर स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से स्वरोजगार की गतिविधियां चल रही हैं। यहाँ विकास खण्ड में कुल ३२१ स्वयं सहायता समूहों में १८० समूह महिलाओं के हैं जिनमें १०२ समूहों' को निर्मित हुए पाँच वर्ष से अधिक हो गया और द्वितीय ग्रेड का सहयोग भी प्राप्त हो चुका है। इनमें कुल ११३६ स्वरोजगारी है जिनमें से २८० स्वरोजगारी महिलाओं से उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रविधि का उपयोग करते हुए साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सूचनाएं प्राप्त की गयी। ये सूचनादात्री बी०पी०एल० सूची में दर्ज हैं। अध्ययन के माध्यम से यह जाननें का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत कार्यरत स्वयं सहायता समूह के स्वरोजगारियों का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक सशक्तीकरण

हो रहा है।

महिला सशक्तिकरण का उपागम : महिला सशक्तीकरण के अन्तर्गत हम शक्ति सम्बन्धों में रूपान्तरण की प्रक्रिया को छः भिन्न-भिन्न स्तरो पर देख सकते हैं-व्यक्ति के रूप में, परिवार के स्तर पर, समूह में, ग्रामीण संगठनों में, समुदाय एवं समाज में। एकीकृत विकास उपागम के अन्तर्गत प्रबलीकरण के तीन पक्ष हैं-प्रथम उनके जीवन एवं जीविका संबंधी आवश्यकताओं पर प्रकाश डालता है, द्वितीय उनकी आर्थिक स्थित पर और तीसरा उनके जागरूकता के पक्ष पर जिसके माध्यम से वे सामाजिक रूप से किये जा रहे दमन के विरूद्ध संगठित होती हैं। स्त्री प्रबलीकरण का बाजारवादी उपागम महिलाओं को एक उद्यमी के रूप में विकसित होने में सहयोग करता है जिससे उनकी आय में वृद्धि हो सके और साथ ही साथ अपने उत्पादों के विक्रय के लिए अथवा किसी उत्पाद के क्रय के लिए उनमें सौदेबाजी की क्षमता का विकास हो सके। सशक्तीकरण के आर्थिक उपागम के अन्तर्गत उनकों परिवार के बाहर के तमाम व्यक्तियों एवं संस्थाओं से अन्तः क्रिया करनी पड़ती है जिससे उनमें स्वंतत्रता की अनूभूति होती है और उनमें निर्णय लेने की क्षमता को विकास होता है।

महिला सशक्तीकरण के विविध आयाम : महिला सशक्तीकरण के पांच प्रमुख आयाम है जैसे- सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक।

१.सामाजिक सशक्तीकरण : एक स्त्री को सामाजिक रूप से उस दशा में मजबूत कहा जायेगा जब वे सामाजिक गतिविधियों में मुक्त रूप से बिना किसी संस्थागत बाधा के भागीदार हो सकें।

२.सांस्कृतिक सशक्तीकरण : सांस्कृतिक सशक्तीकरण का तात्पर्य है लिंग पर आधारित सांस्कृतिक तत्वों या संस्थागत नियमों को पुर्नपरिभाषित करना और उनको सांस्कृतिक व्यवहार का अंग बनाना।

३.आर्थिक सशक्तीकरण : एक महिला को उस दशा में आर्थिक रूप से सशक्त कहा जायेगा जब आर्थिक संसाधनों तक उसकी पहुँच और उसमें उसकी भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हो। वह आर्थिक रूप से सुरक्षित हो। आय एवं कार्य कौशल में वृद्धि, वित्तीय संसाधनों तक पहुंच, धन एवं अन्य आर्थिक संसाधनों के बारे में निर्णय लेने की स्वतंत्रता एवं क्षमता आर्थिक सशक्तीकरण के प्रमुख संकेतक हैं।

४.राजनीतिक सशक्तीकरण : राजनीतिक सशक्तीकरण का तात्पर्य है वह राजनीतिक रूप से मिले अधिकारों का उपयोग करने एवं कर्तव्यों का निर्वहन करने में सक्षम हो। राजनीतिक रूप से महिलायें तभी प्रबल मानी जायेंगी जब उनमें राजनीतिक जागरूकता हो, स्थानीय राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी हो जैसे पंचायती राज या किसी राजनीतिक दल की सदस्य हो अथवा उनमें उनकी कोई प्रस्थिति एवं भूमिका हो।

५.मनोवैज्ञानिक सशक्तीकरण : मनोवैज्ञानिक सशक्तीकरण का तात्पर्य है वे अपनी सामाजिक अस्मिता को स्थापित करने के प्रति सजग एवं सक्रिय हो, उनमें आत्म निर्भरता तथा आत्म गौरव के बोध के साथ अपनी क्षमता का विकास करने के प्रति ललक हो और इसका अवसर प्राप्त हो।

इसके अतिरिक्त स्त्री का वैयक्तिक एवं पारिवारिक सशक्तीकरण एक महत्वपूर्ण पक्ष है। **वैयक्तिक सशक्तीकरण** उसके आत्मनिर्भरता एवं आत्मशक्ति के बोध से आता है। आत्म शक्ति का बोध आर्थिक स्वतंत्रता, काम करने की स्वतंत्रता, निर्णय लेने की क्षमता एवं भागीदारी, लिंग-समानता, शिक्षा एवं स्वास्थ्य में सुधार के प्राप्त होने के बाद अनुभव करती हैं।

पारिवारिक सशक्तीकरण का बोध उसे तब होता है जब उसमें अपने परिवार के सदस्यों के कल्याण हेतु निर्णय लेने की क्षमता, योग्यता एवं अधिकार प्राप्त होता है। उसके माध्यम से परिवार की आय में वृद्धि होती है, पति से सहयोग प्राप्त होता है, पारिवारिक सम्बन्ध बेहतर बनें रहते हैं, बच्चों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य के साथ आधारभूत सुविधाओं तक उसकी पहुंच होती है।

प्रस्तुत अध्ययन में महिला सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका की पड़ताल बहुत व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में न करके इसको स्वयं सहायता समूहों में उनकी भागीदारी के स्तर पर की गयी है। इसके अन्तर्गत सशक्तीकरण के निम्न पक्षों का विवेचन किया गया है।

१.सामाजिक सशक्तिकरण : कोई भी स्त्री अपने आप को सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से उस समय सशक्त अनुभव करती है जब बिना किसी लिंग भेद के सामूहिक सांस्कृतिक गतिविधियों में भागीदार बन सके। शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं तक उसकी पहुंच हो। उसमें सामाजिक जागरूकता एवं सामाजिक गतिशीलता हो। अपने विरूद्ध होने वाले किसी भी प्रकार के अत्याचार, भेद-भाव, हिंसा चाहे वो परिवार के अन्दर हो या बाहर, प्रतिकार कर सकें। अपनी प्रतिभा एवं क्षमता के विकास के लिये स्वतंत्र रूप से विकल्पों का चुनाव कर सकें। ग्रामीण समाज में अपने जीवन के बारे में निर्णय कर पाने की स्वतंत्रता बहुत कम महिलाओं को ही प्राप्त हो पाती है क्योंकि वहाँ आज भी पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था है। ग्रामीण अंचल की महिलाएँ आज भी कहीं आने जाने के लिये स्वतंत्र नहीं हैं। देश दुनिया के बारे में सूचनाएं आज भी उन्हें प्रत्यक्ष रूप से नहीं

अपितु परिवार के सदस्यों के माध्यम से प्राप्त होती हैं। बाहर के लोगों से अन्तःक्रिया करने और विचार विमर्श करने का अवसर उन्हें नहीं प्राप्त हो पाता जिसके कारण उनके व्यक्तित्व के कई आयाम कुंठित एवं दमित हो जाते हैं। सामाजिक सशक्तीकरण के इन तमाम संकेतकों के आलोक में स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों के सशक्तीकरण की पहचान की गयी है।

तालिका संख्या-१

समाचार पत्र पत्रिकाएं पढ़ना

गतिविधि	समाचार पत्र-पत्रिकाएं पढ़ना		रेडियो सुनना		टी०वी० देखना	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ, कभी-कभी	३०	१०.७१	४८	१७.१४	४६	१६.४२
हाँ, नियमित	१७	६.०७	१२	४.२६	२१	७.५०
कभी नहीं	२३३	८३.२२	२२०	७८.५७	२१३	७६.०७
योग	२८०	१००.००	२८०	१००.००	२८०	१००.००

तालिका संख्या-१ से स्पष्ट है कि बड़ी संख्या में उत्तरदात्री महिलाएं समाचार पत्र नहीं पढ़ सकती। १०.७१ प्रतिशत महिलाएं कभी-कभी समाचार पत्र पड़ती हैं, ६.०७ प्रतिशत नियमित और ८३.२२ प्रतिशत कभी नहीं। कुछ ऐसा ही प्रतिबिम्ब रेडियो सुनने को लेकर है। १७.१४ प्रतिशत महिलाएं कभी-कभी रेडियो सुनती हैं, ४.२६ प्रतिशत नियमित तथा ७८.५७ प्रतिशत कभी नहीं। १६.४२ प्रतिशत महिलाएं कभी-कभी टी०वी० देखती हैं, ७.५० प्रतिशत नियमित एवं ७६.०७ प्रतिशत महिलाएं कभी नहीं।

तथ्यों का सूक्ष्म विश्लेषण करें तो कारण स्पष्ट रूप से समझ में आता है गाँव में ज्यादातर महिलाएँ निरक्षर हैं और मुश्किल से लिख-पढ़ सकती हैं। अतः समाचार पत्र के माध्यम से सूचना प्राप्त करनें वालो की गतिविधिया सीमित है। वैसे भी गाँव में समाचार पत्र मुश्किल से ही उपलब्ध हो पाता है। पुराने समय में जब टेलीविजन इतना प्रचलित नहीं था तो लोगों के लिये रेडियो सूचना एवं मनोरंजन का एक प्रमुख श्रोत था। टेलीविजन के आ जाने के बाद रेडियो का प्रचलन धीरे धीरे कम हो गया है। इसलिए नियमित रूप से रेडियो सुनने वाले लोगों की संख्या मात्र १२ प्रतिशत है १७.१४ प्रतिशत कभी-कभी रेडियों सुनते हैं। टेलीविजन देखने वाले लोगों की संख्या तुलनात्मक रूप से बेहतर हैं ७.५० प्रतिशत लोग नियमित रूप से टी० वी० देखती है और १६.४२ प्रतिशत कभी-कभी। यदि हम आर्थिक आय वर्ग को देखे तो लगभग २८ प्रतिशत लोग प्रतिमाह ३००० से ऊपर प्रतिमाह आय प्राप्त करते है अतः वो टी० वी० खरीद सकते हैं।

तालिका संख्या-२

समूह के सदस्यों की गतिशीलता

समूह के सदस्यों की गतिशीलता	अपने गांव से दूसरे गांव तक की यात्रा		अपनें गांव से पास के कस्बे तक की यात्रा		गांव से शहर तक की यात्रा अकेले करने वाले	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
प्रायः अकेले	१४०	५०	११६	४२.५०	८७	३१.०७
प्रायः समूह के सदस्यों के साथ	५१	१८.२१	६३	२२.५०	७६	२७.१४
हर बार समूह के सदस्यों के साथ	८६	३१.७६	६८	३५.००	११७	४१.७६
योग	२८०	१००	२८०	१००	२८०	१००

आवागमन या गतिशीलता सामाजिक सशक्तीकरण का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। पितृसत्तात्मक परम्परागत समाज में स्त्रियों का घर से बाहर निकलना मुश्किल था। ग्रामीण क्षेत्र में हो रहे संघात के कारण इस स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया है। तालिका संख्या-२ के आकड़ों के अनुसार ५० प्रतिशत स्वरोजगारी महिलाएँ अपने गाँव से दूर गाँव तक आ जा सकती हैं, १८.२१ प्रतिशत प्रायः समूह के सदस्यों के साथ तथा ३१.७६ प्रतिशत हर बार समूह के सदस्यों के साथ यात्रा करती हैं। पास के कस्बे तक अकेले यात्रा करने वाले ४२.५० प्रतिशत स्वरोजगारी महिलाएँ हैं, २२.५० प्रतिशत प्रायः

समूह के सदस्यों के साथ, ३५ प्रतिशत हर बार समूह के सदस्यों के साथ यात्रा करती हैं। गाँव से शहर तक अकेले यात्रा करने वाली महिलाओं का प्रतिशत ३१.०७ प्रतिशत हैं, २७.१४ प्रतिशत प्रायः समूह के सदस्यों के साथ, ४१.७६ प्रतिशत हर बार समूह के सदस्यों के साथ।

व्यक्ति की गतिशीलता उसके व्यवसाय के स्वरूप पारिवारिक परिवेश उम्र एवं शिक्षा पर विशेष रूप से निर्भर करती है। तालिका संख्या २ के अनुसार लगभग ६२ प्रतिशत लोग दोना-पत्ता, अंडा, फेरी, चाय मिठाई, कबाडी, श्रृंगार, सैलून एवं सब्जी आदि के व्यवसाय में लगे हैं। अतः इनका आवागमन अनिवार्य है दोना-पत्ता के कार्य में लगी महिलायें समूह में शामिल होने से पहले से ही भ्रमण करती रहती हैं क्योंकि दोना-पत्ता इकट्ठा करने के लिए उनको जंगल में जाना पड़ता है। अतः उनकी गतिशीलता समूह में आने की वजह से नहीं बढ़ी है साथ ही सब्जी एवं फेरी के व्यवसाय में लगी महिलाएं भी कस्बे तक पहले से ही जाती रही हैं।

परिवार के अन्य सदस्यो की अनुक्रिया अकेले यात्रा करने पर

तालिका संख्या-३
समूह के सदस्यों की गतिशीलता

परिवार के अन्य सदस्यो की अनुक्रिया अकेले यात्रा करने पर (अनुमति)	अपने गांव से दूसरे गांव तक जाने पर		अपनें गांव से पास के कस्बे तक जाने पर		गांव से पास के शहर तक जाने पर	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ, कभी कभी	७३	२६.०७	८७	३१.०७	७४	२६.४२
हाँ, हमेंशा	१०६	३८.६३	११७	४१.७६	१३८	४६.२६
कभी नहीं	९८	३५.००	७६	२७.१४	६६	२४.२६
योग	२८०	१००.००	२८०	१००.००	२८०	१००.००

तालिका संख्या-३ के अनुसार अपने गाँव से पास के गाँव तक यात्रा करने वाली महिलाओं में ३५ प्रतिशत महिलाएं बिना पूछे आ जा सकती हैं पर पास के कस्बे तक बिना अनुमति के जाने वालों की संख्या बढ़ कर २७.१४ प्रतिशत और पास के शहर तक जाने वालों की संख्या २४.२६ प्रतिशत हो जाती है। पास के गाँव, कस्बे एवं शहर तक कभी-कभी पूछ कर जाने वालों का प्रतिशत क्रमशः २६.२७ प्रतिशत, ३१.०७ प्रतिशत और २६.४२ प्रतिशत है। इसी क्रम में हमेशा अनुमति लेकर जाने वाली महिलाओं का प्रतिशत ३८.६३ प्रतिशत, ४१.७६ प्रतिशत और ४६.२६ प्रतिशत है। २७.१४ प्रतिशत स्वरोजगारी महिलायें पास के गाँव तक बिना किसी अनुमति के आ जा सकती है लेकिन शहर तक आते यह संख्या मामूली गिरावट के साथ २४.२६ प्रतिशत हो जाती है। वास्तव में इन लोगों मे वे महिलाएँ शामिल हैं जो दोना-पत्ता, कबाड़ी या श्रृंगार जैसे व्यवसायों से जुडी हैं, इनमें ज्यादातर वे महिलाएँ शामिल है जो या तो विधवा है या जिनकी आयु अधिक है।

इस समूह वर्ग की अधिकतर महिलाएँ अपने घर की मालकिन हैं अथवा पति के किसी ऐसे कारोबार में न होने के कारण जिससे उनके परिवार का ठीक से भरण-पोषण हो सकें वही परिवार चलाती हैं अथवा घर के संचालन में उनकी वित्तीय भागीदारी ज्यादा है। वे महिलाएँ भी इसी वर्ग में आती है जिनका पति बाहर नौकरी करता है और घर पर कोई और जिम्मेदार पुरूष सदस्य नहीं है। वे महिलाएँ जो कभी-कभी पूछ कर जाती हैं उनमें ज्यादातर का कहना था कि वे बताकर जाती हैं ताकि घर वालों को परेशानी न हो कि कहाँ गयी है।

सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि समूह में सक्रिय होने के ३ वर्ष बाद भी अर्थात आर्थिक रूप से पहले से बेहतर स्थिति में होने के बाद भी पास के गाँव तक जाना हो तो ३८.६३ प्रतिशत महिलाओं को हमेशा पूछना पड़ता है। यह ऑकड़ा पास के कस्बे तक बढ़कर ४१.७६ प्रतिशत और शहर तक ४६.२६ प्रतिशत हो जाता है अर्थात लगभग ५० प्रतिशत स्वरोजगारी आर्थिक सशक्तीकरण की प्रक्रिया से जुड़ने के बाद भी पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे के पुरूष वर्चस्व की शिकार हैं फिर भी धीमी शुरूआत ही सही लेकिन इस योजना से जुड़ने के बाद लोगों के जीवन में उल्लेखनीय बदलाव आया है।

व्यक्ति के विकास में उसे पारिवारिक सम्बन्धों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार के वातावरण का व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर गहरा और स्थाई प्रभाव पड़ता है। परिवार के सदस्य यदि जागरूक और सहयोगी हैं तो व्यक्ति की इच्छाओं का सम्मान करते हुये अपने जीवन के लक्ष्य को चुनने का अवसर प्रदान करते हैं। यह जानने के लिए स्वयं सहायता समूह से आर्थिक सशक्तीकरण की प्रक्रिया में भागीदार बनने के लिए

किसने सबसे अधिक सहयोग किया, निम्न प्रत्युत्तर प्राप्त हुआ।

तालिका संख्या-४

सदस्य जिसने समूह में भागीदारी में मद्द की

सदस्य का नाम	आवृत्ति	प्रतिशत
पिता	०	०
माता	०	०
पति	१७३	६१.७६
बहन	०	०
कोई नहीं मेरा स्वयं का निर्णय	८४	३०
अन्य	२३	८.२१

तालिका संख्या -४ में वर्णित तथ्यों का विवेचन करने पर पता चलता है कि ६१.७६ प्रतिशत महिलाओं को उनके समूह में शामिल होकर आर्थिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने में उनके पति ने सहयोग किया जबकि ३० प्रतिशत स्वरोजगारियों का मानना है कि यह उनका स्वयं का निर्णय था और उन्होने सबकुछ अपने दम पर किया मात्र ८.२१ प्रतिशत महिलाएं हैं जिनकी अन्य लोगों ने मद्द की जैसे सास, ससुर, देवर आदि। स्पष्ट है कि समूह की गतिविधियों के कारण पति-पत्नी के बीच आर्थिक सहयोग बढ़ा है जो सशक्तीकरण की तरफ एक महत्वपूर्ण कदम है।

आर्थिक सशक्तिकरण जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सामना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यक्ति के आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। वह दूसरों के साथ न केवल सहयोग कर सकता है अपितु रोजमर्रा के जीवन से लेकर जीवन के अन्य महत्वपूर्ण फैसलों यथा बच्चों की शिक्षा या घरेलू वस्तुओं की खरीदारी जैसी चीजो में उनका निर्णय महत्वपूर्ण हो जाता है। पारिवारिक स्तर पर उनके सम्मान में वृद्धि होती है।

तालिका संख्या-५

स्वयं सहायता समूह में शामिल होने से पूर्व एवं पश्चात आत्मविश्वास की स्थिति

सामाजिक पक्ष	समूह में शामिल होने से पूर्व (हॉ/नहीं)				समूह में शामिल होने से पश्चात(हॉ/नहीं)			
	सं०	प्रति०	सं०	प्रति०	सं०	प्रति०	सं०	प्रति०
किसी समस्या का सामना करने के लिए आत्मविश्वास	५०	२०.७१	२२०	७६.२६	२१८	७७.८६	६२	२२.१४
किसी आर्थिक संकट का सामना करने का विश्वास	६८	२४.२६	२१२	७५.७१	२३१	८२.८५	४६	१७.५०
भवन निर्माण, बच्चों की शिक्षा एवं घरेलू वस्तुओं को खरीदनें के निर्णय स्वयं लेते हैं	१०३	३६.७६	१७७	६३.२१	१८३	६५.३६	६७	३४.६४
परिवार के लोग आपके साथ सम्मानजनक व्यवहार करते हैं	१४८	५२.८५	१३२	४७.१४	१७३	६१.७६	१७	३८.२१

तालिका संख्या-५ के क्रम संख्या-१ में स्वरोजगारियों से जब पूछा गया कि क्या उनमें परिवार में आई किसी समस्या का सामना करनें का आत्म विश्वास है। समूह में शामिल होने के पूर्व ७६.२६ प्रतिशत स्वरोजगारी ऐसी थीं जिनमें किसी संकट का सामना करने का साहस नहीं था लेकिन सामूहिक गतिविधियों में भागीदारी के पश्चात ७७.८३ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि उनमें परिवार में आये किसी संकट का सामना करनें का आत्मविश्वास है। समूह में शामिल होने के पूर्व २०.७१ प्रतिशत स्वरोजगारी ऐसी थीं जिनमें संकटो का सामना करनें का आत्मविश्वास नहीं था। समूह में भागीदारी के पश्चात १ प्रतिशत से कुछ ज्यादा २२.१४ प्रतिशत स्वरोजगारियों में आत्मविश्वास की कमी हैं। इसका कारण व्यवसाय में असफलता प्रतीत होता है।

तालिका के क्रम संख्या-२ में आर्थिक स्थितियों में आये परिवर्तन का लक्षण स्पष्ट दिखायी पड़ रहा है। समूह में शामिल होने से पूर्व मात्र २४.२६ प्रतिशत परिवार में किसी आर्थिक संकट में सहयोग कर सकती थी लेकिन स्वयं सहायता समूह के माध्यम से आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने के पश्चात यह बढ़कर ८२.५० प्रतिशत हो गया।

आर्थिक सशक्तीकरण एवं सामूहिक गतिविधियों में भागीदारी व्यक्ति के भीतर आत्मविश्वास पैदा करती है और उसके व्यक्तित्व के इस पक्ष का प्रभाव दूसरों पर भी दिखायी पड़ता है। तालिका के क्रम संख्या तीन में जब स्वरोजगारी महिलाओं से पूछा गया कि क्या वे अपने परिवार में भवन निर्माण या बच्चों की शिक्षा अथवा घरेलू वस्तुओं की खरीदारी में स्वयं निर्णण लेती हैं या भागीदारी करती हैं? ६५.३६ प्रतिशत

स्वरोजगारियों ने हाँ में प्रतिउत्तर दिया जबकि समूह में शामिल होने के पूर्व यह स्थिति मात्र ३६.७६ प्रतिशत महिलाओं को प्राप्त थी। ३४.६४ प्रतिशत स्वरोजगारी अब भी ऐसी हैं जिनके पास निर्णय लेने का अधिकार नहीं है और उनके पुरूषों का पारिवारिक निर्णय में वर्चस्व रहता है। वे पैसे कमा तो सकती हैं पर खर्च अपनें पति या बच्चों के निर्णय के हिसाब से करना पड़ता है।

तालिका संख्या-५ के क्रम संख्या-४ के अन्तर्गत जब पूछा गया कि उनके परिवार के लोग उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार करते हैं। ५२.८५ प्रतिशत स्वरोजगारियों का मानना था कि उनके परिवार के सदस्य उनका पहले भी सम्मान करते थे समूह में शामिल होने के पश्चात लगभग इसमें १० प्रतिशत वृद्धि हुई और ६१.७६ प्रतिशत हो गया। ३८.२१ प्रतिशत महिलाएं अब भी ऐसी हैं जिनका परिवार में सम्मान नहीं है पति प्रायः उनकी उपेक्षा करते हैं। कुछ महिलाओं ने बताया कि उनको शराब पीकर मारते पीटते भी हैं और उनका पैसा भी छीन लेते हैं।

सामाजिक कुरीतियों के प्रति दृष्टिकोण : व्यक्ति की समाज में सक्रियता, शिक्षा एवं संचार का विस्तार होने पर उसके दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव पड़ता हैं। इसके साथ ही अनेक प्रकार की बुरी घटनाएं या व्यवहार जो उसके आस-पास घटित होते हैं, जिनका विरोध वह अकेले होने के कारण या आर्थिक एवं सामाजिक रूप से निर्बल होने के कारण नहीं कर पाता है। उनकी सुरक्षा के लिये अनेक प्रकार के सरकार ने उपाय किये हैं लेकिन शिक्षा एवं जागरूकता के अभाव में वे उनका प्रयोग अपने बचाव एवं सुरक्षा के लिये नहीं कर पाती हैं। प्रतिकूल व्यवहार एवं कुरीतियों के प्रति प्रतिरोधी भावना का विकास एवं उसका प्रतिकार प्रबलीकरण का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। कोई भी सशक्त एवं सचेत नागरिक अपने समक्ष मानवता एवं कानून विरोधी गतिविधियों को चुपचाप सहन नहीं कर सकता। घरेलू हिंसा जैसे पत्नी या बच्चों की मार-पिटाई, मद्यपान, जुआ, सट्टेबाजी, बालश्रम, कन्याभ्रूण हत्या, दहेजका लेन-देन वे तमाम सामाजिक बुराइयां हैं जो समाज एवं व्यक्ति के स्वस्थ विकास में बाधक है। अध्ययन क्षेत्र के एक बहुत बड़े हिस्से में कच्ची शराब का निर्माण होता हैं जिसका सीधा असर परिवार की महिलाओं और बच्चों पर पड़ता हैं। परिवार के पुरूष अत्यधिक शराब पीने के कारण पत्नी और बच्चों की मार-पिटाई करते हैं। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में इन तमाम बिन्दुओं पर लोगों की चेतना का स्तर एवं सक्रियता की स्थिति जानना महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह भी स्त्री सशक्तीकरण का एक संकेतक है। इन विन्दुओं पर स्वरोजगारियों के विचार तालिका संख्या-६ में प्रदर्शित किये गये है।

तालिका संख्या-१०

सामाजिक कुरीतियों के प्रति दृष्टिकोण

सामाजिक पक्ष	समूह में शामिल होने से पूर्व (हॉ/नहीं)				समूह में शामिल होने से पश्चात(हॉ/नहीं)			
	सं०	प्रति०	सं०	प्रति०	सं०	प्रति०	सं०	प्रति०
घरेलू हिंसा/पति द्वारा पत्नी की मार-पिटाई	२११	७३.६	६६	२४.६४	२४६	८८.६२	३१	११.०८
मद्यपान/जुआ/सट्टेवाजी	२८०	१००	०	०	२८०	१००	०	०
बाल-श्रम	१२७	४५.३५	१५३	५४.६४	२०४	७२.८६	७६	२७.१४
कन्या भ्रूण हत्या	२८०	१००	०	०	२८०	१००	०	०
दहेज लेना/दहेज देना	१८	६.४२	२६२	६३.५७	३७	१३.२१	२४३	८६.७६

तालिका संख्या-६ में वर्णित आँकडों के अनुसार स्वयं सहायता समूह में शामिल होने से पूर्व ८३.५७ प्रतिशत स्वरोजगारी घरेलू हिंसा, पति द्वारा पत्नी की मार पिटाई के प्रति प्रतिरोधी भावना का अनुभव करती थीं। समूह की गतिविधियों में शामिल होने के पश्चात ८८.६२ प्रतिशत महिलाएं घरेलू हिंसा के प्रति प्रतिरोधी भावना का अनुभव करनें लगी। अपने ही विरूद्ध किये जाने वाले अपराध के प्रति समूह में शामिल होने के पूर्व २४.६४ प्रतिशत स्वरोजगारी समर्थन में थी और शामिल होने के पश्चात ११.०८ प्रतिशत। जब इन महिला स्वरोजगारीयों से इसका कारण पूछा गया तो उन्होने बताया कि ''जब बदमाशी करी तब मरद मारी नाहीं'' इस प्रकार का दृष्टिकोण विशेषकर बड़ी उम्र की महिलाओं में ज्यादा था। ये वे महिलाएं हैं जो पुरूषो के एकाधिकार को स्वीकार करती हैं। कम पढे-लिखे एवं अशिक्षित लोगों का प्रभाव घरेलू हिंसा के प्रति दृष्टिकोण में स्पष्ट दिखायी पड़ रहा है।

तालिका संख्या-६ के क्रम संख्या-२ के अनुसार शतप्रतिशत महिलाएं समूह में शामिल होने के पूर्व भी मद्यपान, जुआ, सट्टेबाजी की विरोधी थीं और बाद में भी विरोधी हैं। ठीक इसी प्रकार का विरोध कन्या भ्रूण हत्या को लेकर भी हैं। लेकिन बालश्रम को लेकर महिलाएं बहुत जागरूक नहीं दिखती। स्वरोजगारी बनने से पूर्व ४५.५३ प्रतिशत महिलाओं में ही बालश्रम के प्रति प्रतिरोध चेतना थी और वे मानती थीं कि बच्चों को शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। ५४.६४ प्रतिशत महिलाएं मानती थीं उसका बच्चा काम नहीं करना सीखेगा तो बदमाश हो जायेगा। कौन सा बड़ा साहब बनना हैं ?पर स्वरोजगारी होने के पश्चात महिलाओं के इस विचार में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। ७२.८६ प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि बच्चो को पढ़ने लिखने की उम्र में काम नहीं करना चाहिए। लेकिन २७.१४ प्रतिशत महिलाएं मानती है कि गरीब का बच्चा काम नहीं करेंगा तो क्या खायेगा ?

भारतीय समाज में दहेज एक गम्भीर एवं मानवता को कलंकित करने वाली मानव जनित एक सामाजिक त्रासदी हैं। यह समस्या पढ़े लिखे लोगों के समाज से लेकर अशिक्षित तथा पिछडे समाज तक समान रूप से व्याप्त है जिसका प्रभाव भ्रूण हत्या एवं महिलाओं के राष्ट्रीय औसत दर पर आसानी से देखा जा सकता है। दहेज लेने एवं देने को लेकर भी चौकाने वाले तथ्य प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत तालिका के क्रम संख्या-५ में अंकित है कि स्वयं सहायता समूह में शामिल होने से पूर्व मात्र ६.४३ प्रतिशत स्वरोजगारी दहेज विरोधी थी ६३.५७ प्रतिशत का मानना था कि समाज में चलन है उसके बिना शादी. ब्याह कहाँ होता है। समूह में शामिल होने के पश्चात भी इस विचार में मात्र ६ प्रतिशत के आस-पास परिवर्तन हुआ है। इन समाजों में आज भी पितृ सत्तात्मक पुरूष वर्चस्ववादी व्यवस्था एवं दहेज प्रथा की जड़े गहरी हैं।

तालिका संख्या-७
उपलब्ध सुविधाएं

मद	समूह में शामिल होने से पूर्व		समूह में शामिल होने के पश्चात	
	हाँ	प्रति०	हाँ	प्रति०
चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच	११६	४१.४३	१६४	६६.२३
आपके घर में स्वच्छता/शौचालय/नाली की सुविधा	४५	१६.०७	६५	३३.६३
घर में पास जलापूर्ति की व्यवस्था	१६८	७०.७१	२२३	७६.६४
बच्चों को विद्यालय भेजते हैं	१३७	४८.६३	२१७	७७.५०
गांव में पर्याप्त आवागमन की सुविधा	२८०	१००	२८०	१००

तालिका संख्या ७ में वर्णित तथ्यों के अनुसार स्वयं सहायता समूह में शामिल होने से पूर्व मात्र ४१.४३ प्रतिशत महिलाओं की स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच थी जबकि समूह में शामिल होने के पश्चात ६६.२६ प्रतिशत महिलाएं स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ उठा सकती हैं। ३०.७१ प्रतिशत महिलाएँ स्वास्थ्य सुविधाओं से आज भी वंचित हैं कि उप प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर पर्याप्त दवाई नहीं उपलब्ध होती है वह उन्हें बाहर से खरीदना पड़ता है जो सबके लिए सम्भव नहीं है। स्वयं सहायता समूह का सदस्य बनने के पहले मात्र १६.०७ प्रतिशत स्वरोजगारियों घर में इन्दिरा आवास योजना अन्तर्गत बनें घर में शौचालय बना था जबकि समूह में शामिल होने के पश्चात यह संख्या बढ़कर ३३.६३ प्रतिशत हो गयी। ६६.०७ लोगों के घरो में अब भी शौचालय नहीं है।

अध्ययन क्षेत्र में जल जनित बीमारियों की बहुलता है। जब स्वच्छ पेय जल की आपूर्ति के बारे में समूह के सदस्यों से पूछा गया तो ७०.७१ प्रतिशत के घर के पास समूह में शामिल होने से पूर्व पेय जल की व्यवस्था थी। समूह के सदस्य के रूप में ३ वर्ष से अधिक समय व्यतीत करने के पश्चात स्वच्छ पेय जल तक लोागों की पहुंच बढ़ी है। यह ७६.६४ प्रतिशत हो गयी है। गाँव के ज्यादातर सरकारी हैण्ड पम्प खराब रहते हैं जिसके कारण नियमित रूप से स्वच्छ पेय जल नहीं प्राप्त हो पाता है। २०.३६ प्रतिशत लोग अब भी स्वच्छ पेय जल से वंचित हैं।

जब स्वरोजगारी महिलाओं से पूछा गया कि क्या वे अपनें बच्चो को स्कूल भेजती हैं ?४८.६३ प्रतिशत महिलाओं ने माना कि वे पहले भी बच्चों को स्कूल भेजती थी। स्वयं सहायता समूह में शामिल हाने के बाद उन महिलाओं से प्रेरित होकर कुछ और भी स्वरोजगारी अपने बच्चो को स्कूल भेजने लगीं। अतः बच्चो के स्कूल भेजने की प्रतिशतता २८.५७ प्रतिशत बढकर ७७.५० प्रतिशत हो गयी। २२.५० प्रतिशत महिलायें अब भी निर्धनता एवं जागरूक्ता के अभाव में अपनें बच्चों को विद्यालय नहीं भेजती हैं।

जब स्वरोजगारियों से गांव में आवागमन की सुविधा के

बारे में पूछा गया तो शत प्रतिशत ने माना कि उनका गांव सम्पर्क मार्ग के माध्यम से प्रमुख सड़क से जुड़ा है पर यातायात के साधन को पकड़ने के लिए कई बार दो, तीन किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है।

आर्थिक सशक्तिकरण : इसके अन्तर्गत स्वयं सहायता समूह के सदस्यों के आर्थिक स्थिति में होने वाले परिवर्तनों का तथ्यपरक विश्लेषण किया गया है। किसी भी व्यक्ति के सामाजिक एवं राजनीतिक सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है कि उसका आर्थिक सशक्तीकरण हो क्योंकि इसके बिना व मनवांछित स्वास्थ्य, शिक्षा, संचार, उत्सव एवं अन्य क्षेत्रों में स्वतंत्र या प्रभावी निर्णय नहीं ले सकता। जब व्यक्ति के स्वयं के क्रियाकलापों से उसके आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और साथ ही साथ परिवार में उसके द्वारा किये जाने वाले व्यय में उसकी भागीदारी बढ़ती है तो उसका सम्मान एवं उसके प्रति अन्य लोगों के व्यवहार में स्पष्ट परिवर्तन परिलक्षित होता है। आर्थिक सशक्तीकरण का तथ्यगत विश्लेषण करने के लिए निम्नांकित तालिकाओं के माध्यम से तथ्यों एवं आकडों को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या-८

आर्थिक जीवन पर स्वयं सहायता समूह का प्रभाव

आर्थिक निर्णयों में भागीदारी	संख्या	प्रतिशत
पहले से ज्यादा भागीदारी	११२	४०.००
पहले जितनी भागीदारी	२३	८.२१
पहले से कम	०	०
न तो पहले थी न अब है	९९	३५.३६
मैं प्रमुख निर्णायक हूँ	४६	१६.४३
योग	२८०	१००.००

तालिका संख्या-८ के अनुसार ४० प्रतिशत स्वरोजगारी मानती हैं कि पारिवारिक निर्णयों में उनकी भागीदारी में वृद्धि हुई है। ८.२१ प्रतिशत के अनुसार पहले जितनी ही है अर्थात उनके धन कमाने से उनकी पारिवारिक स्थिति में वैयक्तिक रूप से कोई प्रभाव नहीं पड़ा। १६.४३ प्रतिशत अपने आप को प्रमुख निर्णायक मानती हैं। ३५.३६ प्रतिशत लोग यह मानती हैं कि पारिवारिक निर्णयों में न तो वो पहले भागीदार बनती थीं न अब हैं।

तालिका संख्या-९

भू-सम्पत्ति पर अधिकार

भू-सम्पत्ति पर अधिकार	संख्या	प्रतिशत
आवासीय	२५	८.९३
कृषि भूमि	३३	११.७८
व्यवसायिक भूमि	१८	६.४३
अन्य	२०४	७२.८६
योग	२८०	१००.००

तालिका संख्या-९ से स्पष्ट है कि ८.९३ प्रतिशत महिलाओं के नाम आवासीय भू-सम्पत्ति है। जबकि ११.७८ प्रतिशत के पास कृषि भूमि तथा व्यवसायिक भूमि मात्र ६.४३ प्रतिशत महिला स्वरोजगारियों के नाम है। ज्यादातर लोगों (७२.८६ प्रतिशत) के पास अन्य प्रकार की सम्पत्ति है तालिका से स्पष्ट होता है कि भू-सम्पत्ति पर अधिकार की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। अन्य में वो लोग हैं जो लोग कुछ रूपये देकर गांव में रेहन की जमीन लेकर उसपर अपने पशुओं का चारा बोते हैं अथवा फल/सब्जी की खेती करते हैं। गांव से जमीन, पट्टा लेकर मत्स्य पालन करने वाले स्वरोजगारी भी इसमें शामिल हैं।

राजनीतिक सशक्तीकरण : महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण किये बिना हम उनकी सक्रिय सामाजिक सहभागिता की दिशा में बहुत सफल नहीं हो सकते। इसीलिए सन् १९९३ में संविधान में ७३ वें संसोधन के माध्यम से पंचायतों में उनको ३३ प्रतिशत का आरक्षण प्रदान किया जिससे पुरूषसत्तात्मक समाज में लोग उनको भागीदारी प्रदान करने को बाध्य हों। परन्तु किसी प्रकार के सक्रिय भागीदारी के माध्यम से परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति स्वयं प्रयास करें। व्यक्ति के भीतर राजनीतिक चेतना का विकास आवश्यक है। व्यक्ति की राजनीतिक चेतना का मापन करने के कुछ प्रमुख संकेतक हैं जैसे स्थानीय निकाय चुनावों ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत तथा प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय पंचायतों जैसे विधानसभा एवं लोक सभा के चुनाव में मतदान करती है कि नहीं। दूसरे वे किसी राजनीतिक दल की सक्रिय सदस्य हैं या नहीं तथा तीसरे इन्होंने किसी चुनाव में स्वयं अपनी प्रत्याशिता दर्ज करायी है।

प्रस्तुत अध्ययन में मात्र दो संकेतको एक उनमें मतदान करने सम्बन्धी व्यवहार तथा दूसरे स्वयं प्रत्याशिता करने सम्बन्धी व्यवहार के आधार पर उनमें राजनीतिक जागरूकता एवं सक्रियता का पता लगाने का प्रयास किया गया है।

क. ग्राम पंचायत चुनाव में

तालिका संख्या-१०

मतदान करनें के प्रति जागरूकता

पिछले बार वोट दिया था	संख्या	प्रतिशत
हाँ	२३४	८३.५७
नहीं	४६	१६.४३
अयोग्य थे	०	०

याद नहीं	०	०
योग	२८०	१००.००

ख. क्या आपने कभी चुनाव लड़ा है?

तालिका संख्या-११

चुनाव में प्रत्याशिता

आपने चुनाव लड़ा है	संख्या/आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१८	६.४३
नहीं	२६२	६३.५७
अयोग्य थे	०	०
याद नहीं	०	०
योग	२८०	१००.००

तालिका संख्या-११ के अनुसार ८३.५७ प्रतिशत महिलाओं ने ग्राम पंचायत के चुनावो में मतदान किया है जबकि १६.४३ महिलाओं ने इसमें रूचि नहीं दिखायी। तालिका संख्या-११ प्रदर्शित करती है कि महिलाओं ने सिर्फ मतदान ही नहीं किया अपितु ६.४३ प्रतिशत ने सक्रिय रूप से अपनी राजनीतिक भागीदारी तय करते हुए चुनाव प्रक्रिया में एक प्रत्याशी के रूप में भाग भी लिया। घर से बाहर निकलकर अनेक व्यक्तिवों एवं संस्थाओं के सम्पर्क में आने से राजनीति के बारे में महिलाओं की सूचना के श्रोत में वृद्धि हुयी हैं। समूह की महिलाओं के बीच परस्पर संवाद, ब्लाके के कर्मचारियों एवं बैंक के कर्मचारियों से बातचीत तथा बाजार के सम्पर्क में आने से महिलाओं के ज्ञान का विस्तार हुआ हैं और राजनीति के प्रति उनकी समझ बढ़ी हैं। इसका साफ-साफ प्रभाव उनकी राजनीतिक भागीदारी में दिखायी दे रहा हैं। तालिका संख्या १० और ११ से यह पता चलता है कि महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता तो बढ़ रही है लेकिन सक्रिय रूप से उल्लेखनीय भागीदारी कमजोर हैं।

उपर्युक्त निष्कर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना का प्रभाव ग्रामीण गरीब महिलाओं पर सकारात्मक रूप से पड़ा है। इस योजना से जहाँ एक तरफ स्थानीय स्तर पर आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से उनकी आर्थिक समृद्धि बढ़ी है वहीं परिवार में आर्थिक जिम्मेदारियों के निर्वहन में भी उनकी साझेदारी में वृद्धि हुई है। इसका उनके परिवार के जीवन स्तर पर गुणात्मक असर पड़ा है। पिछड़ी, अनुसूचित जाति एवं अल्पसंख्यक की परस्पर भागीदारी आनुपातिक रूप से कम ही सही लेकिन काम कर रही हैं। इस प्रक्रिया के आगे बढ़ने पर सदियों से चली आ रही जातीय जकड़न से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। हालाँकि एक ही टोले और एक ही जाति की एक समूह में अधिक महिलाएं हैं जो सामाजिक समीपता के सिद्धान्त की पुष्टि करता है। गांव में या अगल बगल के गाँवो में उनके आवागमन में वृद्धि से इस प्रक्रिया में परिवर्तन हो सकता है और सामूहिक भागीदारी का बहुजातीय एवं बहुधार्मिक स्वरूप प्रकट हो सकता है। समूह की गतिविधियों पर शिक्षा का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। समाज के पितृसत्तात्मक स्वरूप का प्रभाव यद्यपि अब भी बना है पर उसमें धीरे-धीरे परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट हो रहे हैं। महिलाओं को परिवार में निर्णय लेने की प्रक्रिया में मिल रहा महत्व उनके व्यक्तित्व के विकास एवं सशक्तीकरण में सहयोगी है। स्वरोजगारियों में राजनीतिक चेतना का विकास हुआ हैं और उनकी राजनीतिक भागीदारी बढ़ी है। समूह में शामिल होने के पूर्व महिला स्वरोजगारी राजनीति के बारे में अपने परिवार के अन्य सदस्यों से जानकारी प्राप्त करती थी। लेकिन समूह में शामिल होने के बाद उनकी स्वयं की राजनीतिक समझदारी बढ़ी है क्योंकि समाज में अन्य लोगों एवं संस्थाओं से उनकी अन्तःक्रिया बढ़ी हैं। स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना ने अध्ययन क्षेत्र की महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रबलीकरण में उल्लेखनीय योगदान दिया हैं।

सन्दर्भ

१. अज्ञात, वैब्स्टर शब्दकोश, तृतीय नवीन अन्तर्राष्ट्रीय संस्करण , स्प्रिंग फिल्ड (मेसाच्यूएट्स) जी०एo सी० मैरीएम कं०, १६६८

२. देसाई ए०आर०, 'भारतीय ग्रामीण-समाजशास्त्र', रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, नवीन रूपान्तरण, १६६७, पृ. ३

३. सिंह, कटार, 'ग्रामीण विकास, सिद्धान्त, नीतिया एवं प्रबन्ध', रावट पालिकेशन्स, २०११, पृ. ३

४. बर्ल्ड बैंक सेन्टर पालस (१६७५), पृ०-३, मिल्क एण्ड रवर्टः रूरल सोषियोलॉजी खण्ड-४६:१६८१: पृ०-६८६-७०२।

५. Sinha, Francis & others, 'Microfinance', Self Help Groups in India - Living up to their Promise, 2009

६. MYRADA,The Myrada experience : A manual for Capacity Building or self help affinity groups, Myarda Bangalore, 2001.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें

❑ गजपाल रामराज

शिक्षा विकास का वह क्रम है जिससे बालक अपने आपको आवश्यकतानुसार धीरे-धीरे भौतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा अध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है। अध्ययन का प्रकाश विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों के विकास में ऊर्जा का कार्य करता है। शिक्षा ही मानव का अस्तित्व निर्धारित कर उसे समाज का एक प्रतिष्ठित नागरिक बनाने में मदद करती है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रेमाण्ट ने शिक्षा-अर्जन को विकास का नाम दिया जो बालकों की शैशवस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक गतिशील रहता है। शिक्षा अर्जन में बालकों की किशोरावस्था महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किशोरावस्था में युवा मन अपनी कल्पना तथा चिन्तन को ही सही मानता है और अपनी रुचियों से काम करना चाहता है। इन्हीं रुचियों के अनुसार जो कार्य करता है उसकी पुनरावृत्ति जब बार-बार होने लगती है तो वह आदत के रूप में परिवर्तित होने लगती है। अवस्थी के अनुसार आदतें छात्रों की उपलब्धि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। अच्छी आदतें छात्रों की विद्यालयी उपलब्धि को बढ़ाना देने में सहायक होने के साथ-साथ छात्रों की नैतिकता और सन्तुष्टि को प्रभावित करती है।[1] अध्ययन के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा चित्त की चंचलता, उद्देश्य की अस्थिरता तथा मन की निर्बलता से पड़ती है। अतः छात्रों में अध्ययन की आदतों को विकसित किया जाना बालक अथवा व्यक्ति के व्यक्तित्व के साथ-साथ, भावी जीवन के निर्माण के लिए भी आवश्यक है।

> अध्ययन की आदत एक अर्जित व्यवहार है। अध्ययन क्रिया इच्छापूर्वक बार-बार दोहराने से कुछ समय पश्चात् स्वचालित होने लगती है जिसे अध्ययन आदत कहते हैं। अध्ययन का अध्येयता की आदतों से गहरा सम्बन्ध है। यह किसी को बहुत कमजोर तथा किसी को बहुत मजबूत बना सकती हैं। एक बालक की अच्छी अध्ययन आदतें उसके अधिगम को प्रेरित करेगीं जबकि बुरी अध्ययन आदतें उसके अधिगम में बाधा पहुंचायेंगी। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं, ग्रामीण एवं शहरी तथा विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

अध्ययन आदतें : बालक जब रुचिपूर्ण शिक्षा ग्रहण करने का कार्य करता है तो यह क्रिया उसमें अध्ययन की आदत के रूप में स्थापित हो जाती है। अध्ययन की आदत एक अर्जित व्यवहार है। अध्ययन क्रिया इच्छापूर्वक बार-बार दोहराने से कुछ समय पश्चात् स्वचालित होने लगती है जिसे अध्ययन आदत कहते हैं। अध्ययन का अध्येयता की आदतों से गहरा सम्बन्ध है। यह किसी को बहुत कमजोर तथा किसी को बहुत मजबूत बना सकती हैं। प्रायः हम देखते हैं कि दो छात्र जो समान योग्यता रखते हैं किन्तु उनके परीक्षा परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं। यह अंतर उनकी अध्ययन की आदतों में भिन्नता का परिणाम भी है। कपूर ने अपने अध्ययन में यह पाया कि छात्रों की अध्ययन आदतें धनात्मक रूप से उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है।[2] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सीखने की प्रक्रिया में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। एक बालक की अच्छी अध्ययन आदतें उसके अधिगम को प्रेरित करेगीं जबकि बुरी अध्ययन आदतें उसके अधिगम में बाधा पहुंचायेंगी। बालक की आदतों पर बालक की रुचियों, अभिप्रेरणा, अभिवृत्तियों, व्यक्तित्व एवं आकांक्षा स्तर आदि का प्रभाव होता है। काले ने माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्कूलों के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का अध्ययन कर पाया कि माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है तथा इन्हीं स्तरों के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों तथा उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सामान्य धनात्मक सह-संबंध है।[3] अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में भिन्नता हो सकती है किन्तु आदतें उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है। अध्ययन की आदतों व पाठ्य सामग्री के अच्छे अनुप्रयोग एवं विद्यालय तथा घर के वातावरण से बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है। ऐलेक्स ने अलगाव युक्त परिवारों के उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बच्चों की

❑ पूर्व शोध अध्येता, शिक्षा विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन कर स्पष्ट किया कि सामान्य परिवारों के बच्चों की अपेक्षा, अलगाव युक्त परिवारों के बच्चों की अध्ययन आदतें एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि में न्यूनता है। उक्त अध्ययन बच्चों की लिंगीय स्थिति एवं क्षेत्रीयता के साथ-साथ उनके पारिवारिक वातावरण को भी प्रभावशाली मानता है।[४] बच्चों की अध्ययन की आदतें एवं शैक्षिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक अनुशासन का भी प्रभाव होता है।

भदवाल एवं पाण्डा ने किशोर छात्र-छात्राओं पर किये गये अपने अध्ययन में यह पाया कि उच्च उपलब्धि वाले छात्रों की अध्ययन आदतें निम्न उपलब्धि वाले छात्रों की अध्ययन अदातों से अच्छी हैं और छात्रों की अध्ययन आदतें, छात्राओं की अध्ययन आदतों से अधिक अच्छी पायी गयीं।[५] अध्ययन आदत को प्रभावित करने वाले कारकों में, समझने की योग्यता, एकाग्रता, कार्य अभिविन्यास, अध्ययन की स्थितियां, अन्तक्रिया, अभ्यास क्रिया, सहारा लेना एवं अभिलेखन, भाषा-शैली, आदि प्रमुख हैं। छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उन्नति एवं जीवन के उद्देश्यों की सफलता में स्कूली शिक्षा की अहम भूमिका होती है। वर्मा ने अपने अध्ययन में यह पाया कि अध्ययन आदतें सार्थक रूप से छात्रों की हिन्दी, अंग्रेजी और सामाजिक अध्ययन की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है।[६] बच्चों की अध्ययन आदतें, अध्ययन का माध्यम, तथा उनकी शैक्षिक उपलब्धि, उनके लिए क्रमशः शैक्षिक अनुशासन तथा शैक्षिक विकास का प्रतिरूप हैं। इस प्रकार बच्चों की अच्छी स्कूली शिक्षा हेतु स्कूल, अध्ययन का भाषा-माध्यम, अध्ययन के वर्ग, अध्ययन सामग्री, अध्ययन के वातावरण तथा अध्ययन की आदतों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

शैक्षिक विकास पूरे विश्व के लिए एक बहस का मुद्दा है। इसलिए विकसित राष्ट्र स्वयं की शैक्षिक स्थितियों को प्रमुखता से विकसित कर रहे हैं। किसी भी विद्यार्थी के लिए उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा उसकी आगामी शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बच्चों को नियमित एवं समयबद्ध अध्ययन की आवश्यकता, उत्तरोत्तर शैक्षिक प्रगति के लिए निर्देशन तथा अध्ययन में आने वाली कठिनाइयों का समाधान करने के लिए शोधकर्ता द्वारा उक्त अध्ययन करना सुनिश्चित किया गया है। प्रस्तावित अध्ययन, गढ़वाल मण्डल में सीमान्त जनपद चमोली के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों तक ही सीमित रखा गया है। आधुनिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में सीमान्त जनपद चमोली के राजकीय इण्टर कॉलेजों में अध्ययनरत् विज्ञान तथा कला वर्ग के छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतें शोध का विषय है।

अध्ययन के उद्देश्य

१. उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों का पता लगाना।
२. उच्च माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के स्कूलों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों की तुलना करना।
३. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विज्ञान तथा कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों की तुलना करना।

परिकल्पना

१. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर नहीं है।
२. उच्च माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के स्कूलों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर नहीं है।
३. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विज्ञान तथा कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध प्रारूप : गढ़वाल मण्डल के सीमान्त जनपद चमोली में अध्ययनरत् उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के अध्ययन हेतु वर्णनात्मक अध्ययन विधि को अपनाया गया है। शोध क्षेत्र के रूप में जनपद चमोली के दशोली विकासखण्ड का चयन लॉटरी विधि से किया गया है तथा यहां के उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं को शोध की इकाइयों के रूप में लिया गया है। अध्ययन क्षेत्र एवं माध्यमिक स्तर की १२वीं कक्षा का चयन सौद्देश्य निर्दशन विधि द्वारा किया गया। शोध की जनसंख्या से न्यादर्श के रूप में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में अध्ययनरत्, विद्यार्थियों का चयन दैव निर्दशन विधि की क्रमांक सूची प्रणाली के द्वारा किया गया है। विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का पता लगाने के लिए एम० मुखोपाध्याय एवं डी०एन० सनसनवाल द्वारा तैयार की गई अध्ययन आदत मापनी का उपयोग किया गया है। संकलित आंकड़ों के विश्लेषण के लिए सामान्य विवरणात्मक सांख्यिकी में मध्यमान एवं मानक विचलन तथा तर्क मूलक सांख्यिकी के अन्तर्गत टी-मूल्य परीक्षण का प्रयोग किया गया है। न्यादर्शों की संख्यात्मक स्थिति का विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

तालिका-१

उच्च माध्यमिक विद्यालयों से चयनित न्यादर्शों की संख्यात्मक स्थिति

लिंगीय विवरण	ग्रामीण क्षेत्र		शहरी क्षेत्र		कुल संख्या
	कला वर्ग	विज्ञान वर्ग	कला वर्ग	विज्ञान वर्ग	
छात्र	२६	१६	४७	३२	१२४
छात्राएं	३६	०६	५६	१७	११८
कुल संख्या	**६२**	**२८**	**१०३**	**४६**	**२४२**

तालिका-२

अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतें

क्र०सं०	लिंगीय वर्गीकरण	विद्यार्थियों की संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	टी-मूल्य (t-value)	सार्थकता स्तर	df
१.	छात्र	१२४	१३७.४५	१०.२७	२.०६	५%	२४०
२.	छात्राएं	११८	१४०.३६	११.२८			

तालिका-२ में t का मान २.०६ प्राप्त हुआ है जो कि ५ प्रतिशत सार्थकता स्तर पर २४० df के लिए सारणी के मान १.९६ से अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर है। अतः परिकल्पना संख्या-१, अस्वीकार की जाती है। उच्च माध्यमिक स्तर के स्कूलों में अध्ययनरत छात्राओं की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों का मध्यमान, छात्रों की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों के मध्यमान से थोड़ा अधिक है जिससे यह स्पष्ट होता है कि छात्राओं की अध्ययन आदतें, अध्ययनरत् छात्रों से बेहतर हैं।

तालिका-३

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें

विद्यालय क्षेत्र	विद्यार्थियों की संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	टी-मूल्य (t-value)	सार्थकता स्तर	df
ग्रामीण क्षेत्र	९०	१३८.२८	१०.०४	१.५६	५%	२४०
शहरी क्षेत्र	१५२	१४०.३६	१०.४१			

तालिका-३ में t का मान १.५६ प्राप्त हुआ है जो कि ५ः सार्थकता स्तर पर २४० df के लिए सारणी के मान १.९६ से कम है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र एवं शहरी क्षेत्र के स्कूलों में पढ़ने वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है। अतः परिकल्पना संख्या-२, स्वीकार की जाती है। यद्यपि शहरी क्षेत्र के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों का मध्यमान, ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों के मध्यमान से अधिक है जिससे यह स्पष्ट होता है कि शहरी क्षेत्र के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें, ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों से बेहतर हैं किन्तु अन्तर सार्थक न होने के कारण यह अन्तर नगण्य माना गया है।

तालिका-४
विज्ञान तथा कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें

अध्ययन का वर्ग	विद्यार्थियों की संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	टी-मूल्य (t-value)	सार्थकता स्तर	df
कला वर्ग	१६५	१३५.४६	१३.१६	२.६०	५%	२४०
विज्ञान वर्ग	७७	१३६.६४	११.५४			

तालिका-४ में ज का मान २.६० प्राप्त हुआ है जो कि ५ प्रशित सार्थकता स्तर पर २४० df के लिए सारणी के मान १.९६ से अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विज्ञान तथा कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर है। अतः परिकल्पना संख्या-३, अस्वीकार की जाती है। उच्च माध्यमिक स्तर के स्कूलों में अध्ययनरत विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों का मध्यमान, कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों के मध्यमान से अधिक है जिससे यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें, कला वर्ग के अध्ययनरत् विद्यार्थियों से बेहतर हैं।

निष्कर्ष : वर्तमान अध्ययन में गढ़वाल मण्डल के सीमान्त जनपद चमोली में उच्च माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के स्कूलों में अध्ययनरत् विज्ञान तथा कला वर्ग के छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों के विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं।

१. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर है। छात्राओं की अध्ययन आदतें, अध्ययनरत् छात्रों से बेहतर हैं।

२. ग्रामीण क्षेत्र एवं शहरी क्षेत्र के स्कूलों में पढ़ने वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।

३. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विज्ञान तथा कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर है। विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें, कला वर्ग के अध्ययनरत् विद्यार्थियों से बेहतर हैं।

शैक्षिक उपादेयता :

१. अच्छी अध्ययन आदतें विद्यार्थियों को उनकी परीक्षाओं में उच्च शैक्षिक उपलब्धि के लिए प्रोत्साहित करती हैं। इसलिए अच्छी अध्ययन आदतों के अवयवों के प्रति विद्यार्थियों को निर्देशित किया जा सकता है।

२. विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों की जानकारी प्राप्त कर शिक्षकगण, विद्यार्थियों की उच्च शैक्षिक उपलब्धियां प्राप्ति हेतु रणनीति अथवा कार्य योजना बना सकते हैं।

३. विद्यार्थियों के ग्रामीण एवं शहरी परिवेश संबंधी अन्तर को कम करने में शिक्षकों द्वारा, विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों को व्यक्तिगत ध्यान देकर उनमें स्व-अभिप्रेरणा का बोध किया जा सकता है।

अन्ततः गढ़वाल मण्डल के सीमान्त जनपद चमोली में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अभिभावक एवं माता-पिता, अपने बच्चों में अच्छी अध्ययन आदतों के संचार के साथ-साथ अच्छी अध्ययन आदतों के घटकों को क्रियान्वयन करने के भाव को संचारित कर सकते हैं तथा वे यह समझने का प्रयास कर सकते हैं कि अच्छी अध्ययन आदतों से बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च होगी।

सन्दर्भ

१. अवस्थी, वन्दना, 'ए कोरिलेशन स्टडी ऑफ इंटेलीजेंस, एंजाइटी, लेवल ऑफ एस्पीरेशन, स्टडी हेविट्स, सोशियो इकोनॉमिक स्टेटस एण्ड कल्चरल सेटिंग ऑफ हाई एण्ड लो एचीवर्स ऑफ हाईस्कूल ऑफ कानपुर देहात', शोध प्रबंध, शिक्षाशास्त्र, सी.एस.जे.एम.यूनिवर्सिटी कानपुर, २००२

२. कपूर 'स्टडी ऑफ फैक्टर्स रिसपॉन्सबिल फॉर हाई एण्ड लो एचीवर्स एट द जूनियर हाईस्कूल लेवल', शोध प्रबंध, शिक्षाशास्त्र, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, १९८६

३. काले, विनीता 'स्टडी हैविट्स ऑफ सेकेन्ड्री एण्ड हायर सेकेन्ड्री स्कूल स्टूडेन्ट्स', एडूट्रैक-ए मंथली स्केनर ऑफ ट्रेन्ड्स इन एजुकेशन, जून, वाल्यूम-१०, नं०-१०, २०११ पृ० ३८,

४. ऐलेक्स, पी० 'स्टडी हेविट्स एण्ड ऐकेडेमिक ऐचीवमेन्ट ऑफ चिल्ड्रन फ्रॉम ब्रोकन फेमिलीज विद स्पेशल रिफरेन्स टू हायर सेकेन्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स', जी०सी०टी०ई० जर्नल ऑफ रिसर्च एण्ड एक्सटेंशन इन ऐजुकेशन, ४(१), २००६ ५०-५०,

५. भदवाल, सी० एण्ड पाण्डा 'द इफैक्ट ऑफ ए पैकेज ऑफ सम करीक्यूलर स्ट्रेटिजी आन द स्टडी हैबिट्स ऑफ रूरल प्राइमरी स्कूल स्टूडेन्ट्स', ए इयर एजुकेशन स्टडीज, वाल्यूम -१७(३), १९९२

६. वर्मा, बी०पी० 'स्टडी हेविट्स लोकस ऑफ कन्ट्रोल एण्ड ऐकेडमिक परफोरमेंस', इंडियन जनरल ऑफ साइकोमैट्री एण्ड एजूकेशन, जनवरी, वाल्यूम २७(१), २५(१५), १९९६

७. वेस्ट, जे० डब्ल्यू० एण्ड कॉन, जे०वी० 'रिसर्च इन एजुकेशन, सेवन्थ एडीशन', प्रिन्टिग्स हॉल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, १९८५

८. मुखोपाध्याय, एम० एण्ड सनसनवॉल, डी०एन० 'मैनुअल फॉर स्टडी हैविट इन्वेन्टरी', नेशनल साइकोलॉजिकल कारपोरेशन, आगरा, २००५

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

चिरईगाँव क्षेत्र में समेकित बाल विकास सेवा योजना के अन्तर्गत टीकाकरण का अध्ययन

❑ मीनाक्षी सिंह कुशवाहा
❖ डॉ. कल्पना गुप्ता

नवजात शिशु को बीमारियों से बचाने के लिए कई प्रकार के टीके लगवाए जाते हैं। शिशु का टीकाकरण होने से शिशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और संक्रामक बीमारियों के होने का खतरा कम होता है। शिशु को पोलियों, टिटनेस, हेपेटाइटिस, डिप्थीरिया, खसरा, काली खांसी, टी०बी० से बचाव के लिए टीके लगवाने चाहिए अन्यथा ये बीमारियाँ घातक हो सकती है। किसी भी देश के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए मानव संसाधनों का विकास महत्वपूर्ण है इसलिए शिशुओं और बच्चों की मृत्यु दर और रोग दर मे कमी लाना सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। बच्चों को पूर्ण स्वस्थ बनाये रखने के लिए रोगग्रस्त होने पर रोग का उपचार करने की अपेक्षा उनके शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करना अधिक उपयोगी है। प्रस्तुत लेख समेकित बाल विकास सेवा योजना के अंतर्गत टीकाकरण की स्थिति और आवश्यकता को प्रकाशित करता है।

दुनिया भर में संक्रामक रोग पहले से कहीं ज्यादा तेजी से फैल रहे हैं और उनका उपचार करना ज्यादा मुश्किल हो गया है। १९७० के दशक से हर साल एक या ज्यादा नए रोगों का पता चल रहा है, जो चिन्ताजनक है। संयुक्त राष्ट्र संघ एजेंसी की रिर्पोट के अनुसार – ''तपेदिक जैसी जानी-मानी बीमारियों को नियंत्रित करने के प्रयास भी सीमित हो रहे हैं क्योंकि वे ज्यादा ताकतवर और दवाइयों की प्रतिरोधी किस्मों में विकसित होती जा रही है (संयुक्त राष्ट्र संघ एजेन्सी, २००८, वार्षिक विश्व स्वास्थ्य रिपोर्ट)''।[१]

टीकों के जरिए रोगों का समय पूर्व मुकाबला करना और उन्हें नियंत्रण में रखना मानव द्वारा रोगों के इलाज में हो रही प्रगति प्रशंसनीय है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार अब भी विश्व में हर साल लाखों बच्चें संक्रामक रोगों के शिकार हो रहे हैं जिन्हें टीकों के जरिये बचाया जा सकता है।[२]

टीका वास्तव में किसी विषाणु की प्रोसेसिंग के आधार पर विकसित किया गया उत्पाद होता है। इंजेक्शन या ड्राप द्वारा मानव शरीर में असली विषाणुओं का मुकाबला करने की शक्ति पैदा की जाती है।[३]

समेकित बाल विकास योजना' एक अनूठी योजना है जो भारत ने अपने बच्चों को उपहार स्वरूप दी है। यह स्कूल-पूर्व बच्चों और उनकी माताओं को जीवित रहने की दर बढ़ाने और उन्हें स्वास्थ्य, पौष्टिक भोजन तथा सीखने के अवसर प्रदान करने वाली एक महत्वाकांक्षी योजना है।

अतः भारत सरकार ने २ अक्टूबर १९७५ में समेकित बाल-विकास योजना की स्थापना की। इसे एकीकृत बाल विकास सेवा भी कहा जाता हैं। इसके अन्तर्गत निम्न सेवाएं उपलब्ध कराई जाती है - सहायक पोषाहार, पोषाहार एवं स्वास्थ्य शिक्षा, रोग निरोध, स्वास्थ्य परीक्षण, विशेषज्ञ सुविधाएं, शालापूर्व शिक्षा।

समेकित बाल विकास योजना के उद्देश्य :

१) १-६ वर्ष तक के बच्चों और गर्भवती स्त्रियों के आहार एवं स्वास्थ्य में सुधार लाना।

२) बच्चों के उचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और सामाजिक विकास की नींव रखना।

३) मृत्यु, रोग, कुपोषण और स्कूल छोड़ देने की प्रवृत्ति को कम करना।

४) विभिन्न विभागों की नीति और कार्यो में प्रभावी सामंजस्य स्थापित करना।

५) पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा माताओं में बच्चों की स्वास्थ्य और पोषण सम्बन्धी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता में वृद्धि करना।

ये सभी सेवाएँ गाँवों में आंगनबाड़ी केन्द्र द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। एक आंगनबाड़ी केन्द्र के अन्तर्गत आने वाले पूरे क्षेत्र में सभी बच्चों को छः जानलेवा बीमारियों से बचाने के लिए टीके लगाए जाते है जैसे-गलघोटूं, डिप्थीरिया, काली खांसी, पोलियो, खसरा एवं तपेदिक।[४]

प्रत्येक आंगनबाड़ी के उपकेन्द्र पर एक ए.एन.एम. कार्यरत होती हैं। एक उपकेन्द्र की जनसंख्या सामान्यतः ५,०००-८,००० होती है। उसके कार्य क्षेत्र में अनुमानतः ४-६ गाँव आते हैं।

❑ शोध अध्येत्री, गृह विज्ञान विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
❖ प्रोफेसर गृह विज्ञान विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

ए.एन.एम. किस दिन गाँव में टीकाकरण करेगीं इस जानकारी की सूचना आंगनबाड़ी कार्यकत्री कार्य-दिवस के एक दिन पूर्व पात्र लाभार्थियों को देती है व कार्य-दिवस के दिन केन्द्र पर पात्र लाभार्थियों को एकत्रित करके रखती है। इस तरह टीकाकरण दिवस को आयोजित करके अधिक से अधिक बच्चों का टीकाकरण कराया जा रहा है।

नवजात शिशु को बीमारियों से बचाने के लिए कई प्रकार के टीके लगवाए जाते हैं। शिशु का टीकाकरण होने से शिशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और संक्रामक बीमारियों के होने का खतरा कम होता है। शिशु को पोलियों, टिटनेस, हेपेटाइटिस, डिप्थीरिया से बचाव के लिए टीके लगवाने चाहिए अन्यथा ये बीमारियाँ जानलेवा भी हो सकती है।[५] कभी-कभी गलत तरीके से टीकाकरण कराने के बाद नवजात पर कुछ दुष्प्रभाव पड़ते है जैसे[६]-

१. शरीर के जिस भाग पर इंजेक्शन लगाया जाता है वहाँ सूजन और लाल चकत्ते उभर सकते हैं और कभी-कभी घांव भी हो जाता है।
२. शिशु के शरीर का तापमान सामान्य से ज्यादा हो सकता है।
३. शिशु को अतिसार की समस्या हो सकती है। इसके कारण शिशु चिड़चिड़ा भी हो सकता है।
४. शिशु को सांस लेने में समस्या हो सकती है।
५. शिशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो सकती है।

टीकाकरण सम्बन्धी महत्वपूर्ण बातें[७]

१. जन्म के तुरन्त बाद बी.सी.जी. और पोलियों की पहली खुराक। यह टीका बच्चे को टी.बी. और पोलियो से बचाती है।
२. बच्चा जब ६ सप्ताह का हो जाए तब डी.पी.टी. हेपेटाइटिस-बी, हिब वैक्सीन, पोलियो की दूसरी खुराक दी जाती है। यह वैक्सीन बच्चे को डिप्थीरिया, टिटनेस, पर्टयूसिस (काली खांसी) हेपेटाइटिस-बी और पोलियों से बचाता है।
३. बच्चे के १० सप्ताह का हो जाने पर डी.पी.टी., हेपेटाइटिस-बी और हिब वैक्सीन, पोलियों ड्राप की तीसरी खुराक देनी चाहिए।
४. बच्चा जब १४ सप्ताह का हो जाए तब डी.पी.टी. हेपेटाइटिस-बी और हिब वैक्सीन, पोलियो ड्राप की चौथी खुराक देनी चाहिए।
५. जब बच्चा ९ माह का हो जाए तब खसरा (मीजल्स) का टीका देना चाहिए।
६. बच्चे के१ वर्ष के होने पर चिकेन पॉक्स और हेपेटाइटिस-ए की पहली खुराक देनी चाहिए।
७. १५ माह का होने पर एम.एम.आर. वैक्सीन। यह टीका बच्चे को मम्स मीजल्स और रूबैला जैसी बीमारियों से बचाता है।
८. १६-१८ माह का होने पर डी.पी.टी. का पहली बूस्टर डोज, ओरल पोलियो वैक्सीन की पांचवी खुराक, हिब वैक्सीन की बूस्टर डोज देनी चाहिए।
९. १८ माह का होने पर हेपेटाइटिस-ए की दूसरी खुराक देनी चाहिए।
१०. जब बच्चा २ वर्ष का हो जाए तब टायफॉइड वैक्सीन देनी चाहिए।
११. ५ वर्ष का होने पर टायफॉइड वैक्सीन और डी.पी.टी. की दूसरी बूस्टर डोज एवं पोलियों की छठी खुराक देनी चाहिए।
१२. बच्चे के १० वर्ष का होने पर टेटनस टॉक्साइड की बूस्टर डोज देनी चाहिए।
१३. बच्चे के १६ वर्ष का होने पर टेटनस टॉक्साइड की दूसरा बूस्टर डोज देनी चाहिए।

ध्यान देने योग्य कुछ महत्वपूर्ण बातें -

१. अगर माँ को हेपेटाइटिस-बी का इंफेक्शन हो तो शिशु को पहले १२ घंटे के भीतर हेपेटाइटिस-बी का टीका जरूर लगवाना चाहिए।
२. जन्म के समय हेपेटाइटिस-बी का टीका देने के बाद बाकी टीके ६, १० और १४ सप्ताह में छठें या चौदहवें सप्ताह में दिए जाने चाहिए।
३. जन्म के बाद यदि किसी कारणवश बी.सी.जी., ओरल पोलियो ड्राप और हेपेटाइटिस बी. के टीके न दिए जा सकें हो तो इन्हें जन्म के छठें सप्ताह के बाद शुरू किया जा सकता है।
४. टायफॉइड का टीका दो वर्ष की आयु में और टायफॉइड की बूस्टर डोज हर तीन वर्ष के अन्तराल पर दी जानी चाहिए।
५. बच्चें को पल्स पोलियों की नियमित खुराक के अलावा पल्स पोलियों अभियान के तहत् दी जाने वाली खुराक भी देनी चाहिए।
६. बच्चे को बी.सी.जी. के टीके, डी.पी.टी. के टीके की तीन खुराक, पोलियों की तीन खुराक व खसरे का टीका उनकी पहली वर्षगांठ से पहले अवश्य लगवा लेना चाहिए।

७. यदि भूलवश कोई टीका छूट गया है तो याद आते ही स्वास्थ्य कार्यकर्ता या चिकित्सक से सम्पर्क करके लगवा लेना चाहिए। ये सभी टीके स्वास्थ्य केन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र एवं राजकीय चिकित्सालयों पर निःशुल्क उपलब्ध हैं।
८. टीके तभी पूरी तरह से असरदार होते हैं जब सभी टीकों का पूरा कोर्स सही उम्र पर किया जाता है।
९. मामूली खांसी और सर्दी की अवस्था में भी सभी टीके लगवाना सुरक्षित है।
१०. कोई भी टीका लगवाने के आधा घण्टा पहले तथा आधा घण्टा बाद तक शिशु को दूध या अन्य खाने की चीज न दें।
११. एच.आई.वी./एड्स से प्रभावित बच्चें को बी.सी.जी. का टीका न लगवायें।
१२. निम्न अवस्था में टीकाकारण न करवायें -
१. अगर बच्चे को तेज बुखार हो।
२. उल्टी व दस्त हो रहे हों।
३. रक्त कैंसर हो।
४. संक्रामक बीमारी हो।[८]

सभी देशों में टीकाकरण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं मुख्य रूप से विकासशील देशों में पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों को आठ बीमारियों से बचाने के लिए टीकाकरण कार्यक्रम चलाये जा रहे है, ये आठ बीमारियाँ - टी०बी०, डिप्थीरिया, टेटनस, काली खाँसी, पोलियो, खसरा, हेपेटाइटिस बी., हिब. इन टीकों द्वारा प्रतिवर्ष २.५ मिलियन बच्चों को मृत्यु से बचाया जा सकता हैं।[९]

टीकों द्वारा बीमारियों की रोकथाम[१०]

आयु	वैक्सीन	बीमारी जिसे रोका जा सकता है
जन्म के तुरन्त बाद	बी.सी.जी. पोलियों, हेपेटाईटिस-बी.	क्षय रोग (टी.बी.) पोलियों, हेपेटाइटिस-बी.
१ महीने पर	हेपेटाइटिस-बी.	हेपेटाइटिस-बी.
२ महीने पर	डी.पी.टी., हिब, पोलियो	डिप्थिरिया, काली खांसी, टिटनेस, निमोनिया, पोलियो
३ महीने पर	डी.पी.टी., हिब, पोलियो	डिप्थिरिया, काली खांसी, टिटनेस, निमोनिया, पोलियो
४ महीने पर	डी.पी.टी., हिब, पोलियो	डिप्थिरिया, काली खांसी, टिटनेस, निमोनिया, पोलियो
६ महीने पर	खसरा, पोलियो	खसरा, पोलियो
१२ महीने पर	चिकन पॉक्स	चेचक
१५ महीने पर	एम.एम.आर.	खसरा कनफड़े व रूबेला
१८ महीने पर	डी.पी.टी., हिब, पोलियो	डिप्थिरिया, काली खांसी, टिटनेस, निमोनिया, पोलियो
२ साल पर	टायफाइड, हेपेटाईटिस-ए	टायफाइड, हेपेटाईटिस-ए
२ साल पर	हेपेटाईटिस-ए (दूसरी डोज)	हेपेटाईटिस-ए
५ साल पर	डी.पी.टी., पोलियो बूस्टर	डिप्थिरिया, काली खांसी, टिटनेस, पोलियो
८ साल पर	टायफाइड	टायफाइड
१६ साल पर	टिटनेस टाक्साइड	टिटनेस
प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में	कॉलरा	हैजा

उद्देश्य : टीकाकरण के प्रति ग्रामीण महिलाओं की जागरूकता का अध्ययन।

शोध प्रारूप : अध्ययन का क्षेत्र - इस लघुशोध को पूर्ण करने के लिए वाराणसी शहर के चिरईगाँव ब्लॉक में दो गाँव दीनापुर एवं कोटवाँ का चयन किया गया। प्रतिदर्श के लिए यादृच्छिक विधि द्वारा ५० महिलाओं का चयन किया गया जिनकी उम्र २२-३५ वर्ष थी एवं जिनके बच्चे की आयु जन्म से लेकर ५ वर्ष थी। तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची विधि का प्रयोग किया गया।

उपलब्धियाँ

सर्वप्रथम सूचनादात्रियों से पूछा गया कि आप अपने बच्चे में विभिन्न बीमारियों के प्रतिरोधक क्षमता के विकास के लिए टीकाकरण आवश्यक मानती है उनके प्रत्युत्तर सारणी संख्या १ में प्रदर्शित हैं।

सारणी संख्या १

प्रतिरोधक क्षमता के विकास हेतु टीकाकारण आवश्यक

विवरण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	५०	१००
नहीं	–	–
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि सभी १०० प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि बच्चों में प्रतिरोधक क्षमता के विकास के लिए टीकाकरण आवश्यक है।

इसी क्रम में उनसे पूछा गया कि क्या वे अपने बच्चों को पोलियों के सभी खुराक पिलाती हैं

सारणी संख्या २

पोलियो की सभी खुराक देते हैं

विवरण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	५०	१००
नहीं	–	–
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि सभी १०० प्रतिशत महिलाएँ मानती हैं कि वे अपने बच्चों को पोलियों की सभी खुराक पिलवाती हैं।

टीकाकारण की समयाबद्धता के संबंध में उनसे पूछा गया कि क्या वे अपने बच्चे का टीकाकरण सही समय पर करवाती हैं

सारणी संख्या ३

सही समय पर टीकाकारण कराती हैं

विवरण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३८	७६
नहीं	१	२
कभी-कभी	११	२२
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि ७६ प्रतिशत महिलाएँ मानती हैं कि वे अपने बच्चे को टीका सही समय पर लगवाती है। २ प्रतिशत महिलाएँ किसी कारणवश अपने बच्चे को सही समय पर टीका नहीं लगवा पाती हैं तथा २२ प्रतिशत महिलाएँ मानती हैं कि वे अपने बच्चे को सही समय पर टीका कभी-कभी लगवाती है।

अंत में उनसे पूछा गया कि क्या वे सामान्य बीमारी (सर्दी, जुकाम, बुखार) में भी बच्चे का टीकाकरण करवाती हैं -

सारणी संख्या ४

सामान्य बीमारी में भी टीकाकरण कराना

विवरण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	४५	९०
नहीं	५	१०
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि ९० प्रतिशत महिलाएँ सामान्य बीमारी में भी बच्चे का टीकाकरण करवाती हैं जबकि १० प्रतिशत महिलाएँ उस समय टीकाकरण नहीं करवाती जब बच्चा सामान्य रूप से बीमार होता हैं।

निष्कर्ष : आँकड़ों के विश्लेषण एवं विवेचना के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि सभी महिलाएँ टीकाकरण को आवश्यक मानती हैं। ७६ प्रतिशत महिलाएँ अपने बच्चों का टीकाकरण सही समय पर करवाती हैं। सभी महिलाएँ अपने बच्चे को पोलियों की सभी खुराक दिलवाती हैं। ९० प्रतिशत महिलाएँ सामान्य बीमारी जैसे-सर्दी, जुकाम एवं बुखार होने पर भी टीकाकरण करवाती हैं।

सन्दर्भ

१. Unicef, ''परिवार कल्याण महानिदेशालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, उत्तर प्रदेश'', बाल स्वास्थ्य पोषण माह (मई/नवम्बर) २००६ पृ० ६

२. चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग राज्य स्वास्थ्य कैलेन्डर, राजस्थान सरकार, २०१३, पृ० - ०१

३. Bulletin of the World Health Organization ; WHO and Unicef Estimates of National Infant Immunization Coverage, Methodology Process 87:535-541. doi : 10.2471/BLT.08.0 3819; 2009: P 27&43.

४. सिंह, वृन्दा ''महिलाओं एवं बालकों के लिए कल्याणकारी कार्यक्रम'' प्रसार शिक्षा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर २०१२ पृ०- ६१८

५. Unicef Neonatal Care; http://babycare only my health.com. (7:23am, 04.07.2013).

६. शर्मा, नचिकेता, 'नवजात में टीकाकरण के साइडइफेक्ट'; April 2013 http://babycare only my health.com (8:59am, 04.07.2013).

७. बाल स्वास्थ्य पोषण माह, परिवार कल्याण महानिदेशालय, ''स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग'', उत्तर प्रदेश (मई/नवम्बर) २००६, पृ० ६।

८. संक्रामक रोग, http;//www.hiweikipedia.org/s/idb (7:45am. 04.07.2013); March 2013.

९. W.H.O. & Unicef; State of the World"s Vaccines and Immunization, 2009, p. 47&48.

१०. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार (नई दिल्ली), ICDS, आंगनबाड़ी निर्देश पुस्तिका, २००४, पृ० - ९

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

आधुनिक फैशन : सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन

❑ डॉ० संजीता अग्रवाल

'संस्कृति और संस्कार' जैसे सामाजिक उपादनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध हैं। संस्कृति मानवीय कृति होने के कारण मानव की ही भाँति प्रगतिशील भी है। संस्कृति ही मानव एवं समाज का समग्र परिष्कार करती है। संस्कृति में ही संस्कार निहित है। संस्कार का सामान्य अर्थ है-संशोधन करना, सुधारना, संवारना या शुद्ध करना। मानव द्वारा किसी वस्तु , चलन-प्रचलन या अन्य सामाजिक गुणों, परिवर्तनों एवं योग्यताओं को अपनाना ही संस्कार है किन्तु आधुनिक समाज में इसे "फैशन" की संज्ञा दी जाती है। संस्कृति फैशन को प्रभावित करती है एवं फैशन समाज को प्रभावित करता है। इस सामाजिक प्रक्रिया के अन्तर्गत फैशन को सामाजिक-साँस्कृतिक संरचना के संशोधन तथा परिवर्तन का अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक माना गया है, क्योंकि प्रत्येक समाज की एक संस्कृति होती है जो कि मानव के भौतिक एवं अभौतिक दोनो प्रकार के कार्यो में पथ-प्रदर्शक का कार्य करती है। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में मानवीय व्यवहार- प्रतिमानों रहन-सहन, आचार-विचार, धर्म, भाषा, रूढ़ियों प्रथाओं इत्यादि में विभिन्नता पाई जाती है लेकिन इन्हीं 'सामाजिक-साँस्कृतिक' विरासत को फैशन विविधता तथा गति प्रदान करता है। साथ ही, यही सामाजिक-साँस्कृतिक परिवर्तन विश्व के विस्तृत क्षेत्र में व्यक्ति से व्यक्ति को, व्यक्ति से समूह को, समूह को समूह से और फिर समग्र समाज से अलग करता है। किम्बल यंग ने लिखा है कि "फैशन और फैशन परिवर्तनों को एक समाज विशेष की संस्कृति की वृहद संरचना के सन्दर्भ मे समझा जा सकता है। फैशन सांस्कृतिक लक्षणों को व्यक्त करने की विधि, रीति, ढंग या प्रदर्शन की विशेषता है जिसे बदलने या परिवर्तित होने की आज्ञा स्वयं प्रथा देती है। यदि प्रथा को हम सामाजिक व्यवहार का स्थिर और अस्थायी पहलू मानतें हैं, तो फैशन को इन सामान्य स्वीकृति के अन्दर अनुमति प्राप्त कर एक परिवर्तन कह सकते हैं।"[२]

> सांप्रत समाज में फैशन का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि सामाजिक जीवन का कोई भी क्षेत्र फैशन से अछूता नहीं है। इसकी व्यापकता को प्रकाशित करते हुए राबर्ट बीरस्टीड ने लिखा है "अगर लोग फैशनेबुल कपड़े पहनते हैं तो वे फैशनेबुल आमोद-प्रमोद में भी भाग लेते हैं, फैशनेबुल खाना खाते हैं, फैशनेबुल किताबों को पढ़ते हैं, फैशनेबुल बीमारियों से मरते हैं। कला और साहित्य में विज्ञान और धर्म में भी फैशन है।"[१] प्रस्तुत आलेख में सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक फैशन को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

साथ ही स्पष्ट रूप से लिखा है कि "सांस्कृतिक प्रतिरूप में फैशन एक प्रकार का सामाजिक संस्कार हैं, जिसके सम्बन्ध मे व्यक्तियों से यह आशा की जाती है कि वे इसका निर्वाह करेगें।"[३]

भारतीय समाज एवं संस्कृति कितनी चिर पुराण हैं ? तथापि आधुनिक जीवन में इसका कितना अंश विद्यमान हैं? इसका सम्यक् अबबोध प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मानव को प्राचीन भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का सर्वांग्रीण ज्ञान हो और साथ ही यह निर्दिष्ट किया जाए कि भारतीय समाज एवं संस्कृति के लम्बे इतिहास में कौन से तत्व जीवन्त हैं और कौन से निष्प्राण ? प्राचीन भारतीय समाज को विश्व गुरू कहा जाता था। ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्म, धर्म, ज्योतिष, चिकित्सा आदि समस्त क्षेत्रों में भारतीय योगदान का विश्व हमेशा ऋणी रहेगा। खेद की बात यह है कि सर्वप्रथम ब्रिटिश उपनिवेशवाद और इस्लामी ध्वंस नीति के कारण भारत की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर धूमिल हुई। कारण - "लार्ड मैकाले" द्वारा सन् १८३५ में पाश्चात्य शिक्षा नीति की नींव रखी गई, तब उनका एक मात्र लक्ष्य भारतीय संस्कृति और मूल्यों के विपरीत एक नई पीढ़ी को विकसित करना था। इसके बाद १८५४ में "चार्ल्स वुड" ने यूरोपीय ज्ञान का व्यापक प्रसार करने के लिए भारत को जोड़ने वाली संस्कृत भाषा को उपेक्षित कर क्षेत्रीय भाषाओं का विवाद खड़ा कर दिया। इस तरह भारतीय जनता को पाश्चात्य संस्कृति द्वारा आकर्षित करके हमारी कालजयी संस्कृति पर कुठाराघात प्रारम्भ हुआ।[४] किन्तु आज विडम्बना यह है कि आधुनिक तकनीकी नव प्रवर्तनों के माध्यम से व्यापारिक वसुधैवीकरण के बहाने पश्चिमी संवेदनहीन भौतिक सभ्यता पूरे विश्व पर आच्छादित हो रही है। परिणामस्वरूप युवा पीढ़ी लड़खड़ाने लगी है जो केवल भौतिक सुख-समृद्धि को ही फैशन मानती है। इस सन्दर्भ में सर्वश्री मैकाइवर एवं पेज का कथन विचारणीय है कि "समाज का अस्तित्व समय की एक

❑ प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, आर्य महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाहजहाँपुर (उ.प्र.)

श्रृंखला मात्र के रूप में हैं। यह परिणित हो रहा है, अस्तित्वपूर्ण वस्तु नहीं हैं। वर्तमान सम्बन्ध सूत्रता की प्रक्रिया और परिवर्तित संतुलन हैं।''[५]

निःसन्देह! समकालीन भारतीय समाज तीव्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। एक तरफ आधुनिक समाज की अनिवार्यता है, तो दूसरी ओर संस्कृति के प्रति आग्रह है। पश्चिम की भौतिकतावादी जीवन-शैली आर्थिक एवं तकनीकी सहायता के साथ नये-नये मूल्यों को प्रस्तुत कर रही है जिसे भारतीय समाज फैशन की आधुनिकता समझकर बिना किसी तर्क के अपना रहा है। कारण ! मुख्यतः भारतीय सामाजिक परिवर्तन के दो पहलू हैं। प्रथम, बाहय सभ्यता का प्रभाव। द्वितीय आन्तरिक सांस्कृतिक विकास। भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार की मानव जातियों एवं उनकी सांस्कृतिक एकता का सूत्र स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। साथ ही इन संस्कृतियों में मिश्रित पश्चिम का प्रभाव है। भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन के इस संक्रमण काल में समाज का जो स्वरूप प्रकट हो रहा है, उसकी दिशाओं व गति में पर्याप्त विविधता है। एक ओर परिधान, व्यवहार-प्रतिमान आदि में आधुनिकता का सम्पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है, तो दूसरी तरफ अप्रांसगिक परम्पराओं का प्रभाव भी जारी है। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी एक तरफ सहिष्णुता, उदारता, अहिंसा, परोपकार जैसे आदर्श व परम्परागत विधानों में युवा पीढ़ी का कोई रूझान नजर नहीं आता हैं, वहीं दूसरी तरफ स्थूल सांस्कृतिक अस्तित्व के लिए प्रत्येक व्यक्ति सचेष्ट नजर आ रहा हैं। यदि इस प्रांसगिक और अप्रासंगिक चुनौतियों का विश्लेषण किया जाये तो एक बात स्पष्ट हैं कि पाश्चात्य सभ्यता हमारी सांस्कृतिक नींव पर आक्रमण अवश्य कर रही है। परन्तु स्थिति अभी भी अधिकांशतः समृद्ध वर्ग तक ही सीमित हैं किन्तु इसका विष धीरे-धीरे लोक संस्कृतियों में भी फैल रहा है। इससे व्यक्ति में केन्द्रिकता बढ़ी है, सामाजिक समरसता में कमी आई हैं। व्यक्तिगत स्तर पर लोकतन्त्रीकरण की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक स्थिति व भूमिका में परिवर्तन आया है। धर्म निरपेक्षता धर्म विमुखता बन रही है। भारतीय संस्कृति अनुकरण की भोगवादी और लिप्सावादी संस्कृति बन कर रह गई है। आर्थिक उदारता, स्त्रियों का खुलापन वैश्वीकरण जैसी अपसंस्कृति फल-फूल रही है।[६] किन्तु इस नवजागरण में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया, पश्चिमीकरण के सिद्धान्त, शिक्षा का प्रसार, न्यायवादी सवैंधानिक विचारों की स्थापना तथा कानूनी संरक्षण के प्रावधानों के प्रभाव से विशेषकर महिलाओं में जागरूकता का विस्तार अवश्य हुआ है। आज स्त्रियाँ परम्परागत अस्वथ्य दृष्टिकोंणों में परिवर्तन के लिए आवाज उठाने लगी है। हो सकता है, भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन के संक्रमण को शान्तिप्रिय प्रक्रिया में परिवर्तित करने का यह कदम सफल हो। इसके अतिरिक्त कुछ राष्ट्रीय व अन्र्तराष्ट्रीय संस्थायें भी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन में फैशन की सुसंस्कृत एवं लाभकारी महत्ता के प्रति सजग हैं, उदाहरणार्थ -

''एफ०टेक'' का सांस्कृतिक महोत्सव ''संयोजन'': भारतीय परम्पराओं के साथ आधुनिकता को जीवन से जोड़ने का संदेश देने वाली संस्था ''एफ०टेक'' (फोरसाइट टैक्निकल सेंटर) की ''संयोजन श्रृंखला'' का मुख्य उद्देश्य भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम के विजय-२०२० को साकार करना है। महोत्सव का आधार विषय ''भारत की पुर्नखोज'' के अन्तर्गत युवा वर्ग को भारतीय संस्कृति, परम्पराओं और समकालीन भारत की जड़ों से जोड़ना हैं।''[७]

नेक कार्य के लिए फैशन शो : आम धारणा यह है कि फैशन शो केवल भव्यता दिखाने और परिधानों के प्रदर्शन का ही माध्यम है। बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में इस मिथक के टूटने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। समय-समय पर फैशन डिजाइनरों द्वारा आयोजित किये गये फैशन शो का मुख्य उद्देश्य सामाजिक सहायतार्थ धन-संग्रह करना होता है। उदाहरणार्थ - एक दशक पूर्व डिजाइनर रितु कुमार द्वारा आयोजित फैशन शो का वास्तविक उद्देश्य कैंसर पीड़ित महिलाओं के सहायतार्थ धन संग्रह करना था।[८]

पेटा : फैशन करें किन्तु जानवरों की कीमत पर नहीं: जानवरों के हित में कार्य कर रही विश्वव्यापी संस्था ''एथिकल ट्रीटमेंट टु एनिमल'' ने उन फैशनपरस्त लोगों के सामने एक सवाल खड़ा किया जो ऊन, सिल्क या चमड़ें के बने उत्पादों का प्रयोग करते हैं। भारत में इस संस्था की प्रमुख ''अनुराधा साहनी'' ने कहा कि लोग फैशन अवश्य करें किन्तु यह जानवरों की कीमत पर नहीं होना चाहिए। उनका मत है कि भारत में चमड़े के लिए भारतीय संस्कृति में पूज्यनीय गायों को दर्दनाक मौत दी जाती है और यही हाल आस्ट्रेलिया में भेड़ों का हैं। जब उनका ऊन निकाला जाता है। विश्व में प्रति सैकेण्ड ७० से ज्यादा गाय, सुअर, बैलों, भेड़ों व अन्य जानवरों को बर्बरतापूर्वक मारा जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि जानवरों से बनी वस्तुओं को न तो स्वयं प्रयोग करें और न ही उपहार में दे क्योंकि इनके प्रयोग में जानवरों की मौत और उनका दर्द भी शामिल होता है।[९]

पर्यावरण की खातिर फैशन-शो : आज जिस तरफ से विश्व में पर्यावरण का संकट छाया हुआ है। इसके प्रति लोगों को जागरूक करने के उद्देश्य से फैशन शो के अन्तर्गत प्रतिभागी कलाकारों द्वारा व्यर्थ मान ली गई वस्तुओं से तैयार किये गये

परिधानों का प्रदर्शन किया जाता है क्योंकि रिसाईकिलिंग की प्रक्रिया से पर्यावरण संरक्षण में काफी मदद मिलती है। एक दशक पूर्व भी एशियाई देश कंबोडिया की राजधानी नॉमपेन्ह में "द रिसाइकिल्ड फैशन शो" नामक अनोखे फैशन शो का आयोजन किया गया था।[10]

यह निर्विवाद सत्य है कि पिछले दशकों में भारतीय समाज ने आधुनिकता और परम्पराओं में सामजंस्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है। आज का युवा वर्ग ऊँच-नीच, जात-पात, भेद-भाव जैसे रूढ़िवादी विचारों को छोड़ उच्च शिक्षा द्वारा आत्मनिर्भर व आत्मविश्वास के साथ एक मंच पर खड़ा दिखाई देता है। कारण विभिन्न संस्कृति के लोग भिन्न-भिन्न सामाजिक क्षेत्रों में कार्यरत् हैं एवं अपने कार्य क्षेत्र में एक दूसरे की संस्कृति द्वारा प्रभावित हैं। साथ ही सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों का बहुत सहयोग रहता है जिससे पलभर में फैशन एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचकर वहाँ की सामाजिक परिस्थिति को प्रभावित करने लगता हैं। ऐसी स्थिति में केवल भौतिकतावादी उत्पादों का प्रभाव ही सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों में दिखलाई नहीं देता है बल्कि मानव की चाल-ढ़ाल, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा व भाषा भी फैशनपरस्त दिखाई देती है। विशेषकर यह सभ्यता युवा वर्ग पर हावी हो रही है क्योंकि टेलीविजन व सिनेमा के माध्यम से जो दिखलाया जाता है, वहीं समाज में दिखलाई देने लगता है। लेकिन ऐसे सामाजिक परिवेश का एक दूसरा पहलू भी है जिसके अन्तर्गत किसी सामाजिक-सांस्कृतिक उत्सव में अधिकांश लड़के परम्परागत कुर्ता-पायजामा एवं गले में दुपट्टा डालकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। वहीं लड़कियाँ साड़ी, लहंगा-चुन्नी या जाति-विशेष में प्रचलित परिधानों को ही धारण करती हैं एवं इसी के अनुसार श्रृंगार भी किया जाता है। यह अवश्य है कि भारतीय परम्परा में प्रचलित सोलह-श्रृंगार का स्वरूप एक सौ सोलह प्रतीत होता है। आज विदेशों में भी भारतीय वेशभूषा व श्रृंगार से लोग प्रभावित हो रहे हैं एवं परम्परागत् उत्पादों का निर्यात किया जा रहा है। ऐसे में आज भारतीय संस्कृति का पुनर्चलन होने लगा हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य निम्नलिखित बिन्दुओं पर केन्द्रित है-

१. समाज में पश्चिमीकरण व भौतिकवाद के कारण सांस्कृतिक धरोहर में हो रहे परिवर्तनों का अध्ययन।
२. आधुनिक फैशन सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से एक समाज, राष्ट्र व परिवार को किन-किन परिस्थितियों में क्यों व कैसे प्रभावित कर रहा है।
३. विशेषकर युवा वर्ग पर हावी होती पश्चिमी सभ्यता का समाज पर प्रभाव।

उपकल्पनायें : अध्ययन के उद्देश्यों से सम्बन्धित जिन उपकल्पनाओं को संगठित किया गया, वे सभी इस प्रकार हैं :-

१. फैशनगत् व्यवहार प्रायः उच्च वर्ग से निम्न वर्ग में फैलते हैं।
२. भौतिकवादी संस्कृति सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गई हैं।
३. आधुनिक मनोरंजन के साधन व जनसंचार के माध्यम फैशन के प्रति विशेषकर युवा वर्ग को आकर्षित करते हैं।
४. आज समाज के प्रत्येक वर्ग में आधुनिक फैशन को अपनाने की होड़ लगी है।
५. अनेकों सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताओं का स्वरूप परिवर्तित हो रहा है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध में अध्ययन क्षेत्र के रूप में रूहेलखण्ड कमिश्नरी (उत्तर प्रदेश) के बरेली नगर को चयनित किया गया। अध्ययन की उपकल्पनाओं तथा शोध कार्य की प्रकृति व लक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए "वर्णनात्मक" शोध प्ररचना का चयन किया गया जिसके अन्तर्गत अध्ययन से सम्बन्धित यथार्थ तथ्यों को एकत्रित करके उन्हें एक विवरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शोध इकाइयों को चयनित करने के लिए दैव निदर्शन पद्धति की जिस प्रणाली का चयन किया है, वह "सीमित दैव निदर्शन" के अन्तर्गत "आनुपातिक स्तरित निदर्शन विधि" है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक वर्ग में से निदर्शन हेतु उतनी ही इकाइयों का चयन किया गया है जिस अनुपात में प्रत्येक वर्ग की कुल इकाइयाँ समग्र में हैं जिससे सर्वप्रथम बरेली नगर में महात्मा ज्योतिबाफूले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा सन् २००५ तक सम्बद्ध महाविद्यालयों की कुल छात्राओं का पता लगाया गया फिर अध्ययन हेतु इकाइयों का चुनाव करने के लिए बरेली नगर के समस्त महाविद्यालयों में से प्रत्येक महाविद्यालय से उतनी ही इकाइयों का चयन किया गया जिस अनुपात में वर्ग की कुल इकाइयों समग्र में पाई गईं।

इस प्रकार ३०० इकाइयां तथ्य संकलन का आधार बनीं। शोध अध्ययन में वस्तुनिष्ठता बनाये रखने के लिए विभिन्न शैक्षिक स्तर, सम्प्रदाय, पारिवारिक ढ़ाँचा तथा आर्थिक स्थिति को प्रतिनिधित्व करने वाली छात्राओं को शोध अध्ययन में सम्मिलित किया गया एवं तथ्यों का संकलन साक्षात्कार-अनुसूची द्वारा किया गया है।

उपलब्धियाँ : आधुनिक फैशन ने नारी के नख से शिख तक के श्रृंगार की सामाजिक-सांस्कृतिक परम्परा को भी परिवर्तित कर दिया है। प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं का स्थान रसायनिक तत्वों ने ले लिया है। यही कारण है कि परम्परागत् सोलह श्रृंगार का स्वरूप भी परिवर्तित हो चुका है। इस सन्दर्भ को छात्राओं की

अभिव्यक्ति को निम्नलिखित सारिणी में स्पष्ट किया गया है :-

सारिणी संख्या-१

''फैशन द्वारा प्रभावित सोलह श्रृंगार का स्वरूप''

परिवर्तित हो रहा है	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३००	१००
नहीं	–	–
कुल योग	३००	१००

उपर्युक्त सारिणी द्वारा शत-प्रतिशत छात्राओं ने यह स्वीकार किया कि फैशन द्वारा होने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन परम्परागत सोलह श्रृंगार को भी प्रभावित कर रहे हैं। साक्षात्कार के द्वारा यह भी ज्ञात हुआ कि आज अधिकांश नारियाँ इन सोलह श्रृंगार के नाम से भी अनभिज्ञ रहती हैं। अतः स्पष्ट है कि आधुनिक सोलह-श्रृंगार सामाजिक-सांस्कृतिक परम्परा पर आधारित न होकर फैशन से सम्बन्धित होते हैं।

सारिणी संख्या-२

''फैशन एवं सामाजिक परिस्थिति''

छात्राओं की अभिव्यक्ति	संख्या	प्रतिशत
सुधार हुआ है।	१५२	५०.७
सुधार नहीं हुआ है।	८८	२९.३
पता नहीं	६०	२०.०
कुल योग	३००	१००

उपर्युक्त सारिणी द्वारा स्पष्ट है कि ५०.७ प्रतिशत छात्रायें सामाजिक परिवर्तन का मुख्य कारण फैशन को ही मानती हैं। इसी कारण पहले की अपेक्षा आज की सामाजिक स्थिति में भौतिकतावादी वस्तुओं के कारण ज्यादा सुधार हो गया है। जबकि २९.३ प्रतिशत छात्रायें भौतिकतावादी पाश्चात्य शैली को सामाजिक सुधार की श्रेणी में नहीं मानती है। उनके अनुसार ऐसा फैशन युवा पीढ़ी को पथभ्रष्ट करता है न कि मार्गदर्शक बनता है। शेष २० प्रतिशत का मानना है कि परिवर्तन तो दिखाई देता है किन्तु इससे समाज में सुधार हुआ है या नहीं, उन्हें नहीं पता है। अतः स्पष्ट है कि आज सामाजिक परिस्थिति जैसी भी है लेकिन जनसंचार माध्यम के सहयोग से फैशन एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचकर समग्र समाज को प्रभावित अवश्य कर रहा है।

सारिणी संख्या-३

''फैशन एवं परम्परागत मान्यताएँ''

छात्राओं की अभिव्यक्ति	संख्या	प्रतिशत
परिवर्तित हो रही है	१७८	५९.३
परिवर्तित नहीं हो रही है	६९	२३.०
पता नहीं	५३	१७.७
कुल योग	३००	१००

तथ्यों के आधार पर ५९.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि फैशन ने पुरानी परम्परागत मान्यताओं को परिवर्तित कर दिया है। जन्म-मरण, मुण्डन, विवाह जैसे विशेष संस्कारों की प्राचीन परम्परायें भी अब फैशनगत हो रही हैं जबकि २३ प्रतिशत के मतानुसार आज भी गाँवों, कस्बों व निम्न वर्ग के लोग पुरानी मान्यताओं को ज्यों का त्यों अपना रहे हैं। फैशन के प्रभाव से केवल, शहरों, महानगरों व उच्चवर्ग के लोगों की परम्पराओं में उनकी सुविधाओं के कारण आंशिक परिवर्तन हुआ हैं। किन्तु किसी परम्परा का पूर्ण परिवर्तन कदापि सम्भव नहीं है। इसके विपरीत १७.७ प्रतिशत का मानना है कि उनके घरों में जो पहले होता था वह आज भी होता है। वातावरण थोड़ा बदल गया है ऐसे में परम्परायें बदली या नहीं उन्हें नहीं पता है। इससे स्पष्ट है कि भिन्न संप्रदाओं तथा प्रदेशों में स्थान विशेष की अपनी परम्परायें, रीति-रिवाज व व्यवहार प्रतिमान प्रसिद्ध होते हैं जिनमें कुछ ऐसी रूढ़ियां व अंधविश्वास भी होते हैं जिन्हें परिवर्तित करना ही समाज के लिए हितकर होता है। ऐसी अवस्था में प्राचीन मान्यतायें फैशनगत अवश्य हो जाती हैं।

सारिणी संख्या-४

''फैशन में संस्कृति का महत्व''

संस्कृति के प्रति दृष्टिकोंण	संख्या	प्रतिशत
भारतीय	१०३	३४०३
पाश्चात्य	–	–
दोनों	१९७	६५.७
कुल योग	३००	१००

शोध अध्ययन के आँकड़ों द्वारा स्पष्ट है कि अधिकांशतः ६५.७ प्रतिशत छात्रायें भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों संस्कृतियों को ही महत्व देती हैं। उनका मानना है कि प्रत्येक संस्कृति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोंण रखना चाहिए। पाश्चात्य संस्कृति को भी फैशन के आधार पर नहीं बल्कि उपयोगिता के आधार पर अपनाना चाहिए। इसके विपरीत ३४.३ प्रतिशत ने माना कि आज जब विश्व में भारतीय संस्कृति का अध्यात्मवाद, धर्म, खान-पान, आचार-विचार एवं संस्कार लोकप्रिय हो रहें हैं एवं विदेशी लोग भी भारत में आकर शान्ति का अनुभव करने लगे हैं तो भारतीयों का पाश्चात्य सभ्यता से जुड़ाव शर्म की बात है। अतः स्पष्ट है कि बाहय रूप से भारतीय चाहे किसी भी संस्कृति से जुड़ जाये किन्तु आन्तरिक रूप में वे अपनी विशेष संस्कृति से ही प्रभावित रहते हैं। यही कारण है कि पूर्णरूप से विदेशी संस्कृति का महत्व किसी ने भी स्वीकार नहीं किया।

सारिणी संख्या-५

"फैशन द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन"

परिवर्तन में सहायक	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३००	१००
नहीं	-	-
कुल योग	३००	१००

उपर्युक्त सारिणी के आधार पर शत-प्रतिशत छात्राओं ने फैशन को ही सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन का मुख्य कारण माना है। चाहे उस फैशन द्वारा समाज का हित हो या अनहित उसके द्वारा समाज में सुधार हो या बुराई, वह फैशन युवा पीढ़ी के लिए अनुकूल हो या प्रतिकूल। अतः स्पष्ट है कि जब तक मानव किसी वस्तु, वातावरण या संस्कृति द्वारा प्रभावित नहीं होगा उसकी परम्परा पूर्ववत् बनी रहेगी। इसके द्वारा जीवन में नीरसता प्रारम्भ होने लगती है। इसलिये मानव नवचेतना को जाग्रत करने हेतु आधुनिक फैशन से प्रभावित होता है जिससे सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यतायें स्वयं परिवर्तित होने लगती हैं।

सारिणी संख्या-६

"फैशन सामाजिक निन्दा का कारण"

कारण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	१२६	४३.०
नहीं	१७१	५७.०
कुल योग	३००	१००

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर ४३ प्रतिशत छात्राओं ने स्पष्ट कहा है कि फैशन चाहे आधुनिक हो या परम्परागत, भारतीय सामाजिक वातावरण इतना दूषित हो गया है कि लोगों की कुटिल मनोवृत्तियों के कारण कभी न कभी निन्दा का पात्र बनना ही पड़ता है। जबकि ५७ प्रतिशत छात्राओं का मानना है कि पारिवारिक संस्कारों के अनुरूप रहने के कारण उनकी कभी भी किसी ने निन्दा नहीं की। अतः निर्विवाद सत्य यह है कि फैशन करना कोई बुराई नहीं हैं यदि चेहरे की भाव-भंगिमा, चाल-चलन व भाषा सम्मानजनक है।

निष्कर्ष : अन्त में निःसंदेह फैशन द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन से न केवल समाज की मानसिकता परिवर्तित हुई है बल्कि विश्व स्तर पर सम्पर्क सूत्र भी स्थापित किये हैं। फैशन उद्योग की बढ़ती लोकप्रियता समाज में फैशन के प्रति बढ़ती जिज्ञासा की परिचायक है। विश्वव्यापीकरण के कारण आधुनिक समाज में बदलते परिवेशों के मध्य उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् युवाओं को अत्यन्त जागरूक, आत्मविश्वासी व आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ एक प्रगतिशील वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए देखा जाता है। ऐसी परिस्थिति में उनके जीवन में कुछ विशेष तथ्यों को भी समाहित होते पाया जाता है। जैसे-उच्च शिक्षा, कैरियर, प्यार, फैशन। आज की युवा पीढ़ी इन तथ्यों के प्रति कल्पनायें या सपने देखने के विपरीत व्यवहारिकता को अपनाने लगी है। परिणामस्वरूप लज्जा, शालीनता, परम्परा एवं भारतीय संस्कृति के विपरीत पाश्चात्य शैली की छाप इनके बाहय स्वरूप को ही नहीं बल्कि आन्तरिक मनोस्थिति को भी प्रभावित कर रही है। फैशन के इस विकृत स्वरूप के लिए मुख्य रूप से एकाकी परिवार ही जिम्मेदार है क्योंकि एकाकी परिवार स्वयं के कैरियर, समय के अभाव, आधुनिकता व भौतिकतावाद की आपसी होड़ में पारिवारिक कर्त्तव्य, मर्यादा, परम्परा, संस्कृति एवं बुजुर्गो को भूलकर स्वतन्त्र आचरण को बढ़ावा देने लगे हैं। यही कारण है कि अकेले फैशन ही सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को पूर्ण परिवर्तित करने में सक्षम हैं एवं आधुनिक सामाजिक परिवेश में सकारात्मक चिन्तन ही व्यक्तित्व के अभ्यंतर की सांस्कृतिक धरोहर हैं।

सन्दर्भ

१. बीरस्टीड राबर्ट, 'दि सोशल आर्डर', (हिन्दी अनुवाद) बी.ए. गुप्ता एवं के.के. जैटली, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. २६६
२. यंग, किम्बल, 'हैण्डबुक ऑफ सोशल साइकलॉजी', राटलेज एण्ड कीगन पाल लंदन, १९५७, पृ. ३११
३. वही, पृ. ३११
४. पुंज, बलवीर, 'हमारी कालजयी संस्कृति', दैनिक जागरण, ३१ अक्टूबर, २००६, पृ. १०
५. मैकाइवर और पेज, 'सोसाइटी एन इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस', मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, लखनऊ, १९९०
६. सिंह, सीताराम, 'भारतीय समाज : परिवर्तन एवं चुनौतियाँ', राधाकमल मुकर्जी, चिन्तन-परम्परा, जुलाई-दिसम्बर, २००३, पृ. २६
७. संयोजन, 'एफ०टेक का सांस्कृतिक महोत्सव, संयोजन', दैनिक जागरण, जोश, नई राहें, १० जनवरी २००७, पृ. ३
८. पार्कर, जेसिका, 'नेक काम के लिए फैशन शो', दैनिक जागरण, संगिनी, २५ मार्च २००६, पृ. ०१
९. पेटा, 'फैशन करें लेकिन जानवरों की कीमत पर नहीं', दैनिक जागरण, १६ फरवरी २००६, पृ. १२
१०. पार्कर, जेसिका, 'पर्यावरण की खातिर फैशन शो', दैनिक जागरण, संगिनी, २६ मई २००७, पृ. ०१

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

''वर्णाश्रम व्यवस्थाः प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं परम्परा''

❑ डॉ० कु० लीला कन्याल

वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के वृज अथवा वरी धातु से हुआ है जिसका अर्थ चुनना या वरण करना है। वर्ण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है जो पूर्व वैदिक युग के समाज रचना के प्रारम्भिक स्वरूप को स्पष्ट करता है तथा ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग रंग एवं आलोक अर्थात् प्रकाश के अर्थ में हुआ है।[1] अन्य सामान्य शब्दों में वर्ण का अर्थ शरीर के रंग रूप या रंग का नाम ही वर्ण है।[2] पूर्व वैदिक कालीन समाज ही नहीं वरन् प्राकृतिक संरचना के अनुसार लोगों में दो वर्ग थे श्वेत 'आर्य' एवं श्याम 'दास'। वेद के अनुसार वर्ण की उत्पत्ति विराट् पुरूष से हुई है-

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्वाहू राजन्स कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रों अजायत।।[3]

अर्थात् विराट् पुरूष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरू अर्थात् जांघ से वैश्य एवं पाद से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। यह विराट् पुरूष अथवा सृष्टिकर्ता हजार सिर, हजार आंखों, हजार हाथ एवं हजार पैरों वाला था जिससे सृष्टि उत्पत्ति हुई है। अतः ऐसे विशाल पुरूष अर्थात् ईश्वर से चार वर्णों की उत्पत्ति हुई है।

> वर्ण शब्द 'वृञ् वरणे' धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ वरण करना अथवा चुनना है। अन्य शब्दों में वर्ण से तात्पर्य जाति एवं रंग के आधार पर किया गया विभाजन को वर्ण कहा गया है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था का नाम ही वर्ण-व्यवस्था है। जिसमें व्यक्ति एवं समाज दोनों की व्यापक भूमिका है। व्यक्ति जन्म तो अकेला ही लेता है, परन्तु उसे सामाजिक दायित्वों का भी निर्वाह करना पड़ता है। अतः व्यक्ति के कर्म व्यक्तिगत होने के साथ ही सामाजिक भी होते हैं। इसलिए व्यक्ति के व्यक्तिगत कर्म एवं सामाजिक आचरण का नाम वर्णाश्रम व्यवस्था है। इसकी सत्ता या अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं, लेकिन इसका स्वरूप एवं प्रामाणिकता विवादास्पद है। तात्पर्य है कि सभी विद्वान इसे भारतीय सामाजिक व्यवस्था तो मानते हैं, परन्तु यह मानव के जन्म से है अथवा कर्म से तथा इसके औचित्य को लेकर बड़ा विवाद है। वर्तमान समय में वर्ण व्यवस्था का स्वरूप परिवर्तित हो गया है लेकिन वर्ण व्यवस्था की प्रासंगिकता जितनी ही पूर्व में थी, उतनी ही वर्तमान समय में भी है। वर्ण व्यवस्था हमारे जीवन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है क्योंकि आज भी सम्पूर्ण मानव जाति ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वैश्य एंव शूद्र चारों वणों में से किसी न किसी वर्ण सम्बन्धित है।

मनु के अनुसार चारों वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है। ब्रह्मा ने सृष्टि के विकास के लिए वर्णों की उत्पत्ति कि-

लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहुरूपादतः।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यं शूद्रं च निवर्तयत्।।[4]

अर्थात् लोक वृद्धि के लिए ब्रह्मा ने अपने मुख ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरू वैश्य एवं पाद से शूद्रों की उत्पत्ति की है। मनु की यह मान्यता एक ओर सांसारिक समृद्धि, जनवद्धि एवं सांसारिक प्रगति की ओर संकेत करती है। महाभारत में कहा गया है कि-

एकवर्ण मिदं पूर्वं विश्वमासीद युधिष्ठिर।
कर्म क्रियाभिभेदन चातुर्वर्ण्य प्रतिष्ठितम्।।[5]

अर्थात् प्रारम्भ में वर्णों में कोई भेद नहीं था, ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण सारा जगत् ब्राह्मण ही था। लेकिन धीरे-धीरे कर्मों की विभिन्नता के कारण वर्णों में अनेकता आ गयी।

उपनिषद् में वर्ण की उत्पत्ति इस प्रकार देखने को मिलती है कि ब्रह्मा ने सर्वप्रथम देवताओं के चार वर्ण बनाये और फिर उनके आधार पर मनुष्यों के चार वर्णों की सृष्टि की। देवताओं के चार वर्णों की उत्पत्ति इस प्रकार हुई है- आरम्भ में केवल ब्रह्मा थे, लेकिन वे अकेले उचित रूप से सृष्टि की उन्नति करने में समर्थ न हो सकें। अतः उन्होंने क्षत्रिय देवताओं को उत्पन्न किया जिसमें इन्द्र, वरूण, सोम, रूद्र, प्रजन्य, यम, मृत्यु एवं इशान प्रमुख थे। लेकिन फिर भी ब्रह्मा को पूर्ण सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ तो उन्होंने वैश्य देवताओं की सृष्टि की। वैश्य देवता पशु, मारूत एवं आदित्य आदि हुए, इस पर भी ब्रह्मा भली-भांति सन्तुष्ट नहीं हो सके, तब उन्होंने पुशान के रूप में शूद्र देवता की सृष्टि की। स्वर्ग लोक की इस वर्ण व्यवस्था के आधार पर ही इस मर्त्यलोक के वर्णों को स्वीकार किया गया।

वैदिक युग में वर्णों की उत्पत्ति इसी आधार पर हुई थी, उस समय के समाज की चार आधारभूत आवश्यकतायें थी- पठन-पाठन, धार्मिक तथा बौद्धिक कार्यों की पूर्ति, राज्य

❑ पी.डी.एफ. (यू.जी.सी.) दर्शनशास्त्र विभाग, हे०न०ब० गढ़वाल विष्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

व्यवस्था का संचालन, समाज की रक्षा, आर्थिक क्रियाओं की पूर्ति एवं सेवा। समाज व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए यह आवश्यक था कि समाज को कुछ निश्चित श्रेणियों में बांटकर कर्मों का नियमन व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। इसी उद्देश्य से चार वर्णों की सृष्टि की गई जिसमें प्रत्येक श्रेणी अपने कर्मों का निष्ठा से पालन करें। इस उद्देश्य से कर्मों का पालन ही प्रत्येक श्रेणी का धर्म अर्थात् कर्त्तव्य है यह बातें वर्ण सदस्यों में कूट-कूटकर भर दी गई।[६]

वर्णाश्रम व्यवस्था ही वह धुरी है जिसके चारों ओर भारतीय सामाजिक व्यवस्था घूमती है। वर्ण व्यवस्था भारतीय समाज एवं संस्कृति में सामाजिक जीवन को कार्यात्मक रूप से उपयोगी बनाने और उसे स्थायित्व प्रदान करने के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लगभग ४००० वर्ष पूर्व भारत में एक वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत भारतीय सामाजिक व्यवस्था की रचना की गई है। सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप सर्वप्रथम वेदों में ही स्पष्ट होता है। अतः भारतीय सामाजिक व्यवस्था का नाम ही वर्ण व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति एवं समाज दोनों की व्यापक भूमिका है व्यक्ति जन्म तो अकेला ही लेता है लेकिन उसे सामाजिक दायित्वों का भी निर्वाह करना पड़ता है। अतः व्यक्ति के कर्म व्यक्तिगत होने के साथ ही सामाजिक भी होते हैं। इसलिए व्यक्ति को व्यक्तिगत कर्म एवं सामाजिक आचरण का नाम वर्णाश्रम व्यवस्था रखा गया है। इसकी सत्ता या अस्तित्त्व के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं, लेकिन इसका स्वरूप एवं प्रामाणिकता विवादास्पद है तात्पर्य है कि सभी विद्वान् इसे भारतीय सामाजिक व्यवस्था तो मानते हैं, परन्तु यह मानव के जन्म से है अथवा कर्म से तथा इसके औचित्य को लेकर बड़ा विवाद है।

मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं, कि वर्ण सामाजिक विभाजन की वह व्यवस्था है जिसका आधार जन्म उतना नहीं है, जितना कि कर्म का विभाजन रंग के आधार नहीं हो सकता है। इस विभाजन का आधार तो गुण, प्राकृतिक स्वभाव और प्रवृत्ति ही हो सकती हैं। सामाजिक व्यवस्था व संगठन को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक था कि सामाजिक कार्यों का विभाजन किया जाये, जिससे कि कार्यों में दूसरा अनावश्यक रूप में हस्तक्षेप न करें। इसी उद्देश्य से कर्मों और गुणों के आधार पर समाज के सदस्यों की विभिन्न समूहों में बांट देने की जो व्यवस्था बनायी गई उसी को वर्ण की संज्ञा दी गयी है। अतः वर्ण व्यवस्था सामाजिक कार्यों के कर्त्तव्यों को विभिन्न समूहों में विभाजन करने की वह व्यवस्था है जिसका आधार प्राकृतिक प्रभाव एवं गुण है, वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन की सामाजिक व्यवस्था का ही दूसरा नाम है।

वर्ण व्यवस्था प्राचीन भारत में स्थापित उन शाश्वत मूल्यों में से एक है जिसकी स्थापना सांसारिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए की गई है। प्राचीन काल से ही भारत में चार प्रकार की वर्ण व्यवस्था है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रा यह सहकारिता की भावना से विद्यमान सामाजिक व्यवस्था है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामाजिक वर्ण व्यवस्था में कुछ विसंगतियां उत्पन्न हुई हैं। लेकिन फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जिस समय वर्ण व्यवस्था स्थापित हुई थी, उस समय वर्ण व्यवस्था को समाज में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। वर्ण व्यवस्था में किसी प्रकार के पारस्परिक वर्ण संघर्ष तथा वर्ग संघर्ष का अभाव था, क्योंकि वर्ण के निर्धारण में वर्णों की भूमिका तथा कार्य का विशेष महत्त्व रहा है। जिस वर्ण का कार्य एवं भूमिका जितनी महत्त्वपूर्ण रही है, उस वर्ण को उतना ही ऊँचा स्तर मिला है। उसी के अनुसार ही उस पर दायित्व लादे गये हैं। उच्चतर वर्ण पर दायित्व भी गुरूतर है और गुरूतर दायित्व के निर्वाह के लिये कुछ विशेष सुविधायें और विशेष अधिकार भी अपेक्षित होते हैं, फिर भी चारों वर्ण एक दूसरे के पूरक हैं, और परस्पर सम्बन्ध है अपने कार्यों एवं दायित्व के द्वारा वह एक दूसरे का पथ-प्रदर्शन, संरक्षण और भरण-पोषण तथा सेवा कार्य करते हुए सुखपूर्वक साथ-साथ रहते। उत्तर वैदिककाल सामाजिक दृष्टि से भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्गों का विभाजन किया गया था -

१- ब्राह्मण वर्ण- इस वर्ण का मुख्य धर्म इन्द्रियों पर संयम करना है। मनुस्मृति के अनुसार वेदों का अनुशीलन, तप, अध्ययन, अध्यापन एवं यज्ञों को सम्पादन करना ब्राह्मण का दायित्व है। ब्राह्मण के छः कर्तव्य बताये गये हैं-

अध्यापन मध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दान प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।[७]

अर्थात् अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान एवं प्रतिग्रह हैं। इन सभी दायित्वों का सम्बन्ध सात्विक गुणों से है, सात्विक गुण को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और यही कारण है कि ब्राह्मणों को समाज में सबसे उच्च स्थिति प्रदान की गयी है। गीता में भी अन्तःकारण का निग्रह, इन्द्रिय-निग्रह, बाह्य-आन्तरिक पवित्रता, क्षमा, सरलता, स्वाध्याय, श्रद्धा, अध्ययन-अध्यापन एवं ईश्वर प्रणिधान ब्राह्मण के कर्त्तव्य है।[८] त्रैतित्तरीय ब्राहम्ण में कहा गया कि -

ब्रहम्ण वै प्रजनामुपदेष्टा।[९]

अर्थात् उत्तम आचरण, निर्मल अन्त करण एवं गम्भीर

अध्ययन के कारण ही ब्राह्मण सम्पूर्ण प्रजा का उपदेष्टा बनने का सामर्थ्य प्राप्त करता है।

भागवान् श्रीकृष्णन् ने कहा है कि -

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापण तथा।
एवं हि बहमबन्धूना वधो नान्योअस्ति दैहिक।।[10]

अर्थात् यदि ब्राहम्ण का अपराध अक्षम्य हो भी तो उसे मृत्यु दण्ड के स्थान पर शिर मूँडना, सम्पत्तिहरण एवं देश निर्वासन का दण्ड देना चाहिए।

मनु ने स्पष्ट किया है कि यदि ब्राह्मण उपर्यक्त कार्यों से अपनी जीविका नहीं कमा सकें तो उसे आपद धर्म के रूप में क्षत्रिय धर्म के पालन से अपनी आजीविका कमाने की आज्ञा है।[11]

प्रासंगिकता यह है कि प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक ब्राह्मणों की स्थिति सम्मान जनक है तथा धार्मिक कर्मकाण्डों जैसे यज्ञ एवं हवन इत्यादि उन्हीं के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है।

२- क्षत्रिय वर्ण-इस वर्ण को राजन्य कहा गया है यह शासक एवं रक्षक वर्ग हैं। क्षत्रिय वर्ण का मुख्य धर्म परोपकार करना, प्रजा की रक्षा करना, एवं युद्ध में वीरता दिखाना क्षत्रियों का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। रामायण में क्षत्रियों का मुख्य कार्य चातुर्वर्गों का संरक्षण प्रदान करना माना गया है।[12] मनुस्मृति में कहा गया है कि-

प्रजानां रक्षणं दानं इज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्य प्रयक्तिं च क्षतियस्य समादिशत्।।[13]

अर्थात् प्रजा की रक्षा करना, दान देना यज्ञ करना, अध्ययन कराना एवं विषयों में अशक्ति न रखना क्षत्रियों का प्रमुख कर्म है। गीता में क्षत्रियों के सात धर्मों का उल्लेख किया गया है कि-

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चारपलायनम्।
दानमीश्वरमावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।[14]

अर्थात् शौर्य, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध से न भागना, दान देना एवं स्वामी भाव अर्थात् निःस्वार्थ भाव से प्रजा का पालन करना आदि क्षत्रियों के धर्म है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि पृथ्वी की रक्षा करना, शस्त्र धारण करना, यज्ञों का अनुष्ठान करना क्षत्रियों का कर्त्तव्य है।[15] अतः क्षत्रियों को इतना समर्थ होना चाहिए कि वह दुष्टों को दण्ड दे सकें। महाभारत में क्षत्रियों के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि-

यदि क्षत्रियों लोके जगत् स्यादधरोत्तमम्।
रक्षणात् क्षत्रियैरेव भवति शाश्वतम्।।[16]

अर्थात् संसार में क्षत्रिय न हो तो यह संसार रसातल को चला जाएगा, क्षत्रियों के रक्षा करने के कारण ही यह संसार टिका हुआ है। यदि किसी कारणवश किसी व्यक्ति की भुजाएं कट जाने पर वह निष्क्रिय हो जाता है, विकलांग हो जाता है, दृष्टिहीन हो जाता है, असुरक्षित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार से कर्त्तव्यनिष्ठ क्षत्रियों के बिना समाज का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। प्रासंगिकता यह है कि वर्तमान में भी क्षत्रिय अपने कर्त्तव्य का पालन निष्ठा से करने पर ही आज हमारा देश आतंकवाद जैसी समस्याओं से मुक्त हो रहा है।

३- वैश्य वर्ण- इस वर्ण का धर्म समाज के भरण-पोषण का दायित्व अपने ऊपर लेकर समाज के अस्तित्व को बनाये रखना है। कौटिल्य ने कहा है कि-

वैश्यस्याध्ययनं यजनं दान कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्यो च।[17]

अर्थात् कृषि, पशुपालन,व्यापार करना एवं ऋण देना इत्यादि वैश्य की आजीविका साधन है। तात्पर्य यह है कि वैश्य का प्रधान कर्म खेती बाड़ी करना एवं दान देना है। महाभारत में कहा गया है कि -

अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययन मवे च।।
वैश्यस्य सततं धर्म पाशुपाल्यं कृषिस्तथा।
वाणिज्य सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमो दम।
विप्राणां स्वागतं त्यागो वैश्यधर्म सनातन।।[18]

अर्थात् पशुपालन, कृषि, व्यापार करना, अग्निहोत्र, दान, अध्ययन,सदाचार का पालन, अतिथि सेवा,शम, दम, ब्राह्मणों का सत्कार, त्यागादि वैश्यों का शाश्वत धर्म है।यह भी कहा गया है कि वैश्य वो है जो वेदों के अध्ययन से सम्पन्न होकर व्यापार पशु पालन एवं कृषि कार्य से अन्न का संग्रह करने में अभिरूचि रखता है।[19] मनुस्मृति में वैश्य के भी सात धर्मों का उल्लेख किया गया है कि-

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिंक्वथ कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।[20]

अर्थात् पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना अध्ययन करना, ब्याज पर धन देना एवं कृषि कार्य करना वैश्यों का प्रमुख धर्म है। प्रासंगिकता यह है कि प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है तथा कृषि के साथ साथ पशुपालन भी आवश्यक है। कृषि एवं पशुओं की समृद्धि के द्वारा राष्ट को धन समृद्ध करता है और सभी प्राणियों के लिए यथाशक्ति अन्न को उपलब्ध करता है।

४- शूद्र वर्ण- शूद्र उसे कहा जाता था जिसका झुकाव अधिकतर शारीरिक विकास की ओर रहा करता था और जिसमें शारीरिक श्रम की, अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक क्षमता होती थी। यह वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य तीनों वर्णों की सेवा करना तथा बढ़ई आदि का काम करना शूद्र का प्रमुख

धर्म माना गया है। शूद्र के दो भाग थे- प्रथम अनिर्वसित जैसे शिल्पकार्य, बढ़ई एवं लोहार आदि और दूसरा भाग निवर्सित जैसे कि चाण्डाल एवं श्वपच आदि। लेकिन शूद्रों पर वेदों का अध्ययन एवं ज्ञय इत्यादि पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था।[२१] मनु के अनुसार शूद्र का एक ही कर्त्तव्य है कि वह बिना किसी ईर्ष्या भाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य तीनों वर्णों की सेवा करना है।[२२] शूद्रों के लिये यह भी कहा गया है कि जहां तक सम्भव हो सकें उसे किसी ब्राह्मण के सेवक के रूप में ही काम करना चाहिए तथा शूद्र धन-संग्रह एवं अन्य वर्णों के व्यवसाय को नहीं कर सकता। लेकिन उच्च वर्णो ने शूद्रों को अपने विकास के समुचित अवसर नहीं दिया और उन्हें तमोगुण प्रधान मानकर अज्ञानी समझ लिया गया है। इसलिए अध्ययन, तप, यज्ञ एवं संस्कारों को शूद्र के लिए निषेध के रूप में माना गया तथा शूद्रों पर अन्य वर्णों की सेवा का उत्त्तरदायित्व डाला गया है। अतः उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यह सामाजिक श्रम विभाजन की बेजोड़ व्यवस्था रही है। प्रासंगिकता यह है कि प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में उनकी स्थिति पूर्व जैसी है क्योंकि उन्हें अभी भी ब्राह्मण अपने सेवक के रूप में अपना कार्य करवाते हैं।

वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त-

१- गुण का सिद्धान्त- इस सिद्धान्त से यह प्रतिपादित होता है कि मनुष्य अपने गुणों के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण को प्राप्त करता है। भारतीय दर्शन सांख्य दर्शन में तीन गुण बताये गये है- सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण को समस्त प्रकृति की आधारभूत विशेषतायें बतायी गयी है।[२३] मानव प्राणी में त्रिगुण सत्त्व, रज, एवं तम गुण विद्यमान रहते है परन्तु ये गुण मानव के स्वभाव पर निर्भर करते हैं कि उसमें किस गुण की प्रधानता है। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था में कार्य का विभाजन गुणों एवं मानसिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है। ब्राह्मण वर्ण में सात्विक गुणों की प्रधानता होती है रजगुण एवं तमगुण न्यून मात्र में होते है। क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णों में राजसिक गुण प्रधान होते है जो कि क्रमशः मान-समान और यश के प्रति आसक्त होते है तथा शूद्र वर्ण में तामसिक गुण की प्रधानता होती है। शास्त्रकारों ने शूद्र को काले वर्ण का माना है। महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर से जब जल देवता ने पूछा की ब्राह्मण कौन है इसका उत्तर देते हुये धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा है कि जो सत्यवादी, दानी, दयालु, क्षमाशील, चरित्रवान, जो दूसरों के प्रति सहानुभूति रखता है एवं जो तपस्वी है, वही स्मृतियों द्वारा ब्राह्मण कहा गया है। युधिष्ठिर ने कहा कि यदि ये गुण किसी शूद्र में पाये जाते है तो वह शूद्र नहीं वरन् एक ब्राह्मण ही है और यदि किसी ब्राह्मण में इन गुणों का अभाव है तो वह ब्राह्मण नहीं शूद्र है। जब व्यक्ति जन्म लेता है तब वह शूद्र होता है और फिर वह शुद्ध होकर ब्राह्मण बनता है। **अतः** व्यावहारिक दृष्टि से वर्ण व्यवस्था कि उत्पत्ति किसी को ऊँचा या नीचा स्थान देने के लिये नहीं हुई है। अपितु प्रत्येक व्यक्ति को उनके स्वभाव के अनुसार तथा गुणों के आधार पर उन्नति के मार्ग में अग्रसर होने के लिये एवं अवसर देने के लिये हुआ है।

२- जन्म का सिद्धान्त- जिस वर्ण के माता-पिता से जिस बालक का जन्म होता है वह बालक उसी वर्ण का माना जाता है। विद्धानों का मत है कि जिस वर्ण से जिस व्यक्ति की उत्पत्ति होती है। उसमें उस वर्ण के लिये निर्धारित तथ्यों एवं दायित्वों के निर्वाह के लिये अपेक्षित योग्यता एवं क्षमता भी रहती है क्योंकि वह अपने पूर्व जन्म के कर्मो के आधार पर उन योग्यताओं के साथ ही जन्म लेता है। द्रोणाचार्य क्षत्रिय कहलाते हैं क्योंकि उनका व्यवसाय युद्ध करना था, परन्तु जन्म के गुण थे न ही कर्म और वे कर्म करते थे। एक क्षत्रिय गुण के कारण इतने क्रुर थे कि अश्वत्थामा ने पाण्डवों के शिविर में घुसकर द्रोपदी के बच्चों का वध कर ड़ाला फिर भी उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। ऋग्वेद और यजुर्वेद के पुरूष सूक्त में वर्णों की उत्पत्ति को जन्म से जोडा गया है।[२४]

३- कर्म का सिद्धान्त- हिन्दू धर्म में यह विश्वास किया जाता है कि व्यक्ति का अपना कर्म ही जीवन की स्थिति वह दिशा को निर्धारित करता है। इस जीवन में वह जो कुछ है व उसके पिछले जीवन के लिये गये कर्मो का प्रतिफल है और अगले जीवन में वह जो कुछ होगा वह उसके वर्तमान जीवन के कर्मों का ही फल है। ऐतिहासिक परिदृष्टि से भी इस प्रकार के अनेक उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि निम्न वर्ण के व्यक्तियों ने अपने कर्मों के आधार पर उच्च वर्णों को प्राप्त किया था जैसे कि रामायण के संस्थापक महर्षि बाल्मीकि एक शूद्र परिवार में जन्मे थे, ऐतरेय ब्राह्मण के संस्थापक महर्षि आत्रेय वेदव्यास का जन्म केवट कन्या सत्यवती की कुक्षि से हुआ था, ब्रह्म विद्या के अधिकारी सत्यकाम दासी जावाला, जो यह भी नहीं जानती थी कि उसका पुत्र किस पुरूष के साथ संसर्ग की परिणति है, के पुत्र थे, महाराजा भरत जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत वर्ष पड़ा उनका जन्म मेनका अप्सरा की पुत्री शकुन्तला से हुआ था। शूद्र परिवार में जन्म लेने वाले जनश्रुति ने राजपद प्राप्त किया महर्षि पराशर चाण्ड़ाली की सन्तान थे, महाभारत विदुर दासी पुत्र थे याज्ञवल्क्य के उपदेश से राजा जनक ब्राह्मण को प्राप्त हुए

क्षत्रिय राजा विश्वविराट महर्षि विश्वमित्र बने।[२५] यास्क ने अपने निरूक्त में बताया है कि सन्तानु और देवापि दो भाई थे और उनमें से एक भाई क्षत्रिय राजा बना और दूसरा ब्राह्मण पुरोहित। यही नहीं बल्कि अर्जुन का विवाह उलूपी से हुआ था जो नाग जाति की कन्या थी तथा भीम का विवाह हीडिम्बा से हुआ था जो राक्षसी थी।[२६] जबकि वास्तविकता यह है कि महाभारत काल और उसके पूर्व समय में अनेक ऐसी घटनायें आयी हैं जिनमें वर्ण की सदस्यता में कर्म की प्राथमिकता सिद्ध होती है तथा उस समय वर्ण व्यवस्था में परिर्वतन सम्भव था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मानव जीवन का सबसे प्रमुख उद्देश्य कर्म अर्थात् कार्य करना है। कर्म सिद्धान्त से यह विश्वास होता है कि मनुष्य को अपने भाग्य पर भरोसा रखकर अकर्मण्य नहीं होना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य जिस प्रकार के कर्मो को करता है, उस मनुष्य का भाग्य उसी प्रकार का हो जाता है। अतः हमारा कर्त्तव्य कर्म करना है और फल प्रदान करना तो ईश्वर का कार्य है।

इस प्रकार गुण एवं कर्म के आधार पर अपना वर्ण परिवर्तित कर किसी अन्य वर्ण की सदस्यता प्राप्त करना सम्भव नहीं है, लेकिन उस समय व्यक्ति अपने कर्म के अनुसार किसी भी वर्ण की सदस्यता प्राप्त कर सकता था। अतः सिद्ध होता है कि वर्ण की व्यवस्था न तो पूर्णतयाः गुण एवं कर्म पर आधारित थी और न ही पूर्णतयाः जन्म पर प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था का आधार गुण तथा कर्म था। गीता में भगवान कृष्ण कहते है कि-

चातुर्वर्ण्ण मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।[२७]

अर्थात् मैंने ही गुण और कर्म के आधार पर चारों वर्णों की रचना की है। लेकिन धीरे-धीरे यह वर्ण भेद में जन्म का महत्त्व बढ़ने लगा समय के साथ ही व्यवसाय आनुवंशिक रूप में परिवर्तित होते गये और ब्राह्मण का पुत्र घृणित से घृणित कर्म करने पर भी उसी वर्ण का माना जाने लगा। इस प्रकार से व्यक्ति की सामाजिक स्थिति अपरिवर्तनीय होती गयी तथा व्यवसाय की भिन्नता के कारण व्यक्तियों के स्वभाव विशेषतायें भी बदल गयी। इस प्रवृत्ति ने जातिगत विषमता को जन्म दिया है जिससे कि मानव-मानव से घृणा ऊँच-नीच की भावना प्रबल होने लगी और समाज कई उपजातियों में विभाजित हो गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों की व्यवस्था एक सैद्धान्तिक व्यवस्था मात्र रही है जिससे अनेक जातियां, गोत्र, समूह एवं पारिवारिक समूह को सम्बन्धित मानते है और मानते ही रहेगें। वर्ण व्यवस्था का प्रभाव आज भी मानव जीवन पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है क्योंकि आज भी विभिन्न जातियां अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों वर्णों में से किसी न किसी वर्ण से सम्बन्धित मानती हैं।

वर्णाश्रम व्यवस्था का सामाजिक महत्त्व -

१- वर्ण व्यवस्था का सर्वप्रथम उद्देश्य समाज में संगठन एवं सुव्यवस्था बनाये रखना है। इसके लिये यह आवश्यक था कि व्यक्ति के जीवन को सुव्यवस्थित कर दिया जाये, ताकि वैयक्तिक जीवन की सुव्यवस्था को स्थापित कर कर्मों एवं गुणों के आधार पर समाज के सदस्यों को विभिन्न समूहों में बाँट देने की जो व्यवस्था की गई उसी को वर्ण की संज्ञा दी गयी है।

२- वर्णाश्रम व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण कार्य समाज में अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा का समाधान कर प्रत्येक व्यक्ति को पारस्परिक संघर्षों से छुटकारा दिलाना है। वर्ण व्यवस्था के द्वारा प्रत्येक समूह के कार्यों का निर्धारण कर दिया गया ताकि कोई भी समूह दूसरे के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप न कर सके और अपने-अपने कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत क्रियाशील रहते हुए आत्महित के साथ-साथ सामूहिक एवं सामाजिक हितों की रक्षा करें।

३- वर्ण व्यवस्था में गतिशीलता के आधार पर सामाजिक विकास का भी ध्यान रखा गया है। वर्ण व्यवस्था वैसे तो अगतिशील दिखाई देती है, परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। यहाँ व्यक्तियों को अपनी समाजिक स्थिति में सुधार करने की भी छूट दी गयी है। वर्ण व्यवस्था में व्यक्ति के गुण और कर्मों को सर्वोच्चतम स्थान दिया गया है, यही वह आधार है जिसके कारण बहुत से वर्णों ने निम्न वर्ण में जन्म लेने के बाद भी उच्च वर्णों की सदस्यता की प्राप्ति की। वर्ण व्यवस्था की इसी गतिशील प्रवृत्ति के कारण व्यक्तियों को अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह की सर्वाधिक प्ररेणा मिली एवं उन्होंने सामाजिक विकास में अपना योगदान दिया है।

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जाता है कि सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण की मात्रा प्रत्येक मानव में अलग-अलग होती है इसलिए तो मानव का चरित्र भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ता है। इस प्रकार से वर्ण-व्यवस्था वास्तव में समाज का चारित्रिक मूल्यांकन था जो स्थिर न होकर सतत् गतिशील एवं परिवर्तनशील है। वर्ण व्यवस्था आत्मवाद पर आधारित थी जो एक समाज तथा एक प्रयोजन में विश्वास करती थी। यदि आज वर्ण व्यवस्था फुहड़ अर्थात् अश्लील जाति प्रथा में परिणित हो गयी है तो यह समय की मांग है। वर्ण व्यवस्था की पुर्नव्याख्या होनी चाहिए क्योंकि चारित्रिक एवं शैक्षिक दृष्टि से आज भी सम्पूर्ण जगत् में चारों वर्ण है- प्रज्ञान विकसित करने वाले सारे वर्ग ब्राह्मण है, समस्त शासक वर्ग क्षत्रिय है, समस्त व्यापारिक वर्ग वैश्य

है एवं समस्त शारीरिकश्रम करने वाला वर्ग शूद्र है, चाहे वह जन्म से ब्राह्मण ही क्यों न हो क्योंकि मानव समाज रूपी शरीर के सभी वर्ण अंग है और सभी की आवश्यकता वर्तमान में भी समान रूप से है।

सन्दर्भ

१. ऋग्वेद, १ /१७/६६, २/१२/४,
२. सांख्यदर्शनम् कपिलमुनिकृत,विज्ञानभिक्षुकृत सांख्यप्रवचनभाष्य पृ०सं०,३०६,
३. पुरूष सूक्त, १०/६०/१२,
४. मनुस्मृति १/३१,
५. महाभारत शान्तिपर्व १८८/६,
६. भारतीय समाज दर्शन गीतारानी अग्रवाल, न्यूभारतीय बुक कार्पोरेशन नई दिल्ली, वर्ष २००८ पृ०सं० ११७ ,
७. मनुस्मृति १/८८,
८. गीता, अध्याय, १८/३०,
९. तैत्तिरीय ब्राहम्ण, २/२/१,
१०. श्रीमद्भागवद गीता, १/७/५७,
११. मनुस्मृति, २/१६६,
१२. रामायण २/१०६, १८/२१,
१३. मनुस्मृति १/६०,
१४. गीता १८/४३,
१५. विष्णु पुराण, अध्याय, २,
१६. महाभारत, अनुशासनपर्व, १४१/४८,
१७. कौटिल्य अर्थशास्त्र, १/२/३,
१८. महाभारत, अनुशासनपर्व, १४१/५४-५५,
१९. महाभारत शान्तिपर्व, ६०/२१-२३,
२०. मनुस्मृति १/६०,
२१. भागवतपुराण, ७/११/२४,
२२. मनुस्मृति, ६/११,
२३. सांख्यदर्शनम् कपिलमुनिकृत, विज्ञानक्षिक्षुकृत सांख्यप्रवचनभाष्य, प्रथमध्याय, पृ०स० २६८,
२४. ऋग्वेद १०/६६/१२, यजुर्वेद ३१/११, २५,
२५. राठौर जगदीश सिंह, 'दलित युवाओं के परिवर्ती दृष्टिकोण', सुमन प्रकाशन, देहली, वर्ष १९९४, पृ० १
२६. दिनकर रामधारी सिंह, 'संस्कृति के चार अध्याय', उदयानल पटना, १९५६, पृ. ८१,
२७. गीता ४/१३,

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारीः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डॉ. दिनेश कुमार चौधरी**

भारत विश्व का विशालतम प्रजातंत्र प्रणाली वाला देश है। पंचायती राज व्यवस्था को भारत मे उचित रूप में सहभागी प्रजातंत्र की आधारशिला की संज्ञा दी गयी है। जयप्रकाश नारायण ने एक बार कहा था कि 'यह काफी सन्तोष का विषय है कि हमारे देश मे पंचायती राज के रूप मे सहभागी प्रजातंत्र की आधार शिला रखने की शुरूआत की गयी है। पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम सभा से लेकर लोकसभा तक अन्योन्याश्रित प्रजातंत्र का स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है।'[1] इन सभी संस्थाओं मे जनता अपने प्रतिनिधियों द्वारा शासित होती है। अतः यह माना गया कि इसके आधार से उत्कर्ष तक प्रजातांत्रिक भावनाएं व्याप्त रहेंगी। भारतीय संविधान मे पंचायती राज के महत्व को स्वीकारते हुए एच.डी. मालवीय ने कहा है कि 'भारतीय संविधान में पंचायत के विचार को संलग्न करना अत्यन्त महत्व की घटना थी जिसका राज्य की बनावट पर बड़ा सुदूरगामी प्रभाव होने वाला था।'[2]

पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ करने तथा पंचायतों में महिलाओं की एक तिहाई भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से १९९३ में ७३ वाँ संवैधानिक संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इस संशोधन के अनुसार ग्राम पंचायतों, क्षेत्र पंचायतों तथा जिला पंचायतो के अध्यक्षों और सदस्यों की कुल संख्या की कम से कम एक तिहाई संख्या महिलाओं की आरक्षित कर दी गयी। इस संवैधानिक व्यवस्था के पश्चात लगभग २ दशक बीत जाने पर महिलाओं की पंचायती राज में भागीदारी की स्थिति का मूल्यांकन करना प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य रहा है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए पर्याप्त अनुपात मे आरक्षण की मांग हमेशा से रही है। पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ करने तथा पंचायतों में महिलाओं की एक तिहाई भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से १९९३ में ७३ वाँ संवैधानिक संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इस संशोधन के अनुसार ग्राम पंचायतों, क्षेत्र पंचायतों तथा जिला पंचायतो के अध्यक्षों और सदस्यों की कुल संख्या की कम से कम एक तिहाई संख्या महिलाओं की कर दी गयी।[3]

७३ वें संशोधन के अनुसार कम से कम एक तिहाई महिलाएं सभी स्थानीय स्वशासकीय निकायों तथा पंचायतों के स्तर पर निर्वाचित होगी जिनमें पंच, सरपंच, प्रधान, पंचायत समिति प्रमुख और जिला परिषद् सभी स्तर सम्मिलित हैं। इस आरक्षण में अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्ग की महिलाओं को भी आरक्षण दिया गया है। स्थानीय स्तर की सभी प्रमुख नीतियों जैसे – निःशुल्क भूमि आंवटन, आवास निर्माण सहायता, उन्नत चूल्हा कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्वरोजगार कार्यक्रम के कार्यान्वयन आदि में महिलाएँ राजनीतिक स्तर पर योगदान देंगी। जवाहर रोजगार योजना और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभार्थियों में महिलाओं के लिए क्रमशः ३० और ४० प्रतिशत का आरक्षण किया गया है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता न सिर्फ उनकी राजनीतिक सहभागिता को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सुनिश्चित करने की है बल्कि उनके विकास सम्बधी उद्देश्यों को कार्यान्वित करने की भी है। महिलाएँ पंचायती राज संस्थाओं में इन रूपों में सहभागी हो सकती हैं – (१) महिला मतदाता के रूप में (२) राजनीतिक दलों के सदस्य के रूप में (३) प्रत्याशियों के रूप में (४) पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्य के रूप में और (५) महिला मंडल के सदस्यों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ साझीदारी के रूप में। अतः ७३ वें संशोधन में महिलाओं को अधिकार प्रदान करने की घोषणा एक मील के पत्थर के समान है।

पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी के संबंध में हजेल डी लिमा[4] ने पंचायत राज संस्थाओं के अन्तर्गत महिला नेतृत्व सम्बन्धी अध्ययन महाराष्ट्र के चार प्रान्तों विदर्भ, मराठवाडा, पूना तथा बम्बई पर किया। इस अध्ययन में महिलाओं के सामाजिक अभ्युदय, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् की महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि उनकी सामाजिक जागरूकता, सामाजिक दृष्टिकोण तथा राजनीतिक सहभागिता के स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। प्रकाश जैन[5] ने अपने लेख मे पंचायत व्यवस्था के तीनों स्तरों पर महिलाओं के आरक्षण, उनकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण, महिलाओं के दायित्व बोध कराने आदि का विश्लेषण किया है। के.सी.विद्या[6]

❑ अतिथि व्याख्याता, समाजशास्त्र विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

ने पंचायती राज संस्थाओं के अन्तर्गत कार्यरत महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि, महिलाओं की समस्याओं पर उनकी अभिवृति, इन्हें हल करने मे पंचायती राज संस्थाओं एवं उनके अन्तर्गत महिलाओं की भूमिका पर पुरूष सदस्यों एवं अधिकारियों के विचारों का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

१. महिला प्रतिनिधियों मे शिक्षा एवं राजनैतिक जागरूकता के स्तर का अध्ययन करना ।

२. महिला प्रतिनिधियों द्वारा किये गये विकास कार्यो की जानकारी प्राप्त करना ।

३. महिला प्रतिनिधियों की समस्याओं का अध्ययन करना ।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन के लिए राजस्थान राज्य के जोधपुर जिले का चयन किया गया। जिले की १०० महिला जन प्रतिनिधियों का चयन सरल दैव निदर्शन प्रणाली के आधार पर किया गया है। तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची, प्रत्यक्ष अवलोकन आदि का प्रयोग किया गया है ।

उपलब्धियाँ

तालिका संख्या - १

महिला शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

दृष्टिकोण	आवृति	प्रतिशत
हाँ	९५	९५
नही	०५	०५
योग	१००	१००

उपर्युक्त सारणी के आंकडों से यह विदित होता है कि ९५ प्रतिशत उत्तरदा्त्रियों ने महिलाओं के शिक्षित होने के पक्ष में प्रतिक्रिया व्यक्त की है। मात्र ५ प्रतिशत उतरदात्रियों नें नकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की है। अतः यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदात्रियाँ स्वीकार करती हैं कि महिलाएं ज्यादा से ज्यादा शिक्षित हों, क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही वे अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों से अवगत होंगी और अपने परिवार, गाँव तथा देश के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी निभा पायेंगी।

तालिका संख्या-२

जीवन में शिक्षा का महत्व*

शिक्षा का महत्व	आवृति	प्रशित
उन्नति एवं विकास हेतु	४५	३०
सरकारी नौकरी हेतु	२३	१५
राजनैतिक सत्ता प्राप्ति हेतु	०६	४
आत्म निर्भरता हेतु	७८	५१
योग	१५२	१००

*बहुविकल्पी तालिका

तालिका संख्या २ से स्पष्ट होता है कि ३० प्रतिशत उतरदात्रियों के जीवन में शिक्षा का महत्व उन्नति एवं विकास हेतु है। १५ प्रतिशत उतरदात्रियों के अनुसार सरकारी नौकरी हेतु, ०४ प्रतिशत उतरदात्रियों के जीवन में राजनैतिक सत्ता प्राप्ति हेतु तथा ५१ प्रतिशत उतरदात्रियों के जीवन में आत्म निर्भरता हेतु है। अतः स्पष्ट होता है कि महिला प्रतिनिधियों के जीवन में आत्मनिर्भरता हेतु शिक्षा का सर्वाधिक महत्व है।

तालिका संख्या- ३

महिलाओं की राजनैतिक जागरूकता में वृद्धि

जागरूकता में वृद्धि	आवृति	प्रतिशत
हाँ	४८	४८
नहीं	१२	१२
कुछ कह नहीं सकतें	४०	४०
योग	१००	१००

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से विदित होता है कि अधिसंख्यक (४८ प्रतिशत) उतरदात्रियों ने स्वीकार किया है कि महिला आरक्षण के द्वारा महिलाओं में राजनैतिक जागरूकता का स्तर बढ़ा है, १२ प्रतिशत के अनुसार राजनैतिक जागरूकता में वृद्धि नही हुई है जबकि उतरदात्रियों की विशाल संख्या अर्थात् ४० प्रतिशत अनिश्चय की स्थिति में रही हैं, क्योंकि शिक्षा के अभाव एवं परम्परा के दबाव के कारण वे निर्णय देने में सक्षम नहीं थीं। अतः स्पष्ट है कि महिला आरक्षण के द्वारा कुछ हद तक महिलाओं में राजनैतिक जागरूकता में वृद्धि हुई है ।

तालिका संख्या - ४

७३ वें संविधान संशोधन की जानकारी

संशोधन की जानकारी	आवृति	प्रतिशत
हाँ	३०	३०
नहीं	७०	७०
योग	१००	१००

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि ७३ वें संविधान संशोधन के विषय में ३० प्रतिशत उतरदात्रियों को ही जानकारी है , जबकि ७० प्रतिशत अर्थात् अधिकांश को जानकारी नहीं है । इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं को आज भी आरक्षण के फलस्वरूप निर्वाचित तो कर दिया जाता है, लेकिन अशिक्षा, परम्परागत सोच, पारिवारिक दायित्व इत्यादि कारणों से उनमें पंचायती राज संबंधी जागरूकता कम पायी जा रही है।

तालिका संख्या - ५

ग्रामीण विकास के कार्यो की जानकारी

जानकारी	आवृति	प्रतिशत
हाँ	२०	२०

नहीं	२६	२६
थोडा बहुत	५४	५४
योग	१००	१००

उपर्युक्त सारणी में २० प्रतिशत जन प्रतिनिधि स्वीकार करती हैं कि ग्रामीण विकास (उत्तरदायित्व) के कार्यो की जानकारी दी जाती है, जबकि ५४ प्रतिशत को थोड़ी बहुत जानकारी दी जाती है। २६ प्रतिशत के अनुसार ग्रामीण विकास के कार्यो की जानकारी एकदम नहीं दी जाती है ।

सारणी संख्या - ६

जनता की सुविधा हेतु किया गया कार्य

सुविधा का कार्य	आवृति	प्रतिशत
मार्ग की सफाई	४२	४२
गंदे पानी की निकासी	८८	८८
स्वच्छ जल की व्यवस्था	७०	७०
आवागमन व प्रकाश व्यवस्था	२०	२०
बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल की व्यवस्था	८४	८४

प्रस्तुत सारणी के अवलोकन से विदित होता है कि अधिकांश (८८ प्रतिशत) उत्तरदात्रियों ने ग्रामीण जनता की सुविधा के लिए गंदे पानी की निकासी की व्यवस्था की है। ८४ प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल की व्यवस्था की है। ७० प्रतिशत ने पीने के लिए स्वच्छ जल की व्यवस्था की है। ४२ प्रतिशत एवं २० प्रतिशत ने क्रमशः ग्रामीण जनता की सुविधा के लिए मार्ग की सफाई की व्यवस्था तथा आवागमन व प्रकाश की व्यवस्था की है।

सारणी संख्या - ७

पंचायती बैठकों मे साथ जाना

बैठकों मे साथ जाना	आवृति	प्रतिशत
अकेले	१२	१२
पुरूष सदस्यों के साथ	६१	६१
कभी साथ कभी अकेले	२७	२७
योग	१००	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता हैं कि पंचायती बैठकों मे अधिकांश महिला प्रतिनिधि जाती तों है, परन्तु ६१ प्रतिशत उतरदात्रियाँ परिवार के पुरूष सदस्यों के साथ बैठकों मे जाती है, जबकि २७ प्रतिशत कभी साथ कभी अकेली जाती है। मात्र १२ प्रतिशत प्रतिनिधि पंचायती बैठको मे अकेले जाती हैं।

सारणी संख्या - ८

कार्यो (निर्णयों) पर प्रभावशाली व्यक्तियों का दबाव

प्रभावशाली व्यक्तियों का दबाव	आवृति	प्रतिशत
सदैव	१८	१८
कभी- कभी	३२	३२
कभी-नही	५०	५०
योग	१००	१००

उपर्युक्त सारणी से ज्ञात होता है कि १८ प्रतिशत महिला जन प्रतिनिधि के पंचायती कार्यो (निर्णयों) पर प्रभावशाली व्यक्तियों का दबाव सदैव पड़ता है। जबकि ३२ प्रतिशत के कार्यो पर प्रभावशाली व्यक्तियों का दबाव कभी - कभी पड़ता है।

प्रस्तुत अध्ययन में पाया गया कि महिलाएं शिक्षा के द्वारा ही अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों से अवगत हो सकती हैं। आत्म निर्भरता हेतु शिक्षा का ही सर्वाधिक महत्व है। महिला आरक्षण के द्वारा काफी हद तक महिलाओं मे राजनैतिक जागरूकता मे वृद्धि हुई है। महिला जन प्रतिनिधियों ने सर्वाधिक कार्य ग्रामीण जनता की सुविधा के लिए गंदे पानी के निकासी एवं बच्चों के लिए स्कूल की व्यवस्था करके की है क्योंकि आज भी गाँवों मे पानी निकासी के लिए किसी प्रकार की व्यवस्था नही होती है। आँकडों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकांश महिला प्रतिनिधि पंचायती बैठको मे जाती तो है, लेकिन वे परिवार के किसी पुरूष सदस्य के साथ ही जाती है। इससे पता चलता है कि ग्रामीण महिलाए पुरूषों पर आज भी निर्भर है।

संदर्भ

१. नारायण, जयप्रकाश, 'कम्युनिटेरियन सोसायटी एण्ड पंचायती राज', इन्द्रप्रस्थ प्रेस, वाराणसी, १९७० पृ. ७३

२. मालवीय, एच.डी.- 'विलेज पंचायत इन इण्डिया,' इकोनोमिक एवं पोलिटिकल रिसर्च डिपार्ट, ए.आई.सी.सी. नई दिल्ली, १९५६, पृ. २६

३. त्रिपाठी, राजमणि, 'पंचायती राज व्यवस्था और महिला सश्क्तीकरण,' कुरूक्षेत्र, वर्ष-४६, अंक-५, मार्च २००१, पृ. १३

४. हजेल डी. लिमा, 'वूमेन इन लोकल गवर्नमेण्ट,' कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, न्यू देहली, १९८३, पृ. १८१-१८३

५. शिवहरे रोली, 'पंचायतों में महिलाओं की सकारात्मक हिस्सेदारी', कुरूक्षेत्र वर्ष ५५ (१०) अगस्त २००६, पृ. २२

६. विद्या, के.सी., 'पालिटिकल इम्पावरमेण्ट आँफ वूमेन एट दी ग्रास रूट्स', कनिष्का पब्लिकेशन, न्यू देहली, १९९७, पृ. १९-२५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

ग्रामीण परिवार एवं वृद्धजन : एक समाजशास्त्रीय विवेचन

❑ **सुचिता पाण्डेय**

आधुनिक समाज में परिवार के स्वरूप में हो रहा परिवर्तन और वृद्धजनों पर उसका प्रभाव इन दिनों व्यापक चर्चा का विषय बना हुआ है, जिससे इस विषय का महत्व उजागर होता है। बदलती हुई परिवार व्यवस्था पर समाज वैज्ञानिक शोध में भी वृद्धि हो रही है, परन्तु दुर्भाग्यवश उसका दायरा समाज के एक छोटे से हिस्से यानी मध्यमवर्ग तथा नगरों में संगठित क्षेत्र के अवकाश प्राप्त लोगों तक सीमित है। इसमें गाँवों में रहने वाले असंख्य बूढ़ों तथा नगरों में असंगठित क्षेत्र में कार्यरत वृद्धजनों की अनदेखी हुई है। वर्तमान में ऐसा दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है जिसमें देश के सभी वर्गों के वृद्धजनों पर शोध किया जा सके।

प्राचीन काल से ही भारतीय परिवार एक ऐसी सामाजिक संस्था के रूप में मान्य रहा है, जोकि अपने सदस्यों की सामाजिक, आर्थिक एवं भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम था। भारतीय परम्परागत संयुक्त परिवार में वृद्धजनों को पर्याप्त सुरक्षा प्राप्त थी तथा आयु एवं वरिष्ठता की महत्ता के कारण पारिवारिक शक्ति संरचना में भी वृद्धों को उत्तम स्थान प्राप्त था। वास्तविकता तो यह है कि परम्परागत समाज व्यवस्था में वृद्धों के अपेक्षाकृत बेहतर समायोजन के पीछे परिवार संस्था की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। परिवार का नेतृत्व एवं संचालन मुख्यतया वृद्ध व्यक्तियों द्वारा ही किया जाता था। बालक एवं युवा बुजुर्गों से संस्कार एवं शिक्षा ग्रहण करते थे तथा उनके समाजीकरण में भी वृद्धों की प्रमुख भूमिका होती थी। उनके अनुभव एवं ज्ञान को समाज एवं परिवार में उपयोगी माना जाता था। परम्परागत ग्रामीण समाज में मौखिक संचारण का विशेष महत्व था इसी कारण कृषि एवं लोक संस्कृति आधारित समाजों में ज्ञान की मौखिक परम्परा के संचारण के कारण भी वृद्धों को अत्यन्त सम्मान प्राप्त था। धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराओं का हस्तान्तरण भी मुख्यतः मौखिक रूप से ही होता था, वृद्धजन इसके सशक्त माध्यम थे।

हाल के दशकों में जहां एक ओर ग्रामीण भारत में वृद्धों की जनसंख्या बढ़ी है वहीं दूसरी ओर ग्रामीण परिवारों में नये प्रकार के मूल्य एवं सम्बन्धों के प्रतिमान उभरे हैं। अन्य संस्थाओं की तरह परिवार भी पश्चिम की भौतिकवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित हुआ है और लोगों में परिवारात्मकता के स्थान पर व्यक्तिवादिता बढ़ी है। भारतीय ग्रामीण परिवारों में मूल्यों के उभरते हुए इन प्रतिमानों ने पारम्परिक परिवार की संरचना एवं इसके सदस्यों के परस्पर सम्बन्धों, मूल्यों तथा विचारों को भी प्रभावित किया है। जिन वृद्धों को पारम्परिक ग्रामीण परिवार में कर्त्ता की प्रस्थिति प्राप्त थी तथा परिवार व समाज में उच्च प्रतिष्ठा थी, वहीं वृद्ध आज की नवीन परिस्थितियों में अपने को अलग-थलग व अनेक समस्याओं से घिरा हुआ पा रहे हैं।

हाल के दशकों में जहां एक ओर ग्रामीण भारत में वृद्धों की जनसंख्या बढ़ी है वहीं दूसरी ओर ग्रामीण परिवारों में नये प्रकार के मूल्य एवं सम्बन्धों के प्रतिमान उभरे हैं। अन्य संस्थाओं की तरह परिवार भी पश्चिम की भौतिकवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित हुआ है और लोगों में परिवारात्मकता के स्थान पर व्यक्तिवादिता बढ़ी है। भारतीय ग्रामीण परिवारों में मूल्यों के उभरते हुए इन प्रतिमानों ने पारम्परिक परिवार की संरचना एवं इसके सदस्यों के परस्पर सम्बन्धों, मूल्यों तथा विचारों को भी प्रभावित किया है। जिन वृद्धों को पारम्परिक ग्रामीण परिवार में कर्त्ता की प्रस्थिति प्राप्त थी तथा परिवार व समाज में उच्च प्रतिष्ठा थी, वहीं वृद्ध आज की नवीन परिस्थितियों में अपने को अलग-थलग व अनेक समस्याओं से घिरा हुआ पा रहे हैं। प्रस्तुत लेख ग्रामीण परिवारों के संदर्भ में वृद्धजनों की स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करने का एक प्रयास है।

ग्रामीण वृद्धों की समस्यायें : १६वीं शताब्दी में बहुत से यूरोपियन लेखकों तथा समाजशास्त्रियों ने वृद्धावस्था की समस्याओं को अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। उस समय के अध्ययनों में मुख्यतः वृद्धावस्था में होने वाले परिवर्तनों एवं परिवार तथा समाज में उनकी स्थिति को दर्शाया गया था। जहां तक भारत में ग्रामीण वृद्धों की समस्याओं का प्रश्न है यह समस्याएं बहुआयामी हैं। वृद्धावस्था की सर्वप्रमुख समस्या अलगाव या अकेलेपन की हैं, जिसमें वह यह अनुभव करता है कि उसका जीवन सामान्य जीवन से

❑ **शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)**

भिन्न है जिसमें उसे अलग या अकेला रहना अपरिहार्य है। ग्रामीण वृद्धों के अलगाव के प्रमुख कारण अपने सगे सम्बन्धियों की उदासीनता, लोगों पर आश्रितता, शारीरिक अक्षमता या असमर्थता है। मनोवैज्ञानिक रूप से यह स्थिति ग्रामीण वृद्धों को असहज एवं असहाय करती है तथा उन्हें नकारात्मक वृद्धावस्था की स्थिति में ले जाती है। पीढ़ी अन्तराल में युवा एवं नवीन पीढ़ी की प्रतिक्रिया इसे और कठिन बना देती है। ग्रामीण वृद्धों में उपार्जन को लेकर बढ़ती हुई असमर्थता ने अत्यंत गंभीर समस्या को उद्घाटित किया है। ग्रामीण वृद्ध अपने प्रति परिवार एवं समाज की उदासीनता, उपेक्षा, उपहास एवं दुर्व्यवहार को प्रायः उपार्जन की असमर्थ के साथ जोड़ते हैं। भारत में वृद्धों की यह स्थिति दुविधा उत्पन्न कर रही है। यदि एक बाद वृद्धजन युवा पीढ़ी पर आर्थिक या शारीरिक रूप से निर्भर हो जायें तो उनकी सलाह की अनदेखी होने लगती है।

प्रवजन के समाजशास्त्र के अंतर्गत एक अध्ययन[7] के माध्यम से कुमाऊँ के पर्वतीय ग्रामीण वृद्धजनों की समस्याओं का परिदृश्य प्रस्तुत करते हुए लिखा गया है कि कुमाऊँ के ग्रामीण पर्वतीय भाग की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित है, परन्तु कृषि अपनी समस्याओं के कारण वर्ष के कुछ माह के लिए ही खाद्यान उपलब्ध करा पाती है इस कारण कुमाऊँ के पर्वतीय भाग के गांवों की क्रियाशील पुरूष जनसंख्या रोजगार की खोज में नगरों की ओर उत्प्रवासित हो जाती है इस कारण गांवों में बच्चों, महिलाओं एवं वृद्धों की बाहुल्यता हो जाती है। इससे परिवार में जनांकिकी असन्तुलन की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। श्रम योग्य पुरूष जनसंख्या के उत्प्रवास से महिलाओं के ऊपर घर एवं बाहर के कार्यों का बोझ बढ़ जाता है, जिससे वृद्धों की समुचित देख भाल नहीं हो पाती। पर्वतीय भाग के वृद्धों में शारीरिक परिवर्तन तीव्र गति से होता है और शरीर की रोधक शक्ति तेजी से क्षीण होने लगती है। इस कारण बीमारी से लड़ने में बहुत ज्यादा कठिनाई होती है। वृद्ध महिलाओं में तो विशेषकर हड्डियां इतनी पतली एवं कमजोर पड़ जाती हैं कि उनकी स्थिति खतरनाक होने लगती है। विषम भूतल एवं जनसंख्या बिखराव के कारण दूरदराज के गांवों में रहने वाले परिवार साधनों की कमी के कारण प्रायः समय पर वृद्ध रोगियों को चिकित्सक के पास नहीं पहुंचा पाते इस कारण समय से चिकित्सकीय सुविधा नहीं मिल पाती है। प्रायः देखा गया है कि वृद्ध रोगियों के प्रति चिकित्सकों का दृष्टिकोण भी सकारात्मक नहीं होता और चिकित्सकों की दृष्टि में वृद्ध रोगी बहुत आशापूर्ण रोगी नहीं होते। वृद्धों में रोगों के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई न देने के कारण चिकित्सक उनकी अवहेलना करने लगते हैं। आर्थिक दृष्टि से भी वृद्ध रोगी चिकित्सकों के लिए बहुत लाभप्रद नहीं होते। वर्तमान में परिवार भी बच्चों व क्रियाशील सदस्यों की तुलना में वृद्ध रोगियों के चिकित्सा में बहुत रूचि नहीं ले रहे हैं। इस प्रकार के निर्णय में प्रायः वृद्धजन भी त्याग की भावना को दृष्टिगोचर रखते हुए उनके निर्णय में सहयोग देते हैं।

वर्तमान समय में नगरीकरण, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया ने ग्रामीण परिवार की संरचना एवं प्रकार्य को निश्चित रूप से प्रभावित किया है। जिन पारम्परिक ग्रामीण परिवारों में वृद्धनों का संतोषजनक सामन्जस्य हो जाता था। अब तेजी से परिवर्तित हो रहा है। ये परिवर्तन वृद्धों की देखभाल करने की पारिवारिक क्षमता को कम कर रहे हैं। परिवार में हो रहे इन परिवर्तनों का स्पष्ट प्रभाव वृद्धों के जीवन पर दिखाई देने लगा है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण युवा वर्ग का नगरों की ओर पलायन भी ग्रामीण परिवारों में वृद्धजनों की स्थिति को प्रभावित कर रहा हैं प्रव्रजन की प्रक्रिया के अनुसार ग्रामीण युवा प्रथम स्तर पर अकेला प्रव्रजन करता है और दूसरे स्तर पर पत्नी व बच्चों के साथ प्रव्रजन करता है। ऐसी स्थिति में गांव में बचे हुए बड़े-बूढ़े एक सदस्य वाली या पति पत्नी वाली गृहस्थी में रह जाते हैं और परिवार खाली घोसले की तरह दिखने लगता है इससे परिवार में सूनापन आ जाता है।

वृद्ध की अवधारणा : वृद्ध किसे माना जाय इसको लेकर समाज वैज्ञानिकों की अपनी अलग-अलग अवधारणाएं हैं। आयु को वृद्धावस्था का यदि आधार माना जाये तो एक व्यक्ति ७० वर्ष की आयु में भी स्वस्थ्य एवं सुखी जीवन व्यतीत करता है और उसमें वृद्धावस्था के लक्षण अपेक्षाकृत कम दिखाई देते हैं। वहीं कई व्यक्ति ५० वर्ष की आयु में ही वृद्ध दिखने लगते हैं और उनमें वृद्धावस्था के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। इसलिए वृद्ध किसे माना जाय यह एक जटिल समस्या है। कभी-कभी वृद्धावस्था का प्रारम्भ उन विभिन्न दशाओं या परिवर्तनों से माना जाता है जो व्यक्ति के जीवन में शनैःशनैः घटित होता है, जैसे काले-भूरे बालों का सफेद होना, चेहरे पर झुर्रियों का प्रकट होना, स्वतंत्र रूप से कार्य करने में कठिनाई का अनुभव करना, कार्यरत व्यक्ति का अवकाश ग्रहण कर लेना आदि वृद्धावस्था के सूचक माने जाते हैं। वृद्ध के अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य में एक महत्वपूर्ण समस्या यह भी आती है कि एक व्यक्ति को किस उम्र में वृद्ध कहा जाय, यह स्वयं में एक विवादास्पद विषय है। चिकित्सा वैज्ञानिक या जैविक वैज्ञानिक वृद्धावस्था के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं कर पाये हैं। विभिन्न देशों में वृद्धावस्था की

आयु अलग-अलग है। विकसित देशों में जहां पर जीवन संभाव्यता अपेक्षाकृत अधिक है वहां पर ६५ वर्ष की आयु पार करने के बाद ही लोग वृद्धावस्था की श्रेणी में आते हैं। विकासशील देशों में जहां पर जीवन संभाव्यता अपेक्षाकृत कम होती हैं, वहां पर वृद्धावस्था की आयु ६० वर्ष मानी गई है। इन दोनों ही सन्दर्भों को यदि देखा जाय तो वृद्ध होने की परिभाषा अस्पष्ट प्रतीत होती है। वास्तव में वृद्ध होना अकस्मात नहीं होता, यह तो बहुत ही जटिल व क्रमिक प्रक्रिया है। वृद्धावस्था का समाजशास्त्र इस तथ्य को स्वीकार करता है कि वृद्ध बनने की शारीरिक प्रक्रिया के अनेक सामाजिक व सांस्कृतिक आयाम होते हैं। आयु एक सांस्कृतिक कोटि है और इसका अर्थ व महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से और विभिन्न संस्कृतियों में प्रायः परिवर्तित होता रहता है।

विभिन्न समाज वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों एवं मानवशास्त्रियों ने अपने अपने दृष्टिकोण से वृद्ध की अवधारणा को परिभाषित करने का प्रयास किया है। चार्ल्स बेकर[२] के अनुसार वृद्धावस्था व्यक्ति के उन परिवर्तनों का द्योतक है जो समय के परागमन का परिणाम होता है। ये परिवर्तन दैहिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं आर्थिक हो सकते हैं। बेकर के ही अनुसार, वृद्धावस्था एनावोलिक एवं सेटावोलिक अवयवों का सम्मिलित रूप है। जीवन के प्रारम्भिक अवस्था में एनावोलिक अवयवों का विशेष योगदान होता है और इसी से व्यक्ति का शारीरिक विकास होता है। जीवन की अन्तिम अवस्था में सेटावोलिक अवयव विशेष रूप से क्रियाशील हो जाते हैं। जीवन के मध्य में उपर्युक्त दोनों अवयवों के मध्य संतुलन बना रहता है। स्टिगलिट्ज[३] के अनुसार वृद्धावस्था व्यक्ति के जीवन में एक प्रकार का समय तत्व है जो मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है और इसमें व्यक्ति के शारीरिक गठन का विशेष योगदान होता है। डबलिन[४] के अनुसार वृद्धावस्था वे शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन हैं जो जीवन काल के मुख्य भाग के व्यतीत हो जाने के बाद घटित होते हैं। इस प्रकार वृद्धावस्था का आगमन वस्तुतः जीवन के सर्वाधिक गतिशील एवं क्षमतापूर्ण काल के पश्चात क्रमशः आयु वृद्धि के साथ-साथ होते शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों का परिणाम है।

वृद्धावस्था के समाजशास्त्र की अवधारणात्मक व्याख्या एवं अध्ययन को दृष्टिगत रखते हुए विगत कुछ वर्षों में लिंग (जेण्डर) की भांति आयु के आधार पर भी प्राकृतिक विभाजन को स्वीकार किया जाने लगा है और वृद्ध व्यक्तियों को एक श्रेणी के रूप में देखा जाने लगा है परन्तु ये श्रेणी समरूपी श्रेणी नहीं है। इसमें विभिन्नतायें परिलक्षित होती हैं। सोशल जेरन्टोलॉजिस्टस भी इसी तथ्य पर बल देते हैं कि वृद्धों को एक समरूपी श्रेणी मानकर अध्ययन नहीं किया जाना चाहिए। जब हम ग्रामीण परिवारों के वृद्धजनों का अध्ययन करते हैं तो लिंग के आधार पर वृद्धों का वर्गीकरण पुरूष वृद्ध एवं महिला वृद्ध के रूप में किया जा सकता है। ये अपने सामाजिक प्रस्थिति एवं जीवन मूल्य की भिन्नता के कारण एक पृथक श्रेणी का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार संगठित क्षेत्र से कार्य मुक्त वृद्ध एवं गांवों के मूल निवासी वृद्ध। पेंशन धारक वृद्ध एवं पेंशन विहीन वृद्ध। संयुक्त परिवार के वृद्ध एवं एकाकी परिवार के वृद्ध। आर्थिक रूप से सम्पन्न वृद्ध एवं आर्थिक रूप से विपन्न वृद्ध। भौतिकवादी दृष्टिकोण के वृद्ध तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण के वृद्ध। इसी प्रकार धर्म जाति एवं भूमि को भी आधार मानकर वर्गीकरण करते हुए ग्रामीण वृद्धों का अध्ययन किया जा सकता है। भारत में ये विधा अन्य विधाओं की तुलना में अभी शैशव काल में है, जैसे-जैसे इस विधा को लेकर अध्ययनकर्ताओं में रूचि बढ़ेगी वैसे-वैसे ग्रामीण वृद्ध व्यक्तियों की श्रेणियों में भी वृद्धि होगी और वृद्धावस्था के जो पक्ष अभी तक अन्वेषित नहीं हुए हैं वे भी शोध के विषय बनेंगे।

जनांकिकीय परिदृश्य : जनसांख्यिकीय परिवर्तन की प्रक्रिया में वृद्धों की बढ़ती जनसंख्या एक महत्वपूर्ण पहलू है। पूर्व में विकसित देश वृद्धों की बढ़ती जनसंख्या की दृष्टि से आगे रहे हैं और यह देश वृद्धों की बढ़ती जनसंख्या के परिणामों को भी देख चुके हैं। कुछ वैज्ञानिक नवीन वैज्ञानिक तकनीकी, जीवन रक्षक दवाओं के अविष्कार, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी एवं रोगों के प्रभावी उपचार को महत्वपूर्ण मानते हुये इसे आधुनिक सभ्यता की महान उपलब्धि के रूप में देखते हैं। वहीं पर तीसरी दुनियां के अनेक देशों के वृद्धों की मूल एवं तुलनात्मक दोनों ही प्रकार की जनसंख्या वृद्धि को चिन्ता का विषय माना जाने लगा है। वृद्धों की जनसंख्या में इस प्रकार की वृद्धि पिछले कुछ वर्षों में जन्मदर एवं मृत्युदर में हो रहे परिवर्तन का परिणाम है। १९९० में विकासशील देशों में ५० वर्ष से अधिक आयु के लोगों की जनसंख्या विकसित देशों की अपेक्षा अधिक बढ़ी है। वृद्धावस्था पर उपलब्ध तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मृत्युदर की तुलना में वृद्धावस्था की प्रक्रिया में जन्मदर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वृद्धावस्था : भारतीय परिदृश्य - भारत में वृद्धावस्था को द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है और इनके विश्लेषण के प्रमुख परिप्रेक्ष्य भारत में वृद्ध जनसंख्या की प्रवृत्तियाँ हैं, जिन्हें विभिन्न आधारों पर देखने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत सारणियों में प्रयुक्त आंकड़े भारतीय जनगणना पर आधारित हैं।

सारणी १

विभिन्न वर्षों में वृद्धों की जनसंख्या का विवरण[५]

आयु	संख्या मिलियन में					
	१९६१	१९७१	१९८१	१९९१	२००१	२०११
६०+	२५	३३	४३	५७	७७	१०४
७०+	९	११	१५	२१	२९	४०
८०+	२	३	४	६	८	११
९०+	.५	.७	.७	१	१.८	३
१००+	.०१	.०१	.०१	.०१	.०१	.६

सारणी संख्या १ से स्पष्ट है कि २००१ की जनगणना के अनुसार भारत में वृद्धों की जनसंख्या ०४ मिलियन है। १९६१ में वृद्धों की जनसंख्या मात्र २५ मिलियन थी। यदि विभिन्न जनगणना वर्षों में वृद्धों की जनसंख्या पीछे के जनगणना वर्षों की तुलना में निरन्तर वृद्धि की ओर अग्रसर रही है। वर्ष २००१ से २०११ के मध्य वृद्धों की जनसंख्या में सर्वाधिक २७ मिलियन की वृद्धि हुई है। इसी दशक में वृद्धों की जनसंख्या के बढ़ने की गति ३६ प्रतिशत रही है जबकि सामान्य जनसंख्या बढ़ने की गति मात्र १८ प्रतिशत रही है।

सारणी २

२०११ की जनगणना के अनुसार ग्रामीण वृद्धों में लिंग अनुपात[६]

आयु	लिंगअनुपात प्रशित में		
	व्यक्ति	पुरूष	महिलाएँ
६०-६९	६१.६८	४८.९७	५१.०३
७०-७९	२७.५५	४९.९८	५०.०२
८०-८९	८.२१	४८.०२	५१.९८
९०-९९	२.०१	४६.४५	५३.५५
१००+	०.५६	४७.४८	५२.५२

उपर्युक्त सारणी २ से स्पष्ट है कि ग्रामीण भारत में २०११ की जनगणना के अनुसार वृद्ध महिलाओं की संख्या पुरूषों की तुलना में अधिक है। २००१ की जनगणना तक लिंग अनुपात पुरूषों के पक्ष में था, इसका प्रमुख कारण जन्म के समय महिलाओं की कम जीवन सम्भावना, शिशुओं, बच्चों एवं वयस्कों के मध्य अधिक महिला मृत्यु दर को माना जा सकता है। वर्तमान में इन कारणों को कम करके महिलाओं के प्रतिशत को बढ़ाया जा सकता है। २०११ की जनगणना के आंकड़ों से विदित होता है कि भारत में कुल वृद्धों के ८.५८ प्रतिशत में से पुरूष वुद्धों का प्रतिशत ४९.१८ है जबकि महिलाओं का प्रतिशत ५०.८२ है। ग्रामीण एवं नगरीय आधार पर यदि जनसंख्या के परिदृश्य को देखा जाय तो स्पष्ट है कि ग्रामीण वृद्धों का प्रतिशत ८.७६ है जिसमें से पुरूषों का प्रतिशत ८.४१ तथा महिलाओं का प्रतिशत ९.१८ है। नगरीय वृद्धों का प्रतिशत ८.१० है जिसमें ७.७१ प्रतिशत पुरूष एवं ८.५२ प्रतिशत महिलायें हैं। इसप्रकार सम्पूर्ण आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत के नगरीय एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में वृद्ध महिलाओं का प्रतिशत बढ़ा है। यदि तुलनात्मक आधार पर देखा जाए तो ग्रामीण क्षेत्रों में वृद्ध महिलाओं का प्रतिशत अधिक है।

निष्कर्षः भारतीय परम्परागत संयुक्त परिवार में वृद्धजनों को पर्याप्त सुरक्षा थी तथा आयु एवं वरिष्ठता की महत्ता के कारण परिवार शक्ति संरचना में भी वृद्धों को उत्तम स्थान प्राप्त था। आज अन्य संस्थाओं की भांति ग्रामीण परिवार भी पश्चिम की भौतिकवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित हुआ है और ग्रामीण परिवार में नये प्रकार के मूल्य एवं सम्बन्धों के प्रतिमान उभरे हैं। जिन पारम्परिक ग्रामीण परिवारों में वृद्धजनों का संतोषजनक समान्जस्य हो जाता था अब तेजी से परिवर्तित हो रहा है। ग्रामीण युवा वर्ग का नगरों की ओर पलायन भी ग्रामीण परिवारों में वृद्धजनों की स्थिति को प्रभावित कर रहा है। गाँवों में लगभग ५० प्रतिशत वृद्ध गरीबी रेखा के नीचे हैं उमें से ६६ प्रतिशत वृद्ध दिहाड़ी पर अपना जीवन-यापन करते हैं बढ़ती उम्र एवं गिरते स्वास्थ्य के कारण इस वर्ग के वृद्धों के लिए जीवन- यापन एक महत्वपूर्ण समस्या होती है। इन सबके बाद भी भारतीय ग्रामीण परिवार आज भी वृद्धों की देख-रेख एवं पोषण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण संस्था है। ग्रामीण परिवार के वृद्धों के मन में ये विश्वास रहता है कि वह अकेला नहीं है, परिवार पड़ोस एवं गांव का आज भी वृद्धजनों के प्रति लगाव होता है।

सन्दर्भ

१. पाण्डेय, एस.एस., 'कुमाऊँ में प्रव्रजन की प्रवृत्तियां एवं परिणाम', सोसायटी एण्ड डेवलपमेन्ट जर्नल, एकेडमी फॅार सोशल डेवलपमेन्ट, कानपुर नं. १ (२), २००३, पृ. १८१-१८६

२. बेकर, चार्ल्स, 'फिजिकल फॅन्कशनिंग ऑफ ओल्डर पीपुल टूवर्डस वेटर अण्डर स्टैडिंग ऑफ द एजिंग', कौन्सिल ऑफ सोशल वर्क एजूकेशन, न्यूयार्क, १९५९, पृ. ९

३. स्टिगलिट्स, ई.जे., 'द पर्सनल चैलेन्ज ऑफ एजिंगः वायोलॉजिकल चैलेन्ज एण्ड मेंटेनन्स ऑफ हेल्थ, सी. टिविट्स द्वारा उद्धत एजिंग इन टुडेज सोसायटी, प्रिंटिस हॉल, एन.जे., १९६०, पृ. ११९

४. डबलिन, लुई, 'द फैक्टस ऑफ लाइफ', मैकमिलन, न्यूयार्क १९५१, पृ. २२६

५. राजन इरूडिया, 'पापुलेशन ऐजिंग, हेल्थ एण्ड सोशल सिक्यूरिटी इन इंडिया', डिसकशन पेपर सीरीज, सी.आर.ई.आई., मार्च १३, २००७ नं. ३, पृ. २-३

६. www.censusindia.govt.in

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

समाज में अंगदान की भूमिका

❑ **आदित्य प्रताप सिंह भदौरिया**

यह सोचना स्वभाविक है कि मृत्यु के बाद जिन्दगी का अंत हो जाता है, पर एक इंसान मरने के बाद भी जी सकता है, अपने अंगों का दान देकर। अंगदान से बड़ा कोई दान नही है। सभी धर्मग्रंथों में कई प्रकार के दानों का उल्लेख मिलता है। लेकिन इन सभी दानों में अंगदान सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि अंगदान व्यक्ति को नया जीवन प्रदान करता है। जीवों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। व्यक्ति चाहे वह निर्धन हो या धनी शरीर चिरकाल तक जीवित नही रहता सकता है। मानव शरीर पंच तत्वों का संयोग है और मृत्यु के पश्चात यह शरीर इन्हीं तत्वों में विलीन हो जाता है ऐसी मान्यता है। मानव जीवन में नाशवान शरीर से अधिक महत्व आत्मा का है, जो अमर है। फिर भी इस भौतिक शरीर से लोगों को लगाव होता है, जो कि मृत्यु उपरांत नष्ट हो जाता है। यदि समय रहते अपने शरीर या शरीर के अंगों का दान किया जाता है तो जरूरत मंद व्यक्ति को जिसे अंग की आवश्यकता है अंग प्रत्यारोपण के पश्चात् उसे स्वस्थ्य अंग प्राप्त हो जाएगा, जिसके परिणामतः वह अपना जीवन एक स्वस्थ्य व्यक्ति के समान जी सकेगा। मानव सभ्यता में जीवन बचाने से बड़ा न कोई धर्म है और न कोई कर्म। अंगदान का अर्थ है - किसी व्यक्ति को अंग का दान कर जीवन का उपहार देना। यानि जीते-जी यह प्रतिज्ञा करना कि मृत्यु के बाद हमारे अंग किसी मरते हुये मरीज को दान दिये जाऐं ताकि उस मरीज को नया जीवन जीने का अवसर मिल पाये। अंगदान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति (मृत और कभी-कभी जीवित भी) से स्वस्थ अंगों एवं टिशुओं को निकाल लिया जाता है और इन अंगों को किसी दूसरे जरूरतमंद व्यक्ति में प्रत्यारोपण कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया के द्वारा दूसरे व्यक्ति का जीवन बचाया जा सकता है।

बदलते हुए सामाजिक परिवेश में जहां हमारे विचारों और सामाजिक भूमिका में परिवर्तन हो रहा है, वहां अंगदान जैसे पुनीत कार्य को व्यक्ति विशेष तक ही सीमित नही रखना है इसे समाज के उच्च से उच्चतम् और निम्न से निम्नतम् व्यक्ति की पहुंच में लाना होगा। तभी हम अपने पूर्वजों तथा उन मनीषियों के विचारों, संकल्पों को सापेक्ष रूप चरितार्थ कर सकेंगे जिन्होंने विश्व कल्याण की भावना से अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, कभी शीष काटकर तो कभी मेरूदण्ड हेतु देह त्याग कर। दान की यह भावना ''सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय'' के सिद्धातों का ही अनुसरण है, जो हमें विरासत में मिला है। इस विरासत रूपी भावना को प्रकट कर पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित कर संचालित करना होगा तभी हम अंगदान की सार्थकता को सिद्ध कर पायेगें। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत समाज में अंगदान की महत्ता को प्रकाशित किया गया है।

पूरे विश्व में अंगदान दो प्रकार से किए जाते हैं। एक जीवित व्यक्ति के द्वारा और दूसरा ब्रेन डेड घोषित किए गए रोगी के द्वारा। जीवित व्यक्ति अपने लीवर और आँतों के अंश और दो किडनी में से एक किडनी को दान में दे सकता है, वह भी सिर्फ रक्त सम्बन्धियों को।[१] सामान्य प्रक्रिया के रूप में मानव शरीर के अंगदान दो प्रकार से होते हैं। प्रथम अंगदान, द्वितीय टिश्यू दान (ऊतक दान)। अंगदान में शरीर के अंदरूनी अंग जैसे - किडनी, यकृत, हृदय, आँतें, अग्नाशय, आदि अंगों का दान किया जा सकता है और टिश्यू (ऊतक) दान में आँखें, अस्थि एवं त्वचा का भी दान होता है। आमतौर पर अंगदान मृत्यु के बाद किया जाता है, लेकिन कुछ अंगदान और टिश्यू (ऊतक) दान जीवित व्यक्ति के भी किये जा सकते हैं।[२] प्रतिवर्ष सैकड़ों भारतीय रोगी अंग प्रत्यारोपण के अभाव में मर जाते हैं इसकी वजह है अंग दान करने वाले और प्रत्यारोपण का इंतजार कर रहे लोगों के बीच असंतुलन। यानि अंगदान करने वाले कम किन्तु अंग प्राप्त करने वाले रोगी अधिक हैं। भारत में अंगदान से सम्बन्धित प्रारम्भिक आंकड़े दर्शाते हैं कि :[३]

१ भारत में सन् १९६७ में मुम्बई के के.ई.एम. अस्पताल में पहला गुर्दा प्रत्यारोपण हुआ था।
२ सन् १९९४ में दिल्ली स्थित भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) में पहली बार हृदय का प्रत्यारोपण हुआ था।
३ सन् १९९५ में चेन्नई के अपोलो अस्पताल में पहली बार

❑ **शोध अध्येता समाजशास्त्र जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.) एवं सामुदायिक चिकित्सा विभाग, एम.जी.एम. मेडीकल कॉलेज, इन्दौर (म.प्र.)**

मल्टीआर्गन प्रत्यारोपण हुआ था।

४ सन् १९९८ में मद्रास मेडिकल मिशन अस्पताल में पहली बार फेफडों का प्रत्यारोपण हुआ था।

५ सन् १९९९ में अहमदाबाद में पहली बार आंतों का प्रत्यारोपण हुआ था।

आज की परिस्थिति में अंगदान के संदर्भ में भारत के आँकड़े चौकाने वाले हैं :[४]

१ प्रतिवर्ष २.१ लाख भारतीयों को गुर्दा प्रत्यारोपण की जरूरत होती है लेकिन ३०००-४००० हजार गुर्दा प्रत्यारोपण ही हो पाते हैं। इसके लिए देश में १२० प्रत्यारोपण केन्द्र हैं।

२ हृदय प्रत्यारोपण के मामलें में देश में प्रतिवर्ष ५० हजार लोगों को हृदय प्रत्यारोपण की आवश्यकता हैं, लेकिन प्रतिवर्ष १५-२० लोगों को ही हृदय प्रत्यारोपण हो पाता है।

३ लीवर प्रत्यारोपण के विषय में ५० हजार लोगों को लीवर की आवश्यकता है सिर्फ ७०० लोगों को ही मिल पाता है।

४ नेशनल प्रोग्राम कंट्रोल आँफ लाईसेन्स २०१२-१३ की रिपोर्ट्स के अनुसार देश में प्रतिवर्ष १.०० लाख लोगों को कॉर्नियॉ की जरूरत होती है, लेकिन ४४१७ कॉर्नियॉ ही उपलब्ध हो पाती हैं।

विश्व में अंगदान की स्थिति[५]:

स्पेन	३४
एशिया	३३५
फ्रांस	२५
अमेरिका	२४
आस्ट्रेलिया	२३
इटली	२०
जर्मनी	१६
अर्जेंटीना	१२
भारत	०.३४

(यह आंकड़े प्रति दस लाख आबादी पर अंगदान की स्थिति दर्शाते हैं, जोकि चिन्ताजनक हैं।)

भारत में अंगदान की स्थिति[६] :-

तमिलनाडु	१३६
केरल	५८
महाराष्ट्र	५२
आंध्रप्रदेश	५२
कर्नाटक	३९
गुजरात	२८
दिल्ली	२०
उत्तर प्रदेश	०७
चण्डीगढ़	०६
पांडुचेरी	१.३

(यह आंकड़े प्रति १० लाख आबादी पर अंगदान करने वालों की संख्या ०.३४ है।)

भारत सरकार ने सन् १९९४ में मानव अंग प्रत्यारोपण (टी.एच.ओ.) अधिनियम- १९९४ की धारा ४२ पारित किया।[७] मानव अंग प्रत्यारोपण (टी.एच.ओ.) अधिनियम- १९९४ कानून के अन्तर्गत असम्बद्ध प्रत्यारोपण को गैर कानूनी बना दिया गया जिसमें कि अंगदान का व्यवसायीकरण कानूनी अपराध की श्रेणी में रखा गया। इस अधिनियम में यह सुनिश्चित किया गया कि अंगदान सिर्फ उसी अस्पताल में किया जा सकता है, जहां उसके प्रत्यारोपण करने की सुविधा हो। मस्तिष्क मृत्यु (ब्रेन डेथ) की स्वीकृति मिलने के बाद ही मृतक के अंगों का दान वैधानिक है।[८]

भारत सरकार ने मानव अंग प्रत्यारोपण (टी.एच.ओ.) २०११ में संशोधित अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम में यह संशोधन किया गया कि अंगदान को किसी भी आई. सी.यू. अस्पतालों में किया जा सकता है, यानि उस अस्पताल में प्रत्यारोपण न भी होता हो। लेकिन अस्पताल में आई.सी.यू. हो वहां अंगदान किया जा सकता है। इस अधिनियम में ऊतक प्रत्यारोपण को भी मंजूरी प्रदान की गई।[९]

भारत सरकार ने मानव अंग प्रत्यारोपण (टी.एच.ओ.) २०१४ में पुनः संशोधित किया। जिसमे मस्तिष्क मृत्यु (ब्रेन डेथ) को कानूनी करार दिया और यह सुनिश्चित किया गया कि जो मरीज ब्रेन डेथ हो जाते हैं उन्हे डॉक्टर वेन्टिलेटरर्स पर ले जाएं डॉक्टरों का एक पैनल इस बात की पुष्टि करता है कि उसकी ब्रेन डेथ हो चुकी हो। ०६ घण्टे के बाद पुनः ब्रेन डेथ पुष्टि की जाती है तद्उपरान्त परिजनों की इच्छा लिखित सहमति अधिनियम के पद क्रमांक- ८ के नियम ५ (१) ख के अनुसार दी जाती है। कानूनी प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद ही मरने वाले के शरीर से अंगों को निकाल सकते हैं।[१०]

भारत सरकार ने विभिन्न संशोधनों (१९९४-२०१४) के द्वारा अनेकों ऐसे प्रावधान किये हैं जिससे अंगदान प्रक्रिया को सरल बनाया जा सके और इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि इसका दुरूपयोग न हो। इस प्रक्रिया को एक निश्चित समय में पूरा करना होता है। ज्यादा समय होने पर अंग खराब होने शुरू हो जाते हैं। किसी भी अंग को डोनर के शरीर से निकालने

के बाद जल्द-से-जल्द प्रत्यारोपण करना होता है। अंग जितना जल्दी प्रत्यारोपित होगा, अंग के काम करने की सम्भावनाएं उतनी ही अधिक होगीं।[११]

भारत में अंग प्रत्यारोपण की दिशा में सबसे बड़ी समस्या जागरूकता की कमी और अंगदान प्रत्यारोपण के लिए पर्याप्त आधारभूत संरचना न होना है जिसके कारण अंगदान एवं प्रत्यारोपण की गति धीमी है। लोगों के बीच इसे लेकर कई भ्रान्तियां भी हैं। इन भ्रान्तियों को समाप्त किया जाना आवश्यक है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने मन की बात में अंगदान को महादान कहा है। अंगदान से अमरता और किसी को नया जीवन मिल सकता है तथा मूल्यवान जिन्दगियों को बचाया जा सकता है। राष्ट्रीय अंग और ऊतक प्रत्यारोपण संगठन द्वारा भी अंगदान की जागरूकता बढ़ाने पर जोर दिया गया।[१२]

इन्दौर सोसायटी फॉर ऑर्गन डोनेशन ने पॉच महिनों में आठ बार ग्रीन कॉरिडोर बनाकर अपने आप में यह साबित कर दिया है कि लोगों को जागरूक करने के बाद अंगदान को बढ़ावा दिया जा सकता हैं।[१३]

भारत में अंगदान की व्यापक सम्भावनाऐं हैं क्योंकि देश में सड़क दुर्घटनाओं की संख्या बहुत अधिक है। किसी भी बड़े शहर में ८-१० व्यक्तियों की मृत्यु ब्रेन डेथ के कारण होती है। भारत में प्रतिवर्ष सड़क दुर्घटनाओं में करीब १.४ लाख लोगों की मृत्यु होती है। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान दिल्ली के द्वारा एक अध्ययन के अनुसार ६५ प्रतिशत मृत्यु सिर में गंभीर चोट लगने से होती है, जिससे ६० हजार लोग ब्रेन डेथ होते हैं। यदि इनका समय पर अंगदान किया जा सके तो हजारों लोगों को पुर्नजीवन दिया जा सकता है।

अंगदान करने से सम्बन्धित वैधानिक पहलू : कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी उम्र, जाति, लिंग का हो वह अंगदान कर सकता है। यदि वह १८ वर्ष से कम उम्र का है तो उसके लिए माता पिता अथवा कानूनी अभिभावक की सहमति आवश्यक है। स्वास्थ्य परीक्षण के उपरांत ही अंगदान लिये जाते हैं। यद्यपि जिन लोगों को एच.आई.वी., हेपेटाईटिस बी एवं सी आदि हो तो उनके अंग नही लिये जा सकते हैं।[१४]

राष्ट्रीय अंग एवं ऊतक प्रत्यारोपण संगठन (नोटो) के माध्यम से विभिन्न अस्पतालों में अंग एवं ऊतक दान का कार्य किया जाता है जिसमें विभिन्न एन.जी.ओ. जो अंगदान से सम्बन्धित कार्य कर रहे हैं वो भी अंगदान करने की जागरूकता फैलाने का कार्य करते हैं। अंगदान से सम्बन्धित विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी ऐजेंसियां भी कार्यरत हैं। इनमें कही भी जाकर अंगदान सम्बन्धी फार्म भर सकते हैं, जो व्यक्ति मृत्यु के बाद अपने अंग को दान करना चाहते हैं। उस अंग का नाम अंकित कर दें तो केवल वही अंग लिया जायेगा जो फार्म में भरा गया था। फार्म भरते समय एक डोनर कार्ड मिलता है। इस डोनर कार्ड की कोई लीगल वैल्यु नहीं होती। आप अपने निकट सम्बन्धियों को इस बात की जानकारी दे सकते हैं कि मैनें अमुक-अमुक अंगों का दान कर दिया है। मेरी मृत्यु के बाद परिजनों को यह काम पूरा करना है। अगर फार्म नहीं भी भरा है, तब भी अंगदान किया जा सकता है। अपने निकट सम्बन्धियों को इच्छा बताकर रखें। मृत्यु उपरान्त परिजन किसी अस्पताल में जाकर अंगदान कर सकते हैं। अंगदान करते वक्त परिजनों का कोई पैसा खर्च नहीं होता। इन अंगों को डॉक्टर जल्द-से-जल्द ऐसे मरीजों में प्रत्यारोपित कर देते हैं, जिन्हे पहले से जरूरत हो। अंग प्रत्यारोपण करने वाले अस्पतालों के पास एक वेटिंग लिस्ट होती है उसी क्रम के हिसाब से जिस मरीज का नंबर होता है उसके अंगों को प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। अंग प्रत्यारोपण करते समय मैंचिग के लिये ब्लड ग्रुप एवं कई दूसरे टेस्ट किये जाते हैं। अगर सब कुछ ठीक है तो अंग प्रत्यारोपण कर दिया जाता है। अगर मैंचिंग नही होती है तो वेटिंग लिस्ट क्रमानुसार अगले मरीज के साथ मैंचिंग किया जाकर अंग प्रत्यारोपण कर दिया जाता है।[१५]

अंगदान का महत्व :- भारतीय धर्म ग्रंथों में अंगदान से सम्बन्धित अनेकानेक संदर्भ प्राप्त हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार भगवान गणेश के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक हथिनी के नवजात बच्चे का सिर काटकर गणेशजी के धड़ से जोड़ दिया गया था। ऋषि दधीचि ने अपने मेरूदण्ड का दान कर इन्द्र को वज्र प्रदान किया।[१६] दानवीर कर्ण ने कवच और कुण्डल का दान इन्द्र को किया। श्रीमद् भगवतगीता में कहा गया है कि-

''वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नर्वानि गृहति नरोऽपराणि।
तथा भारीराणि विहाय जीवान्यि, न्यान संभ्राति नवानि देही।।''[१७]

जिसका अर्थ है जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर या व्यर्थ के शरीर को त्याग कर नवीन शरीर धारण कर लेती है।

किसी व्यक्ति के मुख्य क्रियाशील अंगों के खराब हो जाने की वजह से देश में प्रतिवर्ष कम-से-कम ५ लाख से ज्यादा व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। अंग प्रत्यारोपित व्यक्ति के जीवन में अंगदान करने वाला व्यक्ति ईश्वर के समतुल्य भूमिका निभाता है। एक व्यक्ति अपने क्रियाशील अंगों का दान करके ०८ व्यक्तियों के जीवन को बचा सकता है। चिकित्सकों व

शोधकर्ताओं की लगन एवं बर्षों की मेहनत से अंग प्रत्यारोपण करने में सफलता प्राप्त हुई है। वर्षों तक कई असफलताओं के साथ प्रयोग किए गए तब कहीं जाकर अंग प्रत्यारोपण प्रक्रिया में सफलता प्राप्त हुई है। आधुनिक समय में नई तकनीकि और उपचार के विकास की वजह से अंग प्रत्यारोपण की जरूरत लगातार बढ़ रही है।[१८]

अंगदान के द्वारा मृतक के अगों को दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रत्यारोपित अंग को देखकर परिजन सुख की अनुभूति कर सकते हैं। इससे वे अपने सम्बन्धी को सदैव याद करते रहेंगे। यही मृतक के प्रति वास्तविक सुखद श्रद्धांजली होगी।

सन्दर्भ

१. अंगदानः गरीबदाता, अमीर पाता- बी.बी.सी.(हिन्दी) http://www.bbc.com/hindi/india/2015/09/150908-organ-donation part -2SRA
२. किन अंगों का कर सकते हैं दान - https://hiin.facebook.com/savegirlchild.save euture/posts/3657766525 accessed 07/03/16
३. किस राज्य में होता है सबसे ज्यादा अंगदान http:www.bbc.com/hindi/india/20/05/09/150828 _organ_donation_part_1_sra accessed 02/03/16
४. किस राज्य में होता है सबसे ज्यादा अंगदान http:www.bbc.com/hindi/india/20/05/09/150828 _organ_donation_part_1_sra accessed 02/03/16
५. वही
६. वही।
७. www.notto.nic.in/faqs.htm
८. THOA Act 1994 Government of India clause Act 42
९. Nota Act 2011 Government of India clause Act 42
१०. Nota Act 2014 Government of India clause Act 42 Section 24
११. Nota Act 2014 Government of India clause Act 42 Section 24
१२. https://organdonationindore.org/index.phpPage= faq&lang=hi
१३. प्रधानमंत्री मान. श्री नरेन्द्र मोदीजी, मन की बात, २५/१०/२०१५ रविवार १२.०० बजे, ऑल इण्डिया रेडियो। www.samaylive.com
१४. अंगदान और प्रत्यारोपण से मिलता है दूसरा जीवन डॉ. एच.आर. के रावमूर्ति पत्र सूचना कार्यालय कोलकाता में निदेशक (मीडिया एवं संचार) available at: http://pib/in/newsite/hindifeature?-35269 accussed_ 15/02/16_ 1.30 PM
१५. जनता दरवार : अंगदान- जीवन का उपहार jdarbar blogspot.in/2011/04/blog-bost.html? m=1
१६. स्कन्द पुराण एवं पौराणिक कथाओं के अनुसार महर्षि दधिचीजजचरू // m.facebook.com/desilutyens/ posts/ 94965206598912_25/02/16
१७. श्रीमद भगवतगीत अध्याय-२, श्लोक २२।
१८. http://www.hindikiduniy.com/events/organ-dounation-day

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

वंचित वर्ग के युवाओं के अंबेडकरवादी चिंतन पर आधुनिकीकरण का प्रभाव

❑ **डॉ. सादिक मोहम्मद खॉन**

भारतीय वंचित वर्ग समूह के युवाओं में आधुनिकीकरण की बयारों का प्रभाव, उनके सामाजिक,आर्थिक,मानसिक व वैचारिक जीवन पर पड़ रहा है। भारतीय वंचित वर्ग का युवा बदल रहा है, यह बदलाव वैचारिक रूप में उनके सामाजिक प्रस्थिति संबंधों, बौद्धिकता, सामाजिक व सांस्कृतिक प्रतिमानो और व्यक्तिगत जीवन में आया है। डॉ.अम्बेडकर द्वारा वंचित समूह के लिये प्रतिपादित सामाजिक व आर्थिक चिंतन की प्रासंगिकता को वर्तमान प्ररिप्रेक्ष्य में आधुनिकीकरण ने प्रभावित किया है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत वंचित वर्ग के युवाओं के अंबेडकरवादी चिंतन पर आधुनिकीकरण के प्रभाव का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रादुर्भाव के साथ ही सम्पूर्ण विश्व में वैचारिक परिवर्तन बहुत व्यापक हो गए, इन्ही परिवर्तनो ने विभिन्न देशो के युवाओं को प्रभावित किया है। भारतीय वंचित वर्ग समूह के युवाओं में आधुनिकीकरण की बयारों का प्रभाव, उनके सामाजिक,आर्थिक,मानसिक व वैचारिक जीवन पर पड़ रहा है। भारतीय वंचित वर्ग का युवा बदल रहा है, यह बदलाव वैचारिक रूप में उनके सामाजिक प्रस्थिति संबंधो, बौद्धिकता, सामाजिक व सांस्कृतिक प्रतिमानो और व्यक्तिगत जीवन में आया है। डॉ.अम्बेडकर द्वारा वंचित समूह के लिये प्रतिपादित सामाजिक व आर्थिक चिंतन की प्रासंगिकता को वर्तमान प्ररिप्रेक्ष्य में आधुनिकीकरण ने प्रभावित किया है। आधुनिकीकरण वस्तुतः वैश्वीकरण की अवधारणा का ही व्यापक प्रतिरूप है, जिसने विभिन्न समाजों के युवाओं में परिवर्तन उत्पन्न किये हैं। वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग आधुनिक विश्व में हुए परिवर्तन और विश्व अर्थव्यवस्था में नाटकीय वृद्धि, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। भारत में २४ जुलाई १९९१ को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक जैसी बेटनवुड्स संस्थाओ के बाध यताकारी प्रभाव से नवीन आर्थिक नीति की घोषणा की गई जिसे आर्थिक उदारीकरण का नाम दिया गया एवं इसे भारतीय अर्थव्यवस्था का वैश्विक अर्थव्यवस्था मे भागीदार बनने के रूप में प्रचारित किया गया।[१] साम्राज्यवाद से नई वैश्विक अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर होने वाली, रूपांतरण की ओर जाने वाली प्रक्रिया तथा एक क्रमिक अनुकुलन की प्रक्रिया के रूप में वैश्वीकरण को संकल्पित किया गया। यद्यपि आर्थिक क्षेत्र के ये परिवर्तन मूल रूप से सामाजिक क्षेत्र को भी प्रभावित करते हैं, फलस्वरूप सामाजिक क्षेत्र में सभी ओर परिवर्तन देखा जा रहा है।

भारतीय संदर्भ में वसुधैव कुटुम्बकम और जियो और जीने दो का सूत्र, भारतीय समाज और विश्व समाज को वैश्वीकरण के तारतम्य में आबद्ध करता रहा है। भूमंडलीकरण को दुनिया के जिन प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों ने वैचारिक धरातल प्रदान किया, वे दोनो ही डॉ.अमर्त्य सेन और कोलम्बिया विश्वविद्यालय से जुड़े डॉ. जगदीश भगवती, भारतीय हैं। वैश्वीकरण के मूल रूप में सामाजिक, सांस्कृतिक व वैचारिक विविधता का विघटन ही हुआ है।[२] भारतीय समाज और संस्कृति की एक अनन्य विशेषता है, विविधता में एकता। भारत के भौगोलिक क्षेत्र-पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण में विभिन्न धर्मो, सम्प्रदायों, भाषाओं, क्षेत्रों, प्रजातियों, वर्णों एवं जातियों में अनेक प्रकार की विभिन्नताऐं पाई जाती हैं। इन विभिन्नताओं के होते हुए भी सम्पूर्ण राष्ट्र में एकता के दर्शन होते हैं। इसी भावना को दृष्टिगत रखते हुये स्वतंत्र भारत के संविधान में डॉ.भीमराव अम्बेडकर और संविधान निर्मात्री समिति के सदस्यों ने प्रजातंत्र के आधारभूत सिद्धान्त-स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्वभाव को महत्व देते हुए, देश के सभी नागरिकों के साथ लिंग, जन्म स्थान, धर्म, सम्प्रदाय, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर भेदभाव एवं असमानता नहीं करने तथा सभी के साथ समानता का व्यवहार रखते हुए देश में सामाजिक और आर्थिक प्रजातांत्रिक मूल्य आधारित व्यवस्था स्थापित की है।

मानवीय सभ्यता के अतीत का अध्ययन करें तो सदैव ही पेट और पीठ के मध्य की रोटी की दीवार ने न्याय और अन्याय को प्रभावित किया है। न्याय और अन्याय का मापदण्ड सार्वकालिक नहीं है, यह अतीत में बदलता रहा है जिसकी वजह से मानव व्यवहार का काफी बड़ा हिस्सा न्याय-अन्याय

❑ **शोध अध्येता समाजशास्त्र, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर (म.प्र.)**

के बीच झूलता रहा है। उदाहरणार्थ सदियों तक हमारा जीवन शास्त्रों द्वारा निर्देशित होता रहा। अब संविधान से संचालित होता है। शास्त्रों में न्याय की धारणा संविधान में निहित न्याय की धारणा से मूलतः भिन्न है। इसलिये कई बातें जो तब न्यायपूर्ण समझी जाती थीं, अब अन्याय मानी जाती हैं, और कई जो अब न्यायपूर्ण मानी जाती हैं, तब अन्याय समझी जाती थीं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता कें परिप्रेक्ष्य में सामजिक न्याय की धारणा सार्वभौमिक नही रही है। इस्किमो या नागा समाज में जो न्याय संगत समझा जाता है वह हिन्दू समाज में भी न्याय संगत ही समझा जाये ऐसा जरूरी नहीं है। इस्लामी समाज और ईसाई समाज मे न्याय के मापदण्ड एक नही है और एक हो भी नही सकते क्योकि दोनो की सांस्कृतिक संरचना भिन्न है। दोनो के मूल्यों और आदर्शो में मौलिक अंतर है। इसी प्रकार पूँजीवादी समाज में जो न्यायपूर्ण है वह साम्यवादी समाज में न्यायपूर्ण नही है क्योकि दोनो प्रकार के समाजो की मूल्यात्मक संरचना में आधारभूत अंतर है।

अध्ययन का उद्देश्य -

१. डॉ. अम्बेडकर द्वारा सामाजिक व आर्थिक चिंतन मॉडल में निर्धारित सामाजिक व आर्थिक मानक मूल्यो का वंचित वर्ग के युवाओं पर आधुनिकीकरण के तारतम्य में प्रभाव का अध्ययन करना।
२. आधुनिकीकरण का वंचित वर्ग के युवाओं में आर्थिक उपार्जन व डॉ.अम्बेडकर के आर्थिक चिंतन मॉडल पर प्रभाव का अध्ययन करना।
३. आधुनिकीकरण का वंचित वर्ग के उच्च्व शिक्षित युवाओं को डॉ.अम्बेडकर के सामजिक चिंतन मॉडल के अनुरूप स्वयं के समाज के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
४. आधुनिकीकरण का वंचित वर्ग के उच्च आयस्तर वाले युवाओं का डॉ.अम्बेडकर के आर्थिक मॉडल के अनुरूप स्वयं के समाज के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
५. आधुनिकीकरण का वंचित वर्ग के युवाओं के बोद्धिक व शैक्षणिक जीवन मे डॉ.अम्बेडकर चिंतन के प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति - प्रस्तुत अध्ययन विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के विभिन्न संकायों की स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्ययनरत एवं उत्तीर्ण दैव निदर्शन प्रणाली द्वारा चयनित १५० नगरीय व ग्रामीण वंचित वर्ग के युवाओं का साक्षात्कार प्रस्तुत अध्ययन का मूल आधार है। अध्ययन में संकलित सामग्री को सांख्यिकी शैली के द्वारा विश्लेषित-विवेचित किया गया।

वंचित सामाजिक वर्ग का परिचय - भारत में अनुसूचित जाति (अ.जा.) अनुसूचित जनजाति (अ.ज.जा.), अन्य पिछडे वर्ग और धार्मिक अल्पसंख्यक वंचित वर्ग श्रेणी में आते हैं। भारत में वंचित वर्ग समूह की अनुसूचित जातियाँ इतिहास के प्रत्येक कालखण्ड में मौजूद रही हैं, परन्तु इनका स्तर, इनकी भूमिका तथा इनका नाम हमेशा परिवर्तित होता रहा है। भारतीय इतिहास में ये जातियां क्या थीं, किस कारण से इन्होने इस स्तर को प्राप्त किया है, यह एक लम्बे विवेचन का विषय है।

भारतीय समाज प्राचीन समय से ही विभिन्न वर्गो में विभक्त रहा है। हालांकि प्रत्येक समाज में श्रम विभाजन पाया जाता है। सिन्धु घाटी सभ्यता भी विभिन्न वर्गो में विभक्त थी परन्तु इन वर्गो में ऊँच-नीच की भावना विद्यमान नही थी।[३] यद्यपि सुरेश नारायण व अन्य का मानना है कि इतनी समृद्ध संस्कृति गुलामों व निम्न वर्गो के बिना अस्तित्व में नहीं आ सकती थी।[४] कुछ भी हो अनुसूचित जातियों की उत्पत्ति व अस्तित्व भारतीय समाज में विद्यमान ऊँच-नीच वर्णव्यवस्था व जाति व्यवस्था का ही परिणाम है। प्राचीन समय से ही भारतीय समाज में एक ऐसा वर्ग विद्यमान रहा है जो अन्य वर्गो से बिल्कुल निम्न स्थिति मे रहा है। आज यह स्थिति अनुसूचित जातियों की है। अनुसूचित जातियो के अस्तित्व मे आने से पहले जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने स्थापित किया है कि जब तक अस्पृश्यों मे पंचम वर्ण अस्तित्व में नही आया था, हिन्दुओं की दृष्टि में शूद्र निम्नों में निम्नतर थे।[५] लेकिन अनेक परिस्थितियों तथा कारकों के फलस्वरूप जब अस्पृश्य वर्ग अर्थात अनुसूचित जातियों की उत्पत्ति हुई तो शूद्रों अर्थात पिछड़ी जातियों की सारी अयोग्ताऐं इन वर्गो पर मढ़ दी गयीं । अस्पृश्य वर्गो की उत्पत्ति से लेकर आज तक इनकी हालत हिन्दू समाज मे सबसे निम्नस्तरीय रही है।

आर्य व्यवस्था के साथ जो लोग संघर्षरत हुए वही आगे चलकर अस्पृश्य समुदाय के रूप में सामने आये। इसी विरोध के कारण इन जातियों को चाण्डाल नाम दिया गया। एम.सी. राज ने त्रिशंकु का उदाहरण देते हुए बताया है कि उसके सशरीर स्वर्ग मे जाने के प्रयास करने के कारण उसे चाण्डाल होने का शाप दिया गया।[६] इसके अतिरिक्त भारतीय इतिहास इस प्रकार के असंख्य उदाहरणों से पटा पड़ा है जिनमें आर्य व्यवस्था का विरोध करने वालों को असभ्य, जंगली तथा दुराचारी बताया गया जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत रही है। सांस्कृतिक भिन्नता के कारण आर्यो तथा दास व दस्युओं में भीषण संघर्ष होता रहा। ऋग्वेद में ऐसी बहुत सी

प्रार्थनाऐं है, जिनमें इन्द्र तथा अन्य देवताओं से दास, दस्युओं को हराने के लिए प्रार्थनायें की गयी हैं।[७] इतिहास के किसी भी कलाखण्ड में जिस किसी ने भी इस प्रकार की संस्कृति को मानने से इंकार किया या उसका विरोध करने का प्रयास किया,भारत के प्रभु वर्गो व जातियों ने उन लोगों का जमकर विरोध किया और उनका सामाजिक बहिष्कार करके उन्हें निम्न स्तर पर धकेल दिया।

भारत के संविधान मे वंचित वर्ग समूह में अनूसुचित जाति के बाद अनुसूचित जनजातियो को इस श्रेणी मे सूचीबद्ध किया गया है। अनुसूचित जनजातियाँ, वह समूह है, जो पुरातन समय से वनों मे निवास करते हुये, अपनी सांस्कृतिक व आर्थिक गतिविधियों को वन क्षेत्र में संचालित करते रहे हैं। यह मूल रूप से परम्परागत आदिम जातियाँ रही हैं, जिन्होने अपनी समस्त गतिविधियों का केन्द्र वनों को बनाया है। यह विकास की दौड़ में अन्य समाजो से पिछडे रहे हैं। वंचित वर्ग समूह की श्रेणी में सदियों से कामगार वर्ग की भूमिका का निर्वाहन करने वाला एक समूह जो प्राचीन वर्ण व्यवस्था में शुद्रों से एक स्तर ऊपर रहा है, उसे अन्य पिछड़ा वर्ग के रूप में मान्यता दी गई है। यह समूह भारत के निम्न मध्यम वर्ग का निर्माण करता है। धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय भी वंचित वर्ग का हिस्सा है। इन अल्पसंख्यक समुदायो में मुस्लिम, ईसाई, सिख, जैन, पारसी व बौद्ध धर्म को मानने वाले लोग सम्मिलित हैं, जिसमें शैक्षणिक व आर्थिक मापदण्डों पर मुस्लिम समाज सर्वाधिक पिछड़ा है। ब्रिटिश हाईकमीशन की सन् १८७० की रिपोर्ट और सन् २००६ की सच्चर कमेटी की रिपोर्टो का क्रमिक अध्ययन करने पर यह तथ्य दृष्टिगोचर होता है, कि मुस्लिम समुदाय विकास की दौड़ में सबसे निचले स्थान पर है।

डॉ.अम्बेडकर का सामाजिक चिंतन मॉडल और वंचित वर्ग - अम्बेडकर के सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक न्याय चिंतन को समाज पर लागू करने का प्रयास सामाजिक चिंतन मॉडल में निहित है। अम्बेडकर के चिंतन का मूल उद्देश्य एक तर्क संगत एवं न्यायपूर्ण प्रजातंत्रिक समाज व्यवस्था की रचना करना था। इसलिये सामाजिक व्यवस्था व न्याय अम्बेडकर के चिंतन की केन्द्रीय विषय वस्तु थी। यह मॉडल वस्तुतः वंचित वर्ग के उन्नयन के मार्ग को प्रशस्त करने वाला था। सामाजिक व्यवस्था के संबंध में अम्बेडकर ने चिंतन के तीन पक्ष प्रस्तुत किये हैं- (१) परम्परात्मक समाज- व्यवस्था की समीक्षा (२) आदर्श समाज की परिकल्पना (३) दोनों समाज व्यवस्थाओं से सम्बद्ध वैचारिकियों की समीक्षा।[८]

डॉ. अम्बेडकर का दृढ़ मत था कि - हमें अपने राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र बनाना चाहिए क्योकि इसके बिना राजनीतिक लोकतंत्र अधिक दिनों तक नही चल सकता। भारत में वे लोग राष्ट्रवादी और देशभक्त माने जाते हैं जो अपने भाईयो के साथ अमानुषिक व्यवहार होते देखते है, किन्तु इस पर उनकी मानवीय संवेदना आन्दोलित नही होती। उन्हे मालूम है कि इन निरपराध लोगों को मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है परन्तु इससे उनके मन में कोई क्षोभ नहीं पैदा होता। वे एक वर्ग के सारे लोगो को सरकारी नौकरियो से वंचित देखते हैं, परन्तु इससे उनके मन मे न्याय और ईमानदारी के भाव नहीं उठते। वे मनुष्य और समाज को आहत करने वाली सैकड़ों कुप्रथाओं को देखकर भी मर्माहत नही होते। देशभक्तों का तो मात्र एक ही नारा है- उनको तथा उनके वर्ग के लिए अधिक से अधिक सत्ता। मै प्रसन्न हूँ कि मैं इस प्रकार के देशभक्तों की श्रेणी में नही हूँ। मै उस श्रेणी से सम्बन्ध रखता हूँ जो लोकतंत्र की पक्षधर है और हर प्रकार के एकाधिकार को समाप्त करने के लिए संघर्षरत है। हमारा उद्देश्य जीवन के सभी क्षेत्रो -राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक में एक व्यक्ति, एक मूल्य के आदर्श को व्यवहार में उतारना है[९] अम्बेडकर शोषितों की राजनीति करने वालो की कलई खोल रहे थे और उनसे उनका दृष्टिकोण बदलने की मांग कर रहे थे। अम्बेडकर को वंचित वर्ग के कारण जिस मान-अपमान को अंत तक झेलना पड़ा था, वही आत्मव्यथा उनके सामाजिक अनुचिंतन की पृष्ठभूमि बनी है। संघर्षात्मक वातावरण में प्रतिस्पर्धात्मक रूप में एक होड़ यह भी लगी हुई प्रतीत हो रही थी कि कहीं शोषितों को मुक्ति दिलाने का श्रेय अछूत वर्ग के इस नेता को न मिल जाए।[१०]

डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक चिंतन मॉडल और वंचित वर्ग - वंचित वर्ग की आर्थिक उपार्जन सलग्नता दर को तीव्र करके, राष्ट्र के संसाधनों पर सबका एक समान एकाधिकार स्थापित करना, अम्बेडकर के आर्थिक चिंतन मॉडल का प्रमुख ध्येय था। अम्बेडकर के जीवन का सर्वप्रथम लक्ष्य प्रजातंत्रिक सामाजिक क्रांति लाना था। वे वर्ण और जाति प्रणाली को तोड़कर ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास का पूरा अवसर मिले। इसके लिये उन्होने जिस रास्ते को अपनाया वह प्रजातंत्रिक और संवैधानिक रास्ता था। अपने इस रास्ते में उन्होने अपने समेकित आर्थिक विचारों का भी प्रयोग किया। डॉ. अम्बेडकर को वंचित वर्ग की जातियों की आर्थिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान था। वे जानते थे कि इस वर्ग की जातियो के लगभग सभी सदस्य आर्थिक दृष्टि से सर्वहारा है।[११] अम्बेडकर

के आर्थिक विचारो को मुख्यतः तीन परिस्थितियों ने प्रभावित किया है- (१) तत्कालीन विश्व अर्थव्यवस्था (२) विश्व अर्थव्यवस्था का भारतीय अर्थव्यवस्था से तुलनात्मक अध्ययन (३) भारतीय दलितो की आर्थिक परिस्थितियाँ।[१२]

डॉ. अम्बेडकर ने तत्कालीन परिस्थितियों के अध्ययन के आधार पर वंचित दलित वर्ग के आर्थिक उत्थान पर अपने प्रयास केन्द्रित किये। वंचित वर्ग समाजिक प्रतिष्ठा से ही नहीं, धन सम्पदा से भी पूर्णतया वंचित था। वे यह तथ्य भलीभांति समझते थे कि उन्हें समाजिक अन्याय के ही विरूद्ध नहीं अपितु आर्थिक शोषण के विरूद्ध भी लड़ना होगा। इस अर्थ में वे समाजवादी, अर्थव्यवस्था के काफी निकट थे। वस्तुतः अम्बेडकर इस बात के लिये प्रयत्नशील थे कि हमारे संविधान में ही इस तरह के उपबंध किये जाए कि राज्य का स्पष्ट समाजवादी स्वरूप उभरे। वे इस संकल्पना से लिये राजकीय समाजवाद (स्टेट सोशलिज्म) शब्द का प्रयोग करते थे।[१३]

डॉं. अम्बेडकर की मान्यता थी कि देश की औद्योगिक प्रगति की दृष्टि से राज्य समाजवाद आवश्यक है। निजी क्षेत्र से देश की औद्योगिक प्रगति संभव नही है। यदि ऐसा हुआ भी तो इससे समाज में विषमता बढ़ जायेगी और युरोपीय देशों की तरह भारत में भी अनेक नई समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। अम्बेडकर का आर्थिक प्रजातंत्र दर्शन समाज मे समता, स्वतंत्रता तथा न्याय की विचारधारा से पूर्णतः प्रभावित होकर समाज के वंचित वर्ग के लोगों के हितों को ध्यान में रखते हुए, राज्य समाजवाद की स्थापना पर बल देता है। उनका आर्थिक दर्शन समता, स्वतंत्रता, न्याय, नैतिकता तथा मानवीय मूल्यो की अभिरक्षा करता है।

युवाओं पर डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक व आर्थिक चिंतन पर आधुनिकीकरण के प्रभाव की स्थिति का अध्ययन

१. सामाजिक व आर्थिक मानक मूल्यों पर आधुनिकीकरण का प्रभाव : अम्बेडकर चिंतन के सामाजिक एकरूपता , सहयोग और परस्पर आर्थिक सहयोग के सामाजिक व आर्थिक चिंतन पर युवाओं पर आधुनिकीकरण का प्रभाव निम्नानुसार है -

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
प्रभावित है	६४	६२.६७
प्रभावित नही है	५६	३७.३३

सारिणी से स्पष्ट है कि शोध अध्ययन मे सम्मिलित (६२.६७ प्रतिशत) उत्तरदाता वंचित वर्ग के युवाओं के अनुसार डॉं. अम्बेडकर द्वारा सामाजिक व आर्थिक चिंतन मॉडल में निर्धारित सामाजिक व आर्थिक मानक मूल्यो को आधुनिकीकरण ने प्रभावित नहीं किया है, तथा (३७.३३ प्रतिशत) वंचित वर्ग के उत्तरदाता युवाओं की मान्यता थी कि इन मानक मूल्यों को आधुनिकीकरण ने प्रभावित किया है।

२. आर्थिक उपार्जन गतिविधि पर आधुनिकीकरण का प्रभाव : अम्बेडकर आर्थिक चिंतन के आर्थिक एकरूपता, समाजवाद और परस्पर आर्थिक उपार्जन सहयोग के चिंतन पर युवाओं पर आधुनिकीकरण का प्रभाव निम्नानुसार है -

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
प्रभावित है	३८	२५.३३
प्रभावित नही है	११२	७४.६७

सारिणी से स्पष्ट है कि शोध अध्ययन में सम्मिलित (७४.६७ प्रतिशत) उत्तरदाता वंचित वर्ग के युवाओ के अनुसार डॉं अम्बेडकर के आर्थिक चिंतन मॉडल व उनकी आर्थिक उपार्जन गतिविधि को आधुनिकीकरण ने प्रभावित नहीं किया है तथा (२५.३३ प्रतिशत) उत्तरदाता वंचित वर्ग के युवाओ की मान्यता थी कि डॉं.अम्बेडकर के आर्थिक चिंतन मॉडल व उनकी आर्थिक उपार्जन गतिविधि को आधुनिकीकरण ने प्रभावित किया है।

३. सामाजिक चिंतन मॉडल पर आधुनिकीकरण का प्रभाव : अम्बेडकर सामाजिक चिंतन के सामाजिक सहयोग, समाज कल्याण और परस्पर सामाजिक सहयोग के सामाजिक चिंतन मॉडल पर युवाओं पर आधुनिकीकरण का प्रभाव निम्नानुसार है -

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
प्रभावित है	३४	२२.६७
प्रभावित नही है	११६	७७.३३

सारिणी से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता वंचित वर्ग के युवाओं (७७.३३ प्रतिशत) ने डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक चिंतन मॉडल को आधुनिकीकरण से प्रभावित नही माना है। जबकि (२२.६७ प्रतिशत) उत्तरदाता वंचित वर्ग के युवाओ ने डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक चिंतन मॉडल को आधुनिकीकरण से प्रभावित होना माना है।

४. सामाजिक चिंतन मॉडल के अनुरूप समाज के प्रति सहयोग की स्थिति : अम्बेडकर सामाजिक चिंतन के सामाजिक सहयोग , समाज कल्याण और परस्पर सामाजिक सहयोग के सामाजिक चिंतन मॉडल के अनुसार स्वयं के समाज के प्रति सहयोग पर युवाओं पर आधुनिकीकरण का प्रभाव निम्नानुसार है -

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
सहयोगात्मक	६१	४०.६७

असहयोगात्मक	८६	५६.३३

सारिणी से स्पष्ट है कि शोध अध्ययन में सम्मिलित (५६.३३ प्रतिशत) उच्च शिक्षित वंचित वर्ग के युवाओ ने वर्तमान आधुनिकीकरण के दौर में डॉ. अम्बेडकर के सामकिक चिंतन मॉडल के अनुरूप उनके स्वयं के समाज के प्रति सहयोग का नकारात्मक दृष्टिकोण पाया गया । तथा (४०.६७ प्रतिशत) उच्च शिक्षित वंचित वर्ग के युवाओ ने वर्तमान आधुनिकीकरण के दौर में डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक चिंतन मॉडल के अनुरूप उनके स्वयं के समाज के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पाया गया।

५. उच्च आयस्तर युवाओं की समाज के प्रति सहयोग की स्थिति : अम्बेडकर के आर्थिक एकरूपता, समाजवाद और परस्पर आर्थिक उपार्जन सहयोग के चिंतन के अनुसार उच्च आय स्तर वाले युवाओं की स्वयं के समाज के प्रति सहयोग की स्थिति पर युवाओं पर आधुनिकीकरण का प्रभाव निम्नानुसार है -

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
सहयोगात्मक	४६	३०.६७
असहयोगात्मक	१०४	६६.३३

सारिणी से स्पष्ट है कि उच्च आय स्तर वाले वंचित वर्ग के उत्तरदाता युवाओ में से अधिकांश (६६.३३ प्रतिशत) आधुनिकीकरण के दौर में डॉ. अम्बेडकर के आर्थिक मॉडल के अनुरूप स्वयं के समाज के प्रति उनका नकारात्मक दृष्टिकोण पाया गया । जबकि (३०.६७ प्रतिशत) उच्च आयस्तर वाले वंचित वर्ग के उत्तरदाता युवाओं में आधुनिकीकरण के दौर में डॉ.अम्बेडकर के आर्थिक मॉडल के अनुरूप स्वयं के समाज के प्रति उनका सकारात्मक दृष्टिकोण था।

६. डॉ.अम्बेडकर चिंतन पर आधुनिकीकरण के प्रभाव की स्थिति : वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और समयकाल परिस्थिति के अनुसार वंचित वर्ग के शिक्षित युवाओं पर डॉ. अम्बेडकर चिंतन पर आधुनिकीकरण के प्रभाव की स्थिति निम्नानुसार है।

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
प्रभावित	९८	६५.३३
अप्रभावित	५२	३४.६७

सारिणी से स्पष्ट है कि शोध अध्ययन मे सम्मिलित (६५.३३ प्रतिशत) वंचित वर्ग के उत्तरदाता युवाओं में आधुनिकीकरण के प्रभाव से उनके बोद्धिक व शैक्षणिक जीवन को डॉ. अम्बेडकर चिंतन ने प्रभावित किया है तथा (३४.६७ प्रतिशत) वंचित वर्ग के उत्तरदाता युवाओं में आधुनिकीकरण के प्रभाव से उनके बोद्धिक व शैक्षणिक जीवन को डॉ. अम्बेडकर चिंतन ने प्रभावित नही किया है।

अध्ययनगत सुझाव - युवाओं में परिवर्तनों को आत्मसात करने की क्षमता प्रोढ़ों की तुलना में अधिक होती है क्योकि उनमे पूर्वाग्रह कम होते हैं। युवा आधुनिक विचारों को स्वीकारने में सबसे आगे होते हैं। युवावस्था का साहस युवा को नई वैचारिक जीवन शैली स्वीकारने की हिचकिचाहट से बचा लेता है, परिवर्तन इन्हे आकर्षित करते हैं। इसलिए आज बाजार का ६० प्रतिशत लक्ष्य यही युवावर्ग है, जिसकी बदौलत भारत में वैश्वीकरण की परिस्थितियों से उत्पन्न बाजार फल-फूल रहा है, यही बाजार इन परिवर्तनों के मूल में है जिसने भारतीय संस्कृति की धारा को बिल्कुल मोड़ दिया है। इन प्रभावों से भारतीय वंचित वर्ग का युवा भी अछूता नहीं रहा है जैसा कि इस वर्ग में होने वाले बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व नैतिक प्रतिमानों तथा सामाजिक प्रस्थिति भूमिका चिंतन के परिवर्तनों से स्पष्ट होता है।

१. वंचित वर्ग का युवा वर्तमान आधुनिकीकरण के दौर में नवीनतम सृजनात्मक विचारों के सतत सम्पर्क में है। इन युवाओ में अम्बेडकर के सामाजिक व आर्थिक मानक मूल्यों को वर्तमान वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में इतिहास के प्रघटनात्मक तथ्य के रूप मे देखने का दृष्टिकोण पाया गया है। यह दृष्टिकोण अम्बेडकर के सामाजिक व आर्थिक चिंतन मॉडल की प्रासंगिक महत्ता के लिये हानिकारक है। आधुनिकीकरण से प्रभावित वंचित वर्ग के युवाओं में अम्बेडकर के सामाजिक व आर्थिक मानक मूल्यों के प्रसार करने की आवश्यकता वर्तमान समय में है।

२. डॉ. अम्बेडकर के आर्थिक चिंतन मॉडल में निहित परस्पर समान आर्थिक उपार्जन प्रक्रम को नगरीय व ग्रामीण क्षेत्रों में वंचित वर्ग के युवाओं के मध्य आर्थिक ज्ञान - कौशल परियोजनाओं का सघन जाल बिछाकर ही प्राप्त किया जा सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये व्यापक ज्ञान-कौशल योजना को निर्मित कर, धरातलीय स्वरूप प्रदान करना आवश्यक है।

३. डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक प्रजातंत्र में निहित पारस्परिक प्रेम, सहयोग, समरसता व न्याय जैसे घटक तत्वों का आधुनिकीकरण से प्रभावित वंचित वर्ग के युवाओं मे ह्रास हुआ है। वंचित वर्ग के युवाओं में निरंतर सामाजिक मेल-मिलाप व स्नेह सम्मेलन जैसे कार्यक्रमों का आयोजन करने इस कमी को दूर किया जा सकता है।

४. आधुनिकीकरण से वैचारिक रूप से ओतप्रोत वंचित वर्ग

के अधिकांश उच्च शिक्षित युवा, अम्बेडकर के सामाजिक चिंतन की मूल भावना के विपरित अपने स्वयं के समाज के प्रति सहयोगात्मक नहीं हैं। ये युवा उच्च शिक्षित होने के बाद भी अपने समाज के प्रति सकारात्मक प्रस्थिति भूमिका का निर्वाहन नही करते हैं। इनका ध्येय मात्र वंचित वर्ग के लिये सुरक्षित आरक्षण व अन्य सुविधाओं का लाभ स्वयं व अपने परिजनो को दिलाने तक है। यही कारण है कि वंचित वर्ग का एक बहुत बड़ा हिस्सा सर्वागीण रूप से विकसित नहीं हो पाया है। इस प्रकार की प्रवृत्ति को अवरूद्ध करने के लिये उच्च पदों पर कार्यशील वंचित वर्ग के लोगों को, इन युवाओं के मध्य आकर सामाजिक सहयोग की प्रवृत्ति का विकास स्वयं उदाहरण बनकर प्रस्तुत करना होगा। इस कार्य हेतु उच्च पदस्थ युवाओं का समूह निर्मित कर, सामाजिक वर्ग के समक्ष विचार गोष्ठी, परिचय सम्मेलन जैसे कार्यक्रम आयोजित करते हुये, वंचित वर्ग के अन्य युवाओ को विकास के लिये प्रेरित करना होगा।

५. डॉ. अम्बेडकर के आर्थिक प्रजातंत्र चिंतन की परस्पर समान आर्थिक हित वितरण की भावना का अभाव वैचारिक रूप से वैश्विकृत वंचित वर्ग के युवाओं में नही है। इस भावना का निर्माण वंचित वर्ग के नगरीय व ग्रामीण युवाओं में करने के लिये सरकार द्वारा इन युवाओ के समूह को ज्ञान-कौशल प्रशिक्षण व वित्तीय सहायता प्रदत्त कर सामूहिक साझेदारी के लद्यु उद्योग व स्टार्ट अप योजनाओं का विकास किया जाना चाहिये।

६. वंचित वर्ग के सर्वागीण विकास में डॉ. अम्बेडकर के कार्यक्रमो व चिंतन का महत्वपूर्ण योगदान है। आधुनिक वैश्वीकरण युक्त शिक्षा व्यवस्था में वंचित वर्ग का युवा अम्बेडकर चिंतन से दूरी बना रहा है। अम्बेडकर चिंतन, किसी वर्ग, समाज, व धर्म के लिये न होकर, समस्त वर्ग, समाज और सभी धर्मो को मानने वालों के लिये भी है। यह चिंतन वस्तुतः मानव कल्याण, जनसमानता और शोषण से मुक्ति जैसे तत्वों से मिलकर बना है। अम्बेडकर के जनकल्याणकारी चिंतन को भारतीय शिक्षा पाठ्यक्रमों मे उचित स्थान देकर, समस्त वर्गो के युवाओं में इसका व्यवहारिक व बौद्धिक रूप से आत्मसात करना आवश्यक है।

संदर्भ

१. Agrawal, Hema, 'Society Culture & Mass Communication Sociology of Journalism', Rawat, New Delhi, 1995 pp. 23,24
२. Jack, Backs, 'M.T.V. & The Globolization of Pop Culture', Asia Publishing House, Bombay, 1997, pp. 81,84
३. Rajawat, Mamta, 'Encyclopedia of Dalits In India', Mark Publication, Jaipur. 2004 p. 15
४. Shrivastav, S.N., 'Harijans In Indian Society', Asia, Bombay, 1980, p. 2
५. अम्बेडकर, बी.आर., 'डॉ.अम्बेडकर सम्पूर्ण वांगमय खण्ड -१३', बाम्बे पब्लिकेशन हाउस, बाम्बे, १६६८ प्राक्कथन पृ. १
६. Raj, M.C., 'Dalitology', Global Publication,Chennai, 2001, p. 414
७. Rajawat, Mamta, op. cit., p. 4
८. सिंह रामगोपाल, 'सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, २००६, पृ. ३
६. दारापुरी, एस.आर. 'डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन', उत्तरप्रदेश दलित साहित्य विशेषांक, २००२ पृ. ५८,५६
१०. भटनागर,राजेन्द्र मोहन, 'डॉ. अम्बेडकर जीवन-मर्म', जगतराम एण्ड संस, नई दिल्ली, २००३ पृ. २१६
११. हैगड़े वी.डी., डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के आर्थिक विचार, नई दिल्ली, २००२ पृ. १२३,१२४
१२. Raju, K.S., 'Dr. Ambedkar Life & Philosophy', New Era Publication, 1998, pp. 179,181
१३. Keer, Dhananjay, 'Life and Mission', Bombay Popular Publication, 1991 pp. 102,103

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

पंचायती राज व्यवस्था एवं भोटिया महिलाऐं– प्रस्थिति एवं भूमिका

❑ दीप्ति

भारत में नई पंचायती राज व्यवस्थाः ग्रामीण भारत के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि स्थानीय लोगों की प्रशासन में भागीदारी हो और उनका विकास उनकी आवश्यकता के अनुरूप हो। भारत में पंचायती राज व्यवस्था इसी सोच की व्यवहारिक परिणति है। जिसके लिए भारतीय संविधान में ७३वां संविधान संशोधन कर स्थानीय स्वशासन की प्रारंभिक इकाई (ग्राम पंचायतों) को वैधानिक दर्जा दिया गया तथा इसमें महिलाओं को ३३ प्रतिशत आरक्षण देकर महिलाओं की भी भागीदारी को सुनिश्चित किया गया। इस संदर्भ में पाण्डेय[1] उद्धृत करते हैं कि प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गए स्थानों की कुल संख्या के १/३ स्थान (जिनके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या सम्मिलित है), स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे और चक्रानुक्रम से पंचायत के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को आबंटित किए जायेंगे (खण्ड ३)। इस प्रकार भारत में नई पंचायती राज व्यवस्था के रूप में ग्रासरूट डेमोक्रेसी की नींव रखी गयी।

> देश में महिला सशक्तीकरण हेतु शासन द्वारा किए गये विविध प्रयासों में संभवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास ७३वें संविधान संशोधन द्वारा १९९३ में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागेदारी सुनिश्चित करने हेतु महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित किए जाना है। उत्तराखण्ड राज्य ने उन्हें और अधिक अवसर दिए जाने की आवश्यकता अनुभव करते हुए २००८ में उनका आरक्षण ५० प्रतिशत कर दिया। फलस्वरूप राज्य में आज ५० प्रतिशत आरक्षण के माध्यम से आधी से अधिक पंचायत सीटों पर प्रतिनिधित्व करके महिलाएं ग्रामीण विकास में अपना योगदान प्रदान कर रही हैं। अतः प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत पंचायती राज की वर्तमान व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका की स्थिति का मूल्यांकन करने का एक प्रयास है।

उत्तराखण्ड के ग्रामीण पंचायतों का इतिहासः उत्तराखण्ड के गठन के पश्चात् जैसा कि नवानी एवं रावत[2] लिखते हैं उत्तर प्रदेश में १९४७ में संयुक्त प्रान्त पंचायत राज्य अधिनियम, १९५८ में उ० प्र० अन्तरिम जिला परिषद् अधिनियम और १९६१ में उ०प्र० क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत अधिनियम बनाया गया। उत्तराखंड राज्य में भी यही अधिनियम लागू है। २००८ में पंचायतों में उत्तराखण्ड की महिलाओं को अधिक अवसर दिये जाने की आवश्यकता महसूस होने लगी जिस संदर्भ में नवानी[2] उद्धृत करते हैं कि उत्तराखण्ड में बजट सत्र के दौरान १२ मार्च २००८ को पंचायत संशोधन विधेयक पारित हुआ जिसमें महिलाओं को ५० प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। राज्य में अब ५० प्रतिशत आरक्षण के माध्यम से आधी से अधिक पंचायत सीटों पर महिलायें प्रतिनिधित्व कर रही हैं। अब महिलायें न केवल सदस्या के रूप में प्रतिनिधित्व करती हैं वरन् मुखिया के रूप में चयनित होकर ग्रामीण नेतृत्व को नये आयाम प्रदान कर रही हैं तथा ग्रामीण विकास में अपना योगदान सुनिश्चित कर रही हैं। विकास योजनाओं के माध्यम से अर्थिक रूप से मजबूत होकर महिलायें अपने जीवन स्तर में सुधार ला रही हैं, परन्तु अभी भी महिलाओं के सशक्तीकरण एवम् ग्रामीण विकास हेतु मजबूत कदम उठाने की आवश्यकता है। विभिन्न शोध अध ययनों से स्पष्ट होता है कि महिलाओं और अनुसूचित जाति एवम् अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के लिए किये गए आरक्षण के प्रावधानों के उपरान्त महिलाओं एवम् वंचित वर्गों को अभी भी इस अधिनियम के तहत अपनी शक्तियों का स्पष्ट ज्ञान नहीं है। वे बैठकों में पूर्ण उपस्थिति दर्ज नहीं कराती हैं। यदि उपस्थित हो भी जायें तो बैठकों में लिए गए निर्णयों पर अंगूठा लगाकर मात्र एक रबर स्टैम्प की भूमिका अदा करती है। इसी परिप्रेक्ष्य में कुमाऊँ मण्डल के बागेश्वर जनपद के कपकोट विकास खण्ड के वंचित वर्गों की महिलाओं (अनुसूचित जाति एवं जनजाति) में भोटिया जनजाति की महिलाओं की स्थिति अपेक्षाकृत उच्च है। भोटिया जनजाति की महिलाओं की नयी पंचायती राज व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में प्रस्थिति एवं भूमिका की स्थिति की जानकारी शोध कार्य करने हेतु रूचि जागृत करती है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास रहा है।

पद्धतिशास्त्रः प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखण्ड राज्य के कुमाऊँ प्रखण्ड के बागेश्वर जनपद के कपकोट विकास खण्ड में उन

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, डी० एस० बी० परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

ग्रामों का अध्ययन किया गया है जिनमें भोटिया जनजाति निवास करती है। ऐसे ग्रामों की संख्या ३१ है। कपकोट विकास खण्ड में २०११ की जनगणना के अनुसार कुल भोटिया जनजाति की जनसंख्या १११० है। जिसमें पुरूष जंनसंख्या ५२६ एवं महिलाओं की जनसंख्या ५८४ है। एकल शोधकर्ता द्वारा एक सीमित समयावधि में सभी महिलाओं का अध्ययन किया जाना संभव नहीं है। अतः शोध कार्य हेतु कुल महिलाओं में से जिनकी आयु १५ वर्ष से अधिक है ऐसी २५२ महिलाओं का चयन दैव निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया। इन्हीं चयनित भोटिया महिलाओं को जिला सांख्यिकी कार्यालय एवं जिला निर्वाचन कार्यालय बागेश्वर से प्राप्त जनसंख्या विवरण एवं निर्वाचन नामावली के आधार पर सूची बनाकर अध्ययन की इकाई के रूप में लिया गया। शोध हेतु भोटिया महिलाओं से तथ्यों का संकलन साक्षात्कार-अनुसूची के माध्यम से लेकर अर्धसहभागी अवलोकन की सहायता से किया गया है।

उपलब्धियाँ : प्रस्तुत अध्ययन में पाया गया कि त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था से ग्रामों का विकास हुआ है। ग्राम पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है किन्तु उन्हें १९९३ के नई पंचायती राज व्यवस्था में महिला आरक्षण संबंधी स्पष्ट जानकारी नहीं है। त्रिस्तरीय पंचायत राज व्यवस्था से ग्रामों का विकास, पंचायतों में ग्रामीणों की भागीदारी में वृद्धि, महिलाओं में आरक्षण संबंधी जानकारी, निर्वाचन में सक्रियता, निर्वाचन संबंधी दायित्वों का निर्वहन कर्त्तव्यनिष्ठ होकर करना, उनकी पुरुषों पर निर्भरता में कमी, निर्वाचन से आत्मसम्मान में वृद्धि, आरक्षण से महिलाओं के शिक्षित होने, सरकारी पदों पर नियुक्त होने तथा मताधिकार का ज्ञान होने से महिलाओं की स्थिति पहले की तुलना में सुदृढ़ हुयी है।

उक्त सभी तथ्यों की पुष्टि साक्षात्कार से प्राप्त आंकड़ों से की जा सकती है। उक्त संबंधी आंकड़ों का वैज्ञानिक एवं सांख्यिकीय विश्लेषण सविस्तार निम्नवत् प्रस्तुत हैः

सारणी सं०-१

महिलाओं को विकास योजनाओं की जानकारी

विकास योजना का नाम	संख्या	प्रतिशत
मनरेगा की	१९१	७५.७९
शौचालय एवं पेयजल की	१५	५.९५
आधारभूत सुविधाऐं की	०१	०.४०
ऊनी उद्योग की	०४	१.५९
ज्ञात नहीं	४१	१६.२७
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-१ से प्राप्त आकड़ो के अनुसार उत्तराखण्ड राज्य में पंचायती राज्य व्यवस्था के अर्न्तगत चल रही विकास योजनाओं के अर्न्तगत ७५.७९ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि गांव में मनरेगा की योजना चल रही है, ०५.९५ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि गांव में शौचालय एवं पेयजल योजना चल रही है, ०.४० प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि गांव में आधारभूत योजनाऐं चल रही है, १.५९ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि गांव में ऊनी उद्योग ऋण योजनाऐं चल रही है एवं १६.२७ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि उन्हें योजनाऐं की जानकारी नहीं है। आकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश महिलाओं को पंचायती राज्य व्यवस्था के अर्न्तगत चल रही विकास योजनाओं से संबंधित संपूर्ण जानकारी नहीं है। महिलायें केवल मनरेगा योजना के संबंध में ही जानकारी रखती हैं जिससे ज्ञात होता है कि ये महिलायें विकास योजनाओं के प्रति पूर्ण रुप से जागरुक नहीं है। किन्तु उनका मानना है कि विकास योजनायें ग्रामीण विकास में सहायक हैं।

सारणी सं०-२

महिला सदस्यों की संख्या बढ़ने से स्थानीय ग्रामीणों की भागीदारी की स्थिति

भागीदारी की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
बहुत अधिक	३१	१२.३०
अधिक	१८०	७१.४३
सामान्य	३८	१५.०८
कम	०	०.००
बिल्कुल नहीं	३	१.१९
योग	२५२	१००.०

सारणी सं०-२ के अनुसार अध्ययन में पाया कि ७१.४३ प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार ग्राम पंचायतों में महिला सदस्यों की संख्या बढ़ने से स्थानीय ग्रामीणों की सक्रिय भागीदारी में अधिक वृद्धि हुई, १५.०८ प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार स्थानीय ग्रामीणों की भागीदारी में सामान्य रूप से वृद्धि हुई, १२.३० प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार भागीदारी में बहुत अधिक वृद्धि हुई तथा १.१९ प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार भागीदारी में बिल्कुल वृद्धि नहीं हुई। स्पष्ट है कि अधिकांश महिलाऐं मानती हैं ७३वें संशोधन के प्रावधानों के प्रति स्थानीय ग्रामीणों की जागरूकता में वद्धि हुई है व इनकी भागीदरी भी बड़ी है।

सारणी सं०-३

महिलाओं में आरक्षण की जानकारी

आरक्षण	संख्या	प्रतिशत
५० प्रतिशत	१४८	५८.७३
३० प्रतिशत	१९	७.५४

३३ प्रतिशत	४	१.५६
२५ प्रतिशत	१८	७.१४
१५ प्रतिशत	१	०.४०
ज्ञात नहीं	६२	२४.६०
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-३ के अनुसार अध्ययन में पाया कि ५८.७३ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था के तहत त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को उत्तराखण्ड राज्य में ५० प्रतिशत आरक्षण मिला है, २४.६० प्रतिशत महिलाओं कों आरक्षण के विषय में कोई ज्ञान नही है, ७.५४ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार ३० आरक्षण मिला है, ७.१४ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार २५ आरक्षण मिला है, १.५६ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार ३३ आरक्षण मिला है, ०.४० प्रतिशत महिलाओं के अनुसार १५ प्रतिशत आरक्षण मिला है। भोटिया जनजाति की महिलायें नयी पंचायती राज व्यवस्था में प्राप्त महिला आरक्षण के प्रावधानों के प्रति तो जागरूक थीं, किन्तु नयी पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिये किये गये ५० प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान के विषय में अधिकांश महिलाओं को जानकारी नहीं थी।

सारणी सं०-४

पंचायती राज से महिलाओं में आत्मनिर्भरता

आत्मनिर्भरता	संख्या	प्रतिशत
वृद्धि हुई	२४२	६६.०२
कोई परिवर्तन नहीं हुआ	८	३.१६
कम हुई	२	०.७६
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-४ के अनुसार पाया कि ६६.०२ प्रतिशत महिलाओं ने माना है कि महिलाओं के निर्वाचन एवं त्रिस्तरीय नई पंचायती राज व्यवस्था से महिलाओं की पुरूषों पर निर्भरता कम हुई है अर्थात् महिलाओं की आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई है, ३.१६ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार महिलाओं की पुरूषों पर निर्भरता पर कोई परिर्वतन नहीं हुआ है, ०.७६ प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि उनकी पुरूषों पर निर्भरता में वृद्धि हुई है। पंचायतो के प्रति महिलाओं की बढ़ती जागरूकता, सजगता व सहभागिता का सीधा प्रभाव उनके पुरूषों पर घटती निर्भरता के रूप में परिलक्षित होता है। नयी पंचायती राज व्यवस्था के आने से निःसंदेह इनकी आत्मनिर्भरता बढ़ी है।

सारणी सं०-५

आर्थिक उपार्जन के लिये किये जाने वाले व्यवसाय

व्यवसाय के प्रकार	संख्या	प्रतिशत
ऊनी कढ़ाई	१३६	५५.१६
खेती-बाड़ी	१०५	४१.६६
सरकारी नौंकरी	०२	०.७६
गैर सरकारी सेवा	०४	१.५६
गृहणी	०१	०.४०
अन्य	०१	०.४०
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-५ के अनुसार ५५.१६ प्रतिशत भोटिया जनजाति की महिलाऐ आर्थिक उपार्जन के लिये ऊनी कढ़ाई का व्यवसाय करती हैं, ४१.६६ प्रतिशत भोटिया महिलाऐं आर्थिक उपार्जन के लिये खेती-बाड़ी करती हैं, ०.७६ प्रतिशत भोटिया महिलाऐं सरकारी नौकरी करती है, १.५६ प्रतिशत भोटिया गैर सरकारी सेवा में गईं ०.४० प्रतिशत महिलाए गृहणी थीं तथा ०.४० प्रतिशत महिलाएं आर्थिक उपार्जन के लिये कोई अन्य कार्य करती है, इस प्रकार इन आर्थिक उपायों में इन महिलाओं द्वारा ऊनी उद्योग को मुख्य व्यवसाय के रूप में स्वीकार किया है जबकि कुछ अन्य महिलाओं द्वारा खेती बाड़ी व गैर सरकारी सेवा की ओर कदम बढ़ाया है।

सारणी सं०-६

महिलाओं की भूमिका एवं प्रस्थिति में परिवर्तन

परिवर्तन की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
शिक्षा के स्तर में	१७	६.७५
सरकारी नौकरी में	३६	१४.२६
जागरुकता में	२६	१०.३२
दैनिक कार्मो के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में	६५	२५.७६
निर्णय क्षमता में वृद्वि	१०८	४२.८६
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-६ के अनुसार नई पंचायती राज व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में ५० प्रतिशत आरक्षण लागू होने से भोटिया जनजाति की महिलाओं की भूमिका एवं प्रस्थिति में आये परिवर्तन की स्थिति के संबंध में ०६.७५ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे शिक्षा का स्तर सुधारना चाहती है, १४.२६ प्रतिशत महिलाऐं सरकारी नौकरी में जाना चाहती है, १०.३२ प्रतिशत महिलाओं का मानना था कि उनमें जागरुकता का स्तर बढ़ा है, २५.७५ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे अब घर के कामों के अतिरिक्त बाहर के अन्य कार्यो को भी करने लगी है एवं ४२.८६ प्रतिशत

महिलाओं ने कहा कि उनकी निर्णय लेने की क्षमता बढ़ी है। उक्त आकड़ों के अनुसार महिलाओं द्वारा माना गया है कि नई पंचायती राज व्यवस्था में भोटिया जनजाति की महिलाओं की भूमिका में शिक्षा के स्तर में सुधार, सरकारी नौकरी में प्रतिभाग, जागरुकता में वृद्धि, घर के कामों के अतिरिक्त बाहर के अन्य कार्यो को करने की क्षमता में वृद्धि एवं निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि होने से सकारात्मक आमूल-चूल परिवर्तन आ गये हैं।

सारणी सं०-७

महिलाओं द्वारा निर्णय लेने की स्थिति

निर्णय लेने की स्थिति	संख्या	प्रतिशत में
हाँ	१३१	५१.९८
नहीं	२३	९.१३
कभी - कभी	९८	३८.८९
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-७ के अनुसार नई पंचायती राज व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में भोटिया जनजाति की ५१.९८ प्रतिशत महिलाओं द्वारा बैठकों में रखे गए विचारों के आलोक में निर्णय लिए जाते है, ३८.८९ प्रतिशत महिलाओं द्वारा बैठकों में रखे गए विचारों के आलोक में कभी-कभी निर्णय लिए जाते हैं तथा ९.१३ प्रतिशत महिलाओं द्वारा बैठकों में रखे गए विचारों के आलोक में निर्णय नहीं लिए जाते हैं। सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण कारक निर्णय लेने की क्षमता का विकास होता है। अधिकांशतः इन महिलाओं द्वारा बैठक में रखे गये विचारों पर निर्णय लिये जाते हैं। जबकि अभी भी इनका एक बड़ा वर्ग है जिसने माना है कि वे निर्णय क्षमता का उपयोग कभी-कभी करती हैं।

निष्कर्षः नई पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत भोटिया जनजाति की महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका से संबंधित उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि महिलाओं को विकास योजनाओं की जानकारी के संबंध में देखा गया कि उन्हें केवल मनरेगा की जानकारी है और अधिकांश महिलाओं को अन्य विकास योजनाओं की जानकारी नहीं है। ग्राम पंचायत में महिला सदस्यों की संख्या बढ़ने से स्थानीय ग्रामीणों की भागेदारी की स्थिति के संबंध में अधिकांश महिलाओं का कहना था कि इससे ग्रामीणों की सक्रिय साझेदारी में वृद्धि हुई है। पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं के संबंध में अधिसंख्यक महिलाओं (५८.७३ प्रतिशत) को इसकी सही जानकारी है किन्तु उनकी विशाल संख्या आज भी इस संबंध में अनभिज्ञ है। नई पंचायती राज व्यवस्था से महिलाओं में आत्मनिर्भरता वृद्धि के संबंध में विपुलांशतः (६६.०२ प्रतिशत) वे स्वीकार करती हैं कि इससे आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई है। आर्थिक उपार्जन के लिए अधिसंख्यक भोटिया महिलाएं (५५.१६ प्रतिशत) ऊनी कढ़ाई के व्यवसाय करती हैं उनकी यथेष्ठ संख्या (४४.६६ प्रतिशत) खेतीबाड़ी तथा शेष अन्य व्यवसाय करती हैं। भोटिया महिलाओं की भूमिका के संबंध में शिक्षा के स्तर में सुधार सरकारी नौकरी में प्रतिभाग, जागरूता में वृद्धि, घर के कामों के अतिरिक्त बाहर के कामों को करने की क्षमता में वृद्धि तथा निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि होने से सकारात्मक परिवर्तन आए हैं तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव यह देखा गया कि उनके निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि हुई है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नई पंचायती राज व्यवस्था के फलस्वरूप भेटिया महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका में सकारात्मक आमूल-चूक परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं।

सन्दर्भ

१. पाण्डेय, जय नारायण, 'भारत का सविंधान', मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद, २०१४, पृ. ६२४।

२. नवानी, लोकेश एवं कल्याण सिंह रावत (सम्पादक), 'विनसरः उत्तराखण्ड इयर बुक', विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून, २०१५, पृ. ६५।

३. नवानी, लोकेश (सम्पादक),' विनसरः उत्तराखण्ड इयर बुक', विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून-२४८००१ , २००६, पृ. ५५ ।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

आधुनिक हरियाणा में महिला विकासः एक परिदृश्य

❑ मन्जू बाला

आज पूरे विश्व सहित भारत में भी महिला विकास को बढ़ावा दिया जा रहा है और महिलाओं की स्थिति में तेजी से परिवर्तन भी हो रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में चाहे राजनीति की बात हो या व्यवसाय की या चिकित्सा, अंतरिक्ष, इंजिनियरिंग, विज्ञान, उद्योग और मीडिया की, हर क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी योग्यता को दर्शाया है। इस आधार पर ये लगता है कि आज महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में बहुत सुधार हो गया है और आज वे तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर हैं। जबकि वास्तविक स्थिति इससे कुछ अलग व निराशाजनक है।

कोई भी समाज तभी विकसित कहला सकता है जब उसकी सभी जरूरतें पूरी हो जाती हों। भोजन, आवास, स्वास्थ्य सुविधाएं किसी भी व्यक्ति की आधारभूत जरूरतें हैं क्योंकि इनके बिना हम जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन ये जरूरतें सिर्फ जीवन निर्वाह की हैं। विकास की शर्ते कुछ अलग हैं। शिक्षा, लिंगानुपात, सामाजिक सुरक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाएं और काम करने की आजादी आदि को विकास का पैमाना माना जा सकता है। यदि विकास के इस पैमाने के आधार पर हम भारतीय महिलाओं की स्थिति को देखें तो निष्कर्ष निकलेगा कि भारतीय महिलाएं, पुरुषों के मुकाबले अन्य देशों की महिलाओं की तुलना में विकास की दौड़ में काफी पीछे हैं। यदि हरियाणा की बात करें तो भारत के अन्य हिस्सों की तुलना में यहां महिलाओं का विकास काफी कम है। प्रस्तुत आलेख में हरियाणा में महिला विकास की धीमी गति को, घटते हुए लिगांनुपात, बढ़ती हुई साक्षारता दर के साथ ही निरक्षरों की कुल संख्या में वृद्धि, महिला शिक्षा का निम्न स्तर, राजनीति में महिलाओं की कम भागीदारी के साथ-साथ सक्रिय साझेदारी का अभाव आदि के परिप्रक्ष्य में उजागर करने का प्रयास किया गया है।

कोई भी समाज तभी विकसित कहला सकता है जब उसकी सभी जरूरतें पूरी हो जाती हों। भोजन, आवास, स्वास्थ्य सुविधाएं किसी भी व्यक्ति की आधारभूत जरूरतें हैं क्योंकि इनके बिना हम जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन ये जरूरतें सिर्फ जीवन निर्वाह की हैं। विकास की शर्ते कुछ अलग हैं। शिक्षा, लिंगानुपात, सामाजिक सुरक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाएं और काम करने की आजादी आदि को विकास का पैमाना माना जा सकता है। यदि विकास के इस पैमाने के आधार पर हम भारतीय महिलाओं की स्थिति को देखें तो निष्कर्ष निकलेगा कि भारतीय महिलाएं, पुरुषों के मुकाबले और अन्य देशों की महिलाओं की तुलना में विकास की दौड़ में काफी पीछे हैं। यदि हरियाणा की बात करें तो भारत के अन्य हिस्सों की तुलना में यहां महिलाओं का विकास काफी कम है।

विकास की इस धीमी गति का एक प्रमुख कारण घटता लिंगानुपात है। आज हम प्रतिवर्ष हजारों शिशुओं की गर्भ में ही सिर्फ इसलिए हत्या कर देते हैं कि गर्भ में पल रहा वो जीव एक कन्या का है। क्या इस स्थिति के चलते महिलाओं का विकास सम्भव है। क्योंकि लिंगानुपात यानि प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या सीधे-सीधे समाज में महिलाओं की स्थिति का प्रतीक है। कम लिंगानुपात यानि कम विकसित राष्ट्र। इसका एक स्पष्ट उदाहरण हरियाणा और पंजाब जैसे राज्य हैं। "वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट २०१२ : जेंडर इक्वेलिटी एंड डेवलपमेंट" में प्रकाशित हुआ कि "हरियाणा में महिला बाल मृत्यु दर पुरुष के अनुपात में दुनिया के किसी भी देश की तुलना में बदतर है।"[1]

इस मामले में अगर आंकड़ों पर नजर दौड़ाएं तो पता चलता है कि देश के अति-विकसित राज्यों में हरियाणा का लिंगानुपात सबसे कम है।

अधिक लिंगानुपात वाले राज्य

केरल (१०५८) छत्तीसगढ़ (६६०) तमिलनाडु (६८६)

कम लिंगानुपात वाले राज्य

हरियाणा (८६१) सिक्किम (८७५) पंजाब (८७६)[2]

अगर जिला स्तर पर आंकड़ों को देखा जाए तो कुछ जिलों का लिंगानुपात निरन्तर कम हो रहा है जैसे १६६१ में महेन्द्रगढ़ का उच्चतर लिंगानुपात ६१० था जो २०११ में घट कर ८६५ रह गया। इसी तरह १६६१ में रेवाड़ी का ६२७ था जो २०११ में ८६८ रह गया।[3] उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि हरियाणा जैसे

❑ शोध अध्येत्री, इतिहास विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

अतिविकसित राज्य में न्यूनतम लिंगानुपात का कारण आर्थिक नहीं हो सकता, अपितु इसके पीछे कई सामाजिक व सांस्कृतिक कारण भी हैं। जो समाज अपनी बेटियों को पैदा ही नहीं होने देता उसे किस मुँह से हम विकसित कह सकते हैं।

शिक्षा भी विकास मापने का एक प्रमुख पैमाना है। साक्षरता को किसी भी समाज में सामाजिक व आर्थिक विकास का प्रतीक माना जाता है। सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक चेतना और आर्थिक विकास के लिए उच्च साक्षरता दर और शिक्षा की गुणवत्ता आवश्यक है। लेकिन इन दोनों के आधार पर ही हरियाणा पिछड़ा हुआ है। महिलाओं की शिक्षा की स्थिति और भी खराब है। तालिका (१) से स्पष्ट है कि अन्य भारतीय राज्यों की तुलना में साक्षरता दर के आधार पर हरियाणा का २२वां स्थान है। साक्षरता दर के आधार पर अगर हरियाणा अपने पड़ोसी राज्यों हिमाचल प्रदेश से पीछे है तो दूसरी ओर राजस्थान और उत्तर प्रदेश से बेहतर स्थिति में भी है।

तालिका १

पड़ोसी राज्यों में साक्षरता दर[४]

पड़ोसी राज्य	साक्षरता दर	भारत में स्थान
हिमाचल प्रदेश	८३.७८	११
पंजाब	७६.६८	२१
हरियाणा	७६.६४	२२
उत्तर प्रदेश	६६.७४	२६
राजस्थान	६७.०६	३३

तालिका (२) के आंकड़ों का अध्ययन करने से पता हमें चलेगा कि हरियाणा में साक्षरता दर में तो लगातार वृद्धि हुई है लेकिन जनसंख्या बढ़ने के कारण निरक्षरों की कुल संख्या भी तेजी से बढ़ी है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर में जितना अंतर है, उससे कहीं ज्यादा पुरुष व महिला साक्षरता दर में अंतर है जिससे हरियाणा में महिलाओं के सही विकास को आंका जा सकता है।

तालिका २

हरियाणा में साक्षरता दर[५]

सम्पूर्ण साक्षरता	कुल	ग्रामीण	शहरी
साक्षरता दर (२००१)			
पुरुष	७८.४६	७५.३७	८५.८३
महिलाएं	५५.७३	४२.२७	७१.३४
साक्षरता दर (२०११)			
पुरुष	८५.३८	८३.२०	८६.३७
महिलाएं	६६.७७	६०.६७	७७.५१

उपर्युक्त तालिका के आधार पर हम पाते हैं कि महिलाओं को साक्षरता दर पुरुषों के मुकाबले अब भी बहुत कम है। दूसरी ओर, यह माना जाता है कि लिंगानुपात और शिक्षा एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। हर स्थिति में कम लिंगानुपात का दोष शिक्षा पर डाला जाता है। लेकिन यह हरियाणा के लिए सही नहीं है। २०११ की जनगणना के अनुसार कुछ जिलों में कमजोर शैक्षणिक स्तर के बावजूद भी लिंगानुपात ज्यादा है। जैसे- मेवात जिले में शैक्षणिक स्तर ३६.६ प्रतिशत है, परन्तु लिंगानुपात में मेवात (६०७ महिलाएं प्रति १००० पुरुष) हरियाणा के सभी जिलों में आगे है।[६] यही स्थिति फतेहबाद, पलवल और हिसार की है जहां शैक्षणिक स्तर पर सबसे कम है जबकि लिंगानुपात राज्य में सबसे ज्यादा है।

इसके अतिरिक्त हरियाणा में महिलाओं के लिंगानुपात व शैक्षणिक स्तर में पुरुषों की तुलना में कमी के साथ-साथ उनके विकास में कमी का एक और कारण है। वह है काम की भागीदारी में कमी। पूर्ण रूप से सामाजिक सुरक्षा और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता न मिलने के कारण आज यहां की महिलाएं रोजगार के क्षेत्र में तो आ रही है, लेकिन इसकी दर बहुत कम और धीमी है। अगर जिलावार महिलाओं की काम की भागीदारी के आंकड़ों को देखें तो हम पाते हैं कि सरकार द्वारा महिलाओं के लिए शैक्षणिक सुविधाओं को बढ़ाएं जाने के बाद भी हरियाणा के कुछ जिलों में महिलाओं की काम की भागीदारी बहुत ही कम है जैसे- २०११ के आंकड़ों के अनुसार[७] अम्बाला में १४, यमुनानगर में १२, रोहतक में २१.२, सिरसार में २६.४ और फतेहाबाद में २८.६ रही। हरियाणा में १६६१ में महिलाओं को काम की भागीदारी के समय आंकड़े जहां १०.७६ प्रतिशत थे, वहीं २०११ में ये आंकड़े बढ़ कर २३.७ प्रतिशत हो गए। महिलाओं की काम की भागीदारी के ये आंकड़े उनके विकास को तो दर्शा रहे हैं लेकिन पुरुषों व अन्य राज्यों की तुलना में ये अब भी काफी कम है। इससे यह स्पष्ट है कि हरियाणा में आज भी पुरुषों और महिलाओं में काम के अवसर समान रूप से नहीं बांटे गए है। इसलिए महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने और समाज में सशक्त बनाने के लिए प्रेरित करने की जरूरत है। यह तभी सम्भव है जब वे अपनी आर्थिक व सामाजिक स्वतन्त्रता के लिए घर से बाहर निकलेगी और आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेंगी। रोजगार प्राप्त करना केवल सशक्तिकरण का एक स्रोत नहीं है बल्कि महिलाओं को स्वयं को पहचानने या समझने के लायक भी बनाता है।[८]

अगर राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी की बात करें तो संविधान में ७३वां और ७४वां संशोधन करके

महिलाओं को पंचायत स्तर पर ३३ प्रतिशत का आरक्षण तो जरूर दे दिया गया है, लेकिन हमारी व्यवस्था महिलाओं को राजनीतिक रूप से जागरूक करने में असफल रही है।[९] राजनीतिक रूप से उनके द्वारा किए जाने वाले निर्णयों के पीछे किसी और के विचार और किसी और की सोच होती है। वे केवल कठपुतलियों की तरह दूसरों के इशारों पर नाचती हैं। यही कारण है कि कुछेक नामों को छोड़कर आज राजनीति में महिलाओं की सक्रियता न के बराबर है। भारत के अन्य हिस्सों की तरह ही हरियाणा में भी राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की यही स्थिति है। हरियाणा पंचायती राज व्यवस्था में महिला प्रतिनिधित्व में भारत के अन्य राज्यों से काफी पिछड़ा हुआ है। हरियाणा में महिला प्रतिनिधित्व (३७ प्रतिशत) है तो झारखण्ड में (५६ प्रतिशत) उत्तराखंड में (५६ प्रतिशत), छत्तीसगढ में (५५ प्रतिशत), राजस्थान में (५० प्रतिशत), मध्यप्रदेश में (५० प्रतिशत), उत्तर प्रदेश में (४० प्रतिशत) है। हालांकि कुछ राज्यों में यह प्रतिशत हरियाणा से कम भी है जैसे- पंजाब में (३५ प्रतिशत), गुजरात में (३३ प्रतिशत), तमिलनाडु में (३५ प्रतिशत), गोवा में (३३.७ प्रतिशत)।[१०]

लेकिन हरियाणा में पंचायतों में महिला सशक्तिकरण अब भी एक कल्पना है क्योंकि महिलाएं साथ ही शिक्षित दुल्हनें केवल अपने परिवार की राजनीतिक प्रभाव से चुनाव जीतने में मदद करती हैं। यही कारण है कि आरक्षण मिलने के बावजूद भी हरियाणा में राजनीतिक रूप से महिलाओं का विकास बहुत कम हुआ है।

ऐसा भी नहीं है कि महिलाओं की स्थिति में सुधार व उनके विकास के लिए राज्य की सरकार द्वारा कोई प्रयास न किया गया हो। बल्कि हरियाणा की सरकार द्वारा राज्य की महिलाओं के स्तर और सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए बड़ी संख्या में नवीन योजनाएं शुरू की गई हैं। हरियाणा में महिलाओं के विकास के लिए घटते लिंगानुपात को रोकना, शैक्षणिक स्तर में बढ़ोतरी, काम की भागीदारी को बढ़ाना आवश्यक है। सरकार द्वारा इन समस्याओं से निपटने के लिए समय-समय पर प्रयास भी किए गए हैं जैसे- बेटी बचाओं, बेटी पढ़ाओं, सुकन्या समृद्धि योजना, आपकी बेटी हमारी बेटी, लाडली, धनलक्ष्मी, अपनी बेटी अपना धन जैसी योजनाओं से महिलाओं की स्थिति में सुधार के प्रयास किए गए हैं।[११] लेकिन इन प्रयासों का सही प्रभाव यहां की महिलाओं के जीवन पर दिखाई नहीं देता है।

जिस राज्य में महिलाओं को जन्म ही न लेने दिया जाता हो, जहां जन्म लेते ही कन्याओं का गला घोंट दिया जाता हो और जहां पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता हो, उन्हें स्वास्थ्य व शिक्षा से वंचित किया जाता हो, उस राज्य में कैसे कहा जा सकता है कि महिलाएं विकास की ओर अग्रसर है?विकास का अर्थ है, समानता और आजादी। अब यदि महिलाओं को समाज में समान अधिकार न हासिल हो और कन्याओं को जीने की ही आजादी न हो तो कैसे महिला विकास का दावा किया जा सकता है।

महिलाओं की बुरी स्थिति से सम्बन्धित सभी मुद्दे आपस में एकदूसरे से जुड़े हुए हैं और लड़कियों को शिक्षित करके ही केवल इनका हल निकल सकता है। अगर लड़कियों को पढ़ने का अवसर दिया जाए और आत्मनिर्भर बनाया जाए तो ये सभी मुद्दे हल हो जाऐंगे। शिक्षा किसी भी व्यक्ति के लिए एक सम्पत्ति है, जो उसे ज्ञान से पूर्ण करने में सहायता करती है। महिला वह है जो सही मार्गदर्शन करती है और एक शिक्षित महिला ही इस राष्ट्र को सही विकास की ओर ले जा सकती है। इस तरह राज्य सरकार को महिलाओं के लिए स्कूल शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक विशेष प्रबन्ध करने चाहिए। हरियाणा सरकार द्वारा महिला विद्यार्थियों को मुद्रा-सम्बन्धी इनाम देने चाहिए और स्कूल स्टेशनरी तथा वर्दी मुफ्त उपलब्ध करवानी चाहिए। स्कूलों और कॉलेजों में लड़कियों को शुल्क भत्ते भी दिए जा सकते हैं। ये थोड़े से प्रयास ही राज्य में महिलाओं के विकास में एक बड़ा योगदान दे सकते हैं।

सन्दर्भ

१. लेखराज निशा, रतीश कुमार, 'डिस्परिटीस इन सोशल स्टेट्स ऑफ वूमैन इन हरियाणा : इशू एंड चेलेंज', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन मैनेजमेंट एंड सोशल साइंस, वॉल्यूम-४, नं. ७, जुलाई २०१५, पृ. १६६

२. सारस्वती, स्वप्निल, 'महिला विकास', नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, २००५, पृ. ३८

३. सिंह रमन, 'हरियाणा', अरिहन्त पब्लिकेशन, नई दिल्ली २०१३, पृ. १६

४. वही, पृ. १५, भारत की जनगणना, २००१, २०११

५. सिंह रमन, पूर्वोक्त, पृ. १६

६. निशा, लेखराज, रतीश कुमार, पूर्वोक्त, पृ. २०३

७. निशा लेखराज, पूर्वोक्त, पृ. २०५

८. त्रिपाठी, रेणु व त्रिपाठी अपर्णा, 'कामकाजी महिलाएं, वास्तविक स्थिति', खुशी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २०११, पृ. २१५-१६

९. तंवर, रिचा व चावला, उषा, 'रूरल डेवेल्पमेंट एंड वूमैन इन पंचायती राज इंस्टिट्यूशन्स', एज इन सूरत सिंह और मोहिन्द्र सिंह (सं.), 'रूरल डेवेल्पमेंट एडमिनिस्ट्रेशन इन द २१वी सेंचुरी, - ए मल्टी डायमेंशनल स्टडी', दीप एंड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००६, पृ. ४०

१०. प्राथमिक डाटा से गणना के आधार पर

११. निशा, लेखराज, रतीश कुमार, पूर्वोक्त, पृ. २०६-२०८

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

उत्तराखण्ड में राजस्व पुलिस एवं नागरिक पुलिस क्षेत्रों में अपराधों का तुलनात्मक अध्ययन

❑ **कमल जोशी**

राजस्व पुलिस क्षेत्रों में नागरिक पुलिस की तुलना में घटित होने वाले अपराधों की संख्या बहुत कम है। उत्तराखण्ड में लगभग ६५ प्रतिशत क्षेत्रफल आज भी राजस्व पुलिस के क्षेत्राधिकार में होने के बावजूद इन क्षेत्रों में अपराधों का कम होना राजस्व पुलिस की सफलता के साथ-साथ इस क्षेत्र के लोगों के चारित्रिक गुणों को भी रेखांकित करता है। राजस्व पुलिस क्षेत्रों में पटवारी द्वारा छिटपुट अपराधों का आपसी सुलह-समझौते द्वारा निपटारा स्थानीय स्तर पर ही कर दिया जाता है, जिसके चलते इस क्षेत्र में अपराध कम ही पनप पाते हैं, दूसरी ओर नागरिक पुलिस क्षेत्रों में छिटपुट घटनाओं में भी गंभीर धाराओं को लगाने की प्रवृत्ति देखी जाती है, जिसके चलते इन क्षेत्रों में न केवल अपराधों की संख्या में इजाफा हो रहा है, बल्कि नागरिक पुलिस स्वयं बड़े अपराधियों को पैदा भी कर रही है। प्रस्तुत लेख उत्तराखण्ड में राजस्व पुलिस एवं नागरिक पुलिस क्षेत्रों में अपराधों का तुलनात्मक अध्ययन का एक प्रयास रहा है।

पुलिस की अवधारणा ही कानून व्यवस्था को बनाए रखने, अपराधों पर नियंत्रण एवं अपराधियों की धरपकड़ कर आम जनमानस को एक भयमुक्त वातावरण प्रदान करने के उद्देश्य से की गयी है। उत्तराखण्ड के इस भू-भाग में पुलिस प्रशासन दो भागों यथा - नागरिक पुलिस एवं राजस्व पुलिस के रूप में अस्तित्व में है। इस परिक्षेत्र में एक सामान्य परिधारणा है कि संसाधनों के अभाव के बावजूद राजस्व पुलिस क्षेत्रों में अपराधों की दर नागरिक पुलिस क्षेत्रों की तुलना में काफी कम है, जो राजस्व पुलिस के सकारात्मक पक्ष को इंगित करता है। कुछ गंभीर आपराधिक घटनाओं के संदर्भ में जनता द्वारा घटना की विवेचना राजस्व पुलिस से हटाकर नागरिक पुलिस को सौंपे जाने के अनुरोध भी किए जाते रहे हैं। प्रदेश में लगभग सभी जनपदों में ऐसे तमाम उदाहरण मौजूद हैं जिसमें राजस्व पुलिस द्वारा अपने सीमित संसाधनों से विवेचना कर अपराधियों को कठोरतम सजाऐं दिलायी गयी है। साथ ही कई मौकों पर आपराधिक विवेचना को व्यापक जनदबाव के चलते राजस्व पुलिस के क्षेत्राधिकार से नागरिक पुलिस के क्षेत्राधिकार में हस्तांतरित भी किए जाने के उदाहरण भी मौजूद हैं।

गोरखा शासन के पतन के बाद ०३ मई १८१५ को, टिहरी को छोड़कर, सम्पूर्ण कुमॉऊ-गढ़वाल ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कब्जे में आ गया। ई० गार्डनर को यहॉ का प्रथम प्रशासक नियुक्त किया गया। छः महीने बाद उनके सहायक ट्रेल को यहॉ का कमिश्नर नियुक्त किया गया। उत्तराखण्ड के इस पर्वतीय भूभाग में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें जमाने में ट्रेल की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

ट्रेल ने यहॉ का प्रशासक बनने पर महसूस किया कि इस पर्वतीय भूभाग में मैदानी क्षेत्र की तरह पटवारी का पद उपलब्ध नहीं था। केवल गढ़वाल में उदयपुर, बधान एवं नागपुर में एक कर्मचारी 'लिखवार' या 'लेखाधिकारी' था, जो कि एक प्रकार का 'उप-कानूनगो' ही था। कमीन और सयाने ही पट्टियों की बही लिखा करते थे। ट्रेल ने नानकर भूमि से प्राप्त राजस्व में ५०० रूपये की बढ़ोत्तरी होने पर कुमॉऊ के नौ बड़े परगनों यथा - बारामण्डल, पाली, फल्दाकोट, कोटा, काली कुमॉऊ, जोहार, दानपुर, ध्यानीरौ एवं सोर में एक-एक पटवारी को नियुक्त किया और उनकी तनख्वाह ५ रूपया प्रतिमाह नियत की।

इस पर्वतीय भूभाग की राजस्व व्यवस्था को और बेहतर करने हेतु ट्रेल द्वारा ५ और पटवारी के पद बढ़ाए गए और उनकी तनख्वाह को राजस्व कर की बढ़ी हुई दर से प्राप्त किया। इस प्रकार कुल मिलाकर ट्रेल द्वारा १४ पटवारियों के पदों का सृजन कर राजस्व प्रशासन एवं कानून व्यवस्था को चुस्त-दुरूस्त करने का प्रयास किया गया, जिसके अंतर्गत भू-राजस्व की वसूली, जमीन की पैमाइश का कार्य, काश्तकारों के आपसी विवादों का निपटारा एवं अपराधों के विषय में रिपोर्ट देने के उद्देश्य से राजस्व प्रशासन के कर्मचारियों को पुलिस अधिकार प्रदान किए। सर्वप्रथम सन् १८३० में इस पर्वतीय प्रदेश में राजस्व कर्मियों को पुलिस शक्तियॉ सौंपी गयी जो कि अधिनियमित न होने के बावजूद शासन में सुविधा की दृष्टि से लागू की गयी। **पटवारियों** की पुलिस शक्तियों को वैधानिक रूप सन् १८६१ के पुलिस एक्ट एवं सन् १८७४ के शेड्यूल्ड डिस्ट्रिक्ट एक्ट द्वारा

❑ शोध अध्येता लोक प्रशासन विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रदान किया गया। दीवानी एवं फौजदारी प्रशासन की सुगमता हेतु कुमॉऊ रूल्स १६२२ बनाए गए, जिसके अंतर्गत राजस्व फौजदारी प्रशासन में पुलिस शक्तियों का उपयोग करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों को परिभाषित किया गया है। शासनादेश संख्या १०८८/१-४२ दिनांक ०१ मई १६१६ के अनुसार पटवारियों हेतु निम्नलिखित दायित्व निर्धारित किए गए:-

१. भू-राजस्व एवं अन्य देयों की वसूली।
२. पुलिस अधिकारी के रूप में कार्य।
३. जमीन से संबंधित दस्तावेजों का रखरखाव।
४. जंगलात से संबंधित कार्य।
५. न्यायालय के निर्देशानुसार जमीन संबंधी कार्य।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी शासनकाल में प्रचलित फौजदारी राजस्व प्रबंध ब्रिटिश कुमॉऊ तथा गढ़वाल में प्रचलन में होने के बावजूद टिहरी रियासत में प्रचलित नहीं था। आजादी के पश्चात "टिहरी रियासत में पटवारियों को पुलिस शक्तियॉ स्पेशल पावर एक्ट द्वारा प्रदान की गयीं।"

एक व्यवस्था के रूप में राजस्व पुलिस प्रशासन के स्थापित हो जाने के बाद पटवारियों को समुचित प्रशिक्षण दिए जाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी, जिसकी पूर्ति हेतु "१६१३ के परिपत्र" द्वारा अल्मोड़ा नगर में पटवारी प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना हुई।

तालिका संख्या १ में प्रदर्शित है कि राजस्व पुलिस क्षेत्रांतर्गत उक्त अवधि में इस प्रांत में नैनीताल जनपद में अपराधों की संख्या सबसे अधिक रही है। अपराधों के मामले में पौड़ी जनपद दूसरे स्थान पर है। इसके बाद क्रमशः टिहरी, अल्मोड़ा, चमोली एवं पिथौरागढ़ में अपराधों का ग्राफ धीरे-धीरे कम होता गया है। जबकि देहरादून व उत्तरकाशी जनपद में इसी दौरान सबसे कम एवं संख्यात्मक रूप में एकसमान अपराध दर्ज किए गए, लेकिन उनकी मदें अलग-अलग थीं। हत्या की सर्वाधिक ३२ घटनाऐं नैनीताल जनपद में इस अवधि में दर्ज की गयी, जबकि सबसे कम हत्या की वारदातें उत्तरकाशी जिले में केवल २ दर्ज की गयी। इसी तरह लूट के मामलों में भी नैनीताल जनपद ३१ घटनाओं के साथ शीर्ष पर बना हुआ है, जबकि इसी दौरान पिथौरागढ़ एवं देहरादून जनपदों में लूट की केवल ४-४ घटनाऐं दर्ज की गयी हैं, जो कि इस पूरे क्षेत्र में सबसे कम हैं। डकैती की वारदातों में पौड़ी जिले में कुल ३ घटनाऐं दर्ज की गयी हैं, लेकिन इसी दौरान चार जिलों अल्मोड़ा, नैनीताल, टिहरी एवं चमोली में इस तरह की कोई वारदात दर्ज नहीं की गयी।

वर्ष २०१२, २०१३ एवं २०१४ में राजस्व पुलिस क्षेत्रों के अंतर्गत दर्ज किए गए अपराधों को तालिका २ द्वारा दर्शाया गया है।

वर्ष २०१२ की अवधि में राजस्व पुलिस के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत घटित कुल ३८ अपराधों में से ३१ अपराध भारतीय दण्ड संहिता की अन्य धाराओं से संबंधित छिटपुट अपराध ही हैं, जो कि इस दौरान घटित हुए कुल अपराधों का ८१.५७ प्रतिशत है। इस अवधि में गृहभेदन की कुल ४ घटनायें वर्ष में घटित अपराधों का १०.५२ प्रतिशत, लूट, हत्या एवं बलात्कार की १-१ घटनाऐं कुल घटित अपराधों का पृथक-पृथक २.६३ प्रतिशत हैं, जबकि इसी अवधि में बलवा, दहेज हत्या एवं फिरौती की कोई भी घटना नहीं हुई। वर्ष २०१२ में राजस्व क्षेत्रों के अंतर्गत कुल घटित ३८ अपराधों में से सर्वाधिक १५ आपराधिक घटनाऐं पौड़ी जिले में हुई हैं, जबकि इसी अवधि में पिथौरागढ़ एवं चमोली जिलों में कोई भी आपराधिक घटना नहीं हुई।

इसी प्रकार वर्ष २०१३ की अवधि में राजस्व पुलिस के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत घटित कुल ११६ अपराधों में से ६१ अपराध भारतीय दण्ड संहिता की अन्य धाराओं से संबंधित छिटपुट अपराध ही हैं, जो कि इस दौरान घटित हुए कुल अपराधों का ७६.४७ प्रतिशत है। इस अवधि में गृहभेदन की कुल ११ घटनायें वर्ष में घटित अपराधों का ६.२४ प्रतिशत, हत्या की ५ घटनाऐं - ४.२० प्रतिशत, दहेज हत्या एवं बलात्कार की ४-४ घटनाऐं कुल घटित अपराधों का पृथक-पृथक ३.३६ प्रतिशत हैं, जबकि इसी अवधि में लूट, बलवा एवं फिरौती की १-१ घटना कुल घटित अपराधों का पृथक-पृथक ०.८४ प्रतिशत रही हैं। आंकड़ों का गंभीरता से विश्लेषण करने पर यह देखा गया है कि इस वर्ष कुल घटित अपराधों की संख्या बढ़ी अवश्य है, लेकिन इस वर्ष के दौरान सर्वाधिक घटित अपराधों के प्रतिशत में पिछले वर्ष के मुकाबले कमी आई है, जबकि दहेज हत्या (जो कि पिछले वर्ष में शून्य थी) एवं बलात्कार के प्रतिशत में बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। इसी तरह बलवा, फिरौती की घटनाऐं भी पूर्व वर्ष में शून्य थी, लेकिन इस वर्ष इन्होंने भी अपराध तालिका में अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। वर्ष २०१३ में राजस्व क्षेत्रों के अंतर्गत कुल घटित ११६ अपराधों में से सर्वाधिक २७ आपराधिक घटनाऐं पौड़ी जिले में हुई हैं, जबकि इसी अवधि में चम्पावत जिले में कोई भी आपराधिक घटना नहीं हुई है।

इसी प्रकार वर्ष २०१४ की अवधि में राजस्व पुलिस के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत घटित कुल १०७ अपराधों में से ७७

अपराध भारतीय दण्ड संहिता की अन्य धाराओं से संबंधित छिटपुट अपराध ही हैं, जो कि इस दौरान घटित हुए कुल अपराधों का ७१.६६ प्रतिशत है। इस अवधि में हत्या की कुल घटित १० घटनाऐं वर्ष में घटित अपराधों का ६.३४ प्रतिशत, गृहभेदन की कुल ७ घटनायें वर्ष में घटित अपराधों का ६.५४ प्रतिशत, लूट, बलवा एवं दहेज हत्या की ३-३ घटनाऐं - पृथक-पृथक २.८० प्रतिशत, बलात्कार एवं फिरौती की २-२ घटनाऐं कुल घटित अपराधों का पृथक-पृथक १.८६ प्रतिशत रही हैं। आंकड़ों का विश्लेषण करने पर यह देखा गया है कि इस अवधि में वर्ष कुल घटित अपराधों की संख्या भी घटी है, साथ ही इस वर्ष भी सर्वाधिक घटित अपराधों के प्रतिशत में पिछले वर्ष के मुकाबले कमी आई है, जबकि हत्या (जो कि पिछले वर्ष में ५ थी) एवं लूट, बलवा (जो कि पिछले वर्ष में १-१ थे), एवं फिरौती (जो कि पिछले वर्ष में १ थी) के प्रतिशत में बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। इसके अलावा गृहभेदन, दहेज हत्या एवं बलात्कार के अपराधों में पिछले वर्ष के मुकाबले में कमी आई है। वर्ष २०१४ में राजस्व क्षेत्रों के अंर्तगत कुल घटित १०७ अपराधों में से सर्वाधिक २६ आपराधिक घटनाऐं पौड़ी जिले में हुई हैं, जबकि इसी अवधि में चम्पावत जिले में ३ आपराधिक घटनाऐं दर्ज हुई हैं।

राजस्व वादों के निस्तारण का विवरण पत्र माह- दिसंबर २०१३ के आंकड़ों का विश्लेषण करने पर यह देखा गया है कि राजस्व परिषद के पास कुल लंबित वादों की संख्या ८१३ थी, जिसमें से १३ वादों का निस्तारण राजस्व परिषद द्वारा किया गया, जबकि ८०० वाद अभी भी लंबित हैं। इन ८०० वादों में से ४८७ वाद ऐसे हैं, जो छः माह से भी ज्यादा समय से लंबित हैं।

गढ़वाल मण्डल के अंतर्गत कुल लंबित वादों की संख्या ३२७६४ थी, जिसमें से दिसंबर माह में ८५८८ वादों का निस्तारण किया गया। २४१७६ वाद गढ़वाल मण्डल में अभी भी लंबित हैं, जिसमें से छः माह से ज्यादा पुराने वादों की संख्या ६१४२ है। गढ़वाल मण्डल में सर्वाधिक लंबित वाद, १२०३२, देहरादून जनपद हैं।

कुमाऊँ मण्डल में इसी अवधि में कुल लंबित वादों की संख्या १७४७६ थी, जिसमें से ५५७६ वादों का निस्तारण इस अवधि में किया गया। ११६०३ वाद अभी भी लंबित हैं, जिसमें से ४१६४ वाद छः माह से भी ज्यादा समय से लंबित हैं। कुमाऊँ मण्डल में सबसे अधिक वाद उधमसिंहनगर जनपद के ६४१७ लंबित हैं।

इस अवधि में पूरे प्रदेश में लंबित वादों की संख्या ५२६८८ थी, जिसमें से १४२२१ वादों का निस्तारण इस माह में किया गया और ३८४६७ वाद अभी भी लंबित हैं, जिसमें से १२११८ वाद छः माह से भी अधिक समय से लंबित हैं।

तालिका ४ के अनुसार २०१२ में नागरिक पुलिस क्षेत्र में घटित कुल अपराधों की संख्या ८२७ में से कुमाऊँ मण्डल में ६३६ एवं गढ़वाल मण्डल में १८८ आपराधिक वारदातें दर्ज हुई हैं। सर्वाधिक आपराधिक घटनाऐं कुमाऊँ मण्डल में हल्द्वानी कोतवाली क्षेत्र में एवं सबसे कम घटनाऐं महिला थाना अल्मोड़ा में दर्ज की गयी हैं। गढ़वाल मण्डल में सर्वाधिक आपराधिक घटनाऐं कर्णप्रयाग कोतवाली क्षेत्र में एवं सबसे कम पोखरी थानाक्षेत्र, जिला चमोली में दर्ज की गयी हैं।

तालिका ४ के अनुसार २०१३ में नागरिक पुलिस क्षेत्र में घटित कुल अपराधों की संख्या ६७० में से कुमाऊँ मण्डल में ७७७ एवं गढ़वाल मण्डल में १६३ आपराधिक वारदातें दर्ज हुई हैं। सर्वाधिक आपराधिक घटनाऐं कुमाऊँ मण्डल में हल्द्वानी कोतवाली क्षेत्र में ६६६ एवं सबसे कम घटनाऐं थाना लमगड़ा, जिला अल्मोड़ा में ११ दर्ज की गयी हैं। गढ़वाल मण्डल में सर्वाधिक आपराधिक घटनाऐं मसूरी कोतवाली क्षेत्र में ५१ एवं सबसे कम पोखरी थाना क्षेत्र, जिला चमोली में ६ दर्ज की गयी हैं। इस वर्ष २०१३ में पूरे प्रदेश में आपराधिक घटनाओं की संख्या में वृद्धि दर्ज की गयी है।

२०१४ में नागरिक पुलिस क्षेत्र में घटित कुल अपराधों की संख्या १००८ रही है, जिसमें से कुमाऊँ मण्डल में ७७५ एवं गढ़वाल मण्डल में २३३ आपराधिक वारदातें घटित हुई हैं। सर्वाधिक आपराधिक घटनाऐं कुमाऊँ मण्डल के अंतर्गत हल्द्वानी कोतवाली क्षेत्र में ७०६ एवं सबसे कम घटनाऐं थाना लमगड़ा, जिला अल्मोड़ा में ०७ दर्ज की गयी हैं। गढ़वाल मण्डल में सर्वाधिक आपराधिक घटनाऐं मसूरी कोतवाली क्षेत्र में ६७ एवं सबसे कम पोखरी थानाक्षेत्र, जिला चमोली में १ दर्ज की गयी हैं। आंकड़ों का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि इस अवधि में कुल अपराधों की संख्या में पिछले दोनों वर्षो के मुकाबले बढ़ोत्तरी हुई है, लेकिन कुमाऊँ मण्डल में पिछले वर्ष की तुलना में अपराधों में मामूली कमी आई है, जबकि गढ़वाल मण्डल में अपराधों में तीव्र उछाल दर्ज किया गया है। तालिका ४ के अनुसार हल्द्वानी कोतवाली क्षेत्र प्रदेश का सर्वाधिक अपराध ग्रस्त क्षेत्र है। दूसरा स्थान मसूरी कोतवाली क्षेत्र का है, जबकि सबसे कम अपराध पोखरी थानाक्षेत्र जिला चमोली में दर्ज किए गए हैं।

तालिका संख्या ३ के वृहद विश्लेषण से यह दृष्टिगोचर होता है कि राजस्व पुलिस क्षेत्रों की अपेक्षा नागरिक पुलिस क्षेत्र में

अपराधों का ग्राफ काफी ज्यादा है और यह कम होने के बजाय दोनों क्षेत्रों में लगातार बढ़ ही रहा है। इस अवधि में नागरिक पुलिस क्षेत्रों में अपराध वृद्धि की दर काफी ज्यादा एवं राजस्व पुलिस क्षेत्रों में मामूली रही है।

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राजस्व पुलिस क्षेत्रों में नागरिक पुलिस के मुकाबले घटित होने वाले अपराधों की संख्या बेहद कम है। उत्तराखण्ड में लगभग ६५ प्रतिशत क्षेत्रफल आज भी राजस्व पुलिस के क्षेत्राधिकार में होने के बावजूद इन क्षेत्रों में अपराधों का कम होना राजस्व पुलिस की सफलता के साथ-साथ इस क्षेत्र के लोगों के चारित्रिक गुणों को भी रेखांकित करता है। राजस्व पुलिस क्षेत्रों में पटवारी द्वारा छिटपुट अपराधों का आपसी सुलह-समझौते द्वारा निपटारा स्थानीय स्तर पर ही कर दिया जाता है, जिसके चलते इस क्षेत्र में अपराध कम ही पनप पाते हैं, दूसरी ओर नागरिक पुलिस क्षेत्रों में छिटपुट घटनाओं में भी गंभीर धाराओं को लगाने की प्रवृत्ति देखी जाती है, जिसके चलते इन क्षेत्रों में न केवल अपराधों की संख्या में वृद्धि हो रही है, बल्कि नागरिक पुलिस स्वयं बड़े अपराधियों को पैदा भी कर रही है। उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार से जहॉ शहरों में सुविधाओं एवं जीवनस्तर में व्यापक अभिवृद्धि हुई है, वहीं अपराधों का संकेन्द्रण भी शहरों के आस-पास ही बढ़ा है।

तालिका संख्या १

कुमाऊँ एवं गढ़वाल के राजस्व पुलिस क्षेत्रों में अपराधों की स्थिति (१९९५-९७)

जनपद	हत्या (वर्ष)			लूट (वर्ष)			डकैती (वर्ष)		
	१९९५	१९९६	१९९७	१९९५	१९९६	१९९७	१९९५	१९९६	१९९७
अल्मोड़ा	३	४	३	०	७	४	०	०	०
नैनीताल	१७	१४	१	१९	११	१	०	०	०
पिथौरागढ़	३	८	२	४	०	०	१	०	०
देहरादून	४	१	०	२	०	२	२	०	०
उत्तरकाशी	०	१	१	४	२	२	०	१	०
टिहरी	४	५	५	६	२	१	०	०	०
चमोली	४	५	३	२	३	२	०	०	०
पौड़ी	५	६	८	५	७	५	२	१	०

तालिका संख्या २

राजस्व पुलिस क्षेत्र के अंर्तगत तीन वर्षीय अपराध आंकड़े

अपराध शीर्षक	वर्ष	कुमाऊँ मण्डल						गढ़वाल मण्डल							दोनों मण्डलों का योग
		अल्मोड़ा	बागेश्वर	पिथौरागढ़	चम्पावत	नैनीताल	**मण्डल का योग**	उत्तरकाशी	टिहरी गढ़वाल	चमोली	रूद्रप्रयाग	पौड़ी गढ़वाल	देहरादून	**मण्डल का योग**	
लूट	२०१२	१	०	०	०	०	**१**	०	०	०	०	०	०	**०**	**१**
	२०१३	०	०	१	०	०	**१**	०	०	०	०	०	०	**०**	**१**
	२०१४	०	०	२	०	१	**३**	०	०	०	०	०	०	**०**	**३**

अपराध शीर्षक		कुमायूँ मण्डल						गढ़वाल मण्डल							
हत्या	२०१२	१	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०	१
	२०१३	०	१	०	०	०	१	०	०	३	०	१	०	४	५
	२०१४	०	०	१	०	१	२	०	०	१	१	५	१	८	१०
बलवा	२०१२	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	२०१३	०	०	१	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०	१
	२०१४	०	०	२	०	०	२	०	०	०	०	१	०	१	३
गृहभेदन	२०१२	१	१	०	०	१	३	०	०	०	१	०	०	१	४
	२०१३	४	०	४	०	०	८	१	०	०	१	१	०	३	११
	२०१४	१	०	०	०	२	३	१	०	०	१	२	०	४	७
दहेज हत्या	२०१२	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	२०१३	०	१	१	०	१	३	०	०	१	०	०	०	१	४
	२०१४	०	१	०	१	०	२	०	०	०	०	१	०	१	३
बलात्कार	२०१२	१	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०	१
	२०१३	०	०	१	०	०	१	०	०	२	०	१	०	३	४
	२०१४	०	०	०	०	०	०	१	०	०	०	१	०	२	२
फिरौती हेतु अपहरण	२०१२	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	२०१३	०	०	०	०	१	१	०	०	०	०	०	०	०	१
	२०१४	०	०	०	०	०	०	१	०	०	०	०	१	२	२
अन्य भ.द.वि.	२०१२	६	०	०	२	१	६	१	२	०	१	१५	३	२२	३१
	२०१३	२१	५	४	०	८	३८	३	१३	५	६	२३	३	५३	६१
	२०१४	११	३	१८	२	३	३७	३	८	४	६	१६	३	४०	७७
कुल भ. द. वि	२०१२	१०	१	०	२	२	१५	१	२	०	२	१५	३	२३	३८
	२०१३	२५	७	१२	०	१०	५४	४	१३	११	७	२७	३	६५	११६
	२०१४	१२	४	२३	३	७	४६	६	८	५	८	२६	५	५८	१०७

तालिका संख्या ३

राजस्व वादों के निस्तारण का विवरण पत्रः माह दिसंबर २०१३

क्र. सं.	राज्य/मण्डल/जनपद	गत माह के अवशेष वाद	माह में दायर वाद	कुल योग	माह में निस्तारित वाद	माह के अंत में अवशेष वाद	छः माह पुराने वाद
	अध्यक्ष/सदस्य, राजस्व परिषद						
०१	अध्यक्ष, राजस्व परिषद	२१३	६	२२२	६	२१६	१५
०२	सदस्य, राजस्व परिषद	३५०	६	३५६	६	३५०	३१६
०३	परिषद सर्किट कोर्ट, पौड़ी	१५	०	१५	०	१५	१०
०४	परिषद सर्किट कोर्ट, नैनीताल	२०५	१५	२२०	१	२१६	१४६
	योग	**७८३**	**३०**	**८१३**	**१३**	**८००**	**४८७**
	गढ़वाल मण्डल						
०१	आयुक्त	८०१	४५	८४६	२०	८२६	६५७
०२	अपर आयुक्त, प्रशा०	७६६	२०	७८६	२४	७६२	६३८
	योग	**१५६७**	**६५**	**१६३२**	**४४**	**१५८८**	**१२९५**
०१	उत्तरकाशी	८२६	१४३	९७२	१६२	८१०	११८
०२	चमोली	१८४	११२	२९६	१०३	१९३	११
०३	टिहरी गढ़वाल	६१३	२१६	८२९	२१८	६११	१०१
०४	देहरादून	१२२६३	४८१६	१७०७९	५०४७	१२०३२	२१२५
०५	पौड़ी	१२१२	२३८	१४५०	२८८	११६२	६१६
०६	रूद्रप्रयाग	९९	४१	१४०	४६	९४	०
०७	हरिद्वार	९२२५	२७७३	११९९८	२७२४	९२७४	३१७१
	योग	**२४४२५**	**८३३९**	**३२७६४**	**८५८८**	**२४१७६**	**६१४२**
	मण्डलीय योग	**२५९९२**	**८४०४**	**३४३९६**	**८६३२**	**२५७६४**	**७४३७**
	कुमाऊँ मण्डल						
०१	आयुक्त	२६५	३०	२९५	२५	२७०	१५१
०२	अपर आयुक्त, प्रशा०	७५	०	७५	०	७५	४६
०३	अपर आयुक्त, न्या०	२८२	६	२८८	३	२८५	१०२
	योग	**६२२**	**३६**	**६५८**	**२८**	**६३०**	**३०२**
०१	नैनीताल	३६०७	२१४४	५७५१	२५४०	३२११	१३४६
०२	अल्मोड़ा	४८६	३२८	८१४	११३	७०१	१२२
०३	उधमसिंहनगर	६०५५	२८६४	८९१९	२५०२	६४१७	२२२२
०४	पिथौरागढ़	४३०	२९४	७२४	२०२	५२२	४८
०५	बागेश्वर	२०५	६६	२७१	४६	२२५	१२१
०६	चम्पावत	१५८	१८४	३४२	१४५	१९७	३३
	योग	**१०९४१**	**५८८०**	**१६८२१**	**५५४८**	**११२७३**	**३८९२**
	मण्डलीय योग	**११५६३**	**५९१६**	**१७४७९**	**५५७६**	**११९०३**	**४१९४**
	राज्य स्तरीय योग	**३८३३८**	**१४३५०**	**५२६८८**	**१४२२१**	**३८४६७**	**१२११८**

तालिका संख्या ४
नागरिक पुलिस क्षेत्रांतर्गत घटित अपराधों का विवरण (२०१२-२०१४)

अपराध शीर्षक	वर्ष	कुमाऊँ मण्डल							गढ़वाल मण्डल							
		महिला थाना अल्मोड़ा	थाना द्वाराहाट अल्मोड़ा	थाना सल्ट अल्मोड़ा	थाना लमगड़ा अल्मोड़ा	कोतवाली रानीखेत अल्मोड़ा	कोतवाली हल्द्वानी नैनीताल	**मण्डल का योग**	थाना पोखरी चमोली	थाना गोपे□र चमोली	थाना थराली चमोली	कोतवाली चमोली	कोतवाली कर्णप्रयाग चमोली	कोतवाली जो□मठ चमोली	कोतवाली मसूरी देहरादून	**मण्डल का योग**
भ.द.वि.	२०१२	३	२७	२९	८	२२	५५०	**६३९**	२	३६	८	३२	४९	१४	४७	**१८८**
	२०१३	१६	३५	१२	११	३७	६६६	**७७७**	९	२२	२२	३३	३३	२३	५१	**१९३**
	२०१४	१०	२४	११	७	१४	७०९	**७७५**	१	३७	११	३६	५२	२९	६७	**२३३**

संदर्भ

१. मुख्यमंत्री उ०प्र०, मण्डलीय समीक्षा बैठक, विवरण पत्र, लखनऊ, २३ अगस्त १९९७ ।
२. http://www.uk.gov.in / department of revenue .pdf
३. वेबसाईट- www.uk.gov.in jsosU;w dslst&fnlacj 2013-pdf
४. कार्यालय महिला थाना, अल्मोड़ा, पत्रांक संख्या १९७-४/१५ दिनांक १६ जनवरी २०१५ ।
५. कार्यालय थाना द्वाराहाट, जिला-अल्मोड़ा, पत्रांक संख्या २००१-१५ दिनांक २० जनवरी २०१५ ।
६. कार्यालय पुलिस थाना सल्ट, जनपद-अल्मोड़ा, पत्रांक- दिनांक १६ जनवरी २०१५ ।
७. कार्यालय पुलिस थाना लमगड़ा, जनपद-अल्मोड़ा, पत्रांक ६(३)-०२/२०१५ दिनांक १० फरवरी २०१५ ।
८. कार्यालय पुलिस कोतवाली रानीखेत, जनपद-अल्मोड़ा, पत्रांक ०३/२०१५ दिनांक २० जनवरी २०१५ ।
९. कार्यालय पुलिस कोतवाली हल्द्वानी, जनपद-नैनीताल, पत्रांक ५२७/१४ दिनांक ०४ फरवरी २०१५ ।
१०. कार्यालय पुलिस थाना पोखरी, जनपद-चमोली, पत्रांक ०१(१६)/२०१५ दिनांक २३ जनवरी २०१५ ।
११. कार्यालय पुलिस थाना गोपेश्वर, जनपद-चमोली, पत्रांक ०१(१६)/२०१५ दिनांक २० जनवरी २०१५ ।
१२. कार्यालय पुलिस थाना थराली, जनपद-चमोली, पत्रांक ०१(१६)/२०१५ दिनांक १२ फरवरी २०१५ ।
१३. कार्यालय पुलिस कोतवाली, जनपद-चमोली, पत्रांक ०१(१६)/२०१५ दिनांक २८ जनवरी २०१५ ।
१४. कार्यालय पुलिस कोतवाली कर्णप्रयाग, जनपद-चमोली, पत्रांक ०१(१६)/२०१५ दिनांक १२ फरवरी २०१५
१५. कार्यालय पुलिस कोतवाली मसूरी, जनपद-देहरादून, पत्रांक ४१/०५/२०१४ दिनांक १० फरवरी २०१५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं जीवन शैली पर नगरीय प्रभाव

❑ **अनीता बिष्ट**

वर्तमान भारत में ग्रामीण जीवन शैली का स्थान नगरीय संस्कृति के मूल्य व प्रवृत्तियाँ लेती जा रही हैं। आज ऐसा कोई भी गाँव अपवाद रूप में नहीं बचा है जो नगरीय संस्कृति व मूल्यों से अछूता हो। प्रथाओं-परम्पराओं के केन्द्र के रूप में पहचाना जाने वाले ग्रामीण समाज में परिवर्तन विभिन्न क्षेत्रों जैसे पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा शैक्षणिक आदि में प्रभावपर्णू ढंग से परिलक्षित हुए हैं। जहाँ ग्रामीण समुदाय आध्यात्मवाद, धर्म, ईश्वर, नैतिकता तथा पवित्रता के प्रतीक माने जाते थे वहीं आज इन मूल्यों पर नगरीय संस्कृति के मूल्य बाह्य आडम्बर, कृत्रिमता, वैयक्तिकता तथा असहजता ने ले लिया है। धर्म के महत्व में कमी आई है, वहीं पर आज धर्म निरपेक्ष मूल्यों का महत्व बढ़ा है। प्रस्तुत अध्ययन सामाजिक संरचना एवं जीवन शैली पर नगरीय प्रभाव को प्रदर्शित करने का एक प्रयास है।

ग्रामीण मूल्यों तथा ग्रामीण जीवन शैली का स्थान नगरीय संस्कृति के मूल्य व प्रवृत्तियाँ लेती जा रही हैं। आज ऐसा कोई भी गाँव अपवाद रूप में नहीं बचा है जो नगरीय संस्कृति व मूल्यों से अछूता हो। प्रथाओं-परम्पराओं के केन्द्र के रूप में पहचाना जाने वाले ग्रामीण समाज में परिवर्तन विभिन्न क्षेत्रों जैसे – सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा शैक्षणिक आदि में प्रभावपर्णू ढंग से परिलक्षित हुए हैं। जहाँ ग्रामीण समुदाय आध्यात्मवाद, धर्म, ईश्वर, नैतिकता तथा पवित्रता के प्रतीक माने जाते थे वहीं आज इन मूल्यों पर नगरीय संस्कृति के मूल्य बाह्य आडम्बर, कृत्रिमता, अपवित्रता तथा असहजता ने ले लिया है। धर्म के महत्व में कमी आई है, वहीं पर आज धर्म निरपेक्ष मूल्यों का महत्व बढ़ा है। धार्मिक कट्टरता का स्थान धार्मिक सहिष्णुता ने ले लिया है। इला शाह ने अपने शोध पत्र के माध्यम से यह बताया कि नगरीकरण किस प्रकार ग्रामीण जीवन पर प्रभाव डालता है और ग्रामीणों को पलायन के लिए क्यों विवश होना पड़ता है। बढ़ते नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण मैदानी शहरों में श्रमिकों की मांग बहुत तेज गति से बढ़ती गयी। स्कूलों की शिक्षा अधूरी छोड़कर भी युवा पलायन करने लगे हैं। धीरे-धीरे बढ़ते पलायन के कारण कृषि कार्य के लिए सक्षम लोगों की कमी होने लगी क्योंकि जो युवा शहरों में रोजगार प्राप्त कर रहे थे वे फिर उन्ही क्षेत्रो में स्थायी होकर बस गये और अपने पैतृक स्थानों को स्थायी तौर पर छोड़ते गयें। ऐसे में कृषि कर्मकारों की कमी के कारण कृषि योग्य भूमि बंजर हो गयी। साथ ही वनों, चरागाहो के घटने व सिमटने से उनकी पशु धारण क्षमता भी घटती गयी। आज शायद ही ऐसा गाँव होगा जहाँ से लगभग ४० प्रतिशत जनता पलायन नही कर रही है।[1]

वर्तमान ग्रामीण जीवन मुक्त जीवन शैली को अपना रहा है जो कि पूर्णतया नगरीकृत दिखलाई पड़ रहा है। आज ग्रामीण सम्बन्धों में भी व्यापक परिवर्तन आये हैं। ग्रामीण घनिष्ठता, भाईचारा व सहयोगी जीवन का स्थान कृत्रिमता व आडम्बर लेते जा रहे हैं। ग्रामीण समुदाय अपनी मौलिकता को खोता जा रहा है। ग्रामीण सादगीपूर्ण जीवन भी नगरों की भांति आडम्बर व दिखावा पूर्ण होता जा रहा हैं। मानव व्यवहार यन्त्रवत होता जा रहा है। मानव शांतिपूर्ण जीवन की खोज गाँवों में करता था किन्तु ग्रामीण जीवन में मूलभूत परिवर्तन होने के कारण ग्राम्य जीवन भी यन्त्रवत होता जा रहा है।

कान्ता मीणा ने स्पष्ट किया कि नगरीकरण, औद्योगीकरण, उच्च आधुनिक शिक्षा, राजनीतिक सामाजिक आन्दोलन एवं वर्ग संघर्ष परम्परागत जाति व्यवस्था के समक्ष चुनौती के रूप में उपस्थित हुए। बिटिश काल में आर्थिक आवश्यकता एवं महत्वाकांक्षा ने शिक्षित ब्राह्मण वर्ग को चमड़ा उद्योग की तरफ आकर्षित किया, जिसे ५० वर्षों से घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। शहरीकरण की प्रक्रिया ने जनजातीय महिलाओं के परम्परागत मूल्यों एवं संस्कारों के समक्ष चुनौती प्रस्तुत की है। इस नवीन प्रक्रिया ने जाति, धर्म, भाषा एवं क्षेत्र के बंधनों को तोड़कर अंतर वैयक्तिक संबंधों को वैचारिक आधार प्रदान किया। शिक्षित युवा, परिवार एवं समाज की कुप्रथाओं का सशक्त विरोध करने में सक्षम है। नई पीढ़ी के आधुनिक एवं प्रगतिशील विचारो ने पुरानी जनजातीय पीढ़ी को विवश कर दिया है कि वे स्थापित सामाजिक मूल्यों, परम्पराओं एवं मान्यताओं का पुनः परीक्षण करे।[2] यातायात तथा संचार-साधनों ने नगरीय

❑ **शोध अध्येत्री, एम०बी० (पी०जी०) कालेज, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)**

मूल्यों को तेजी से ग्रामों की ओर प्रोत्साहित किया है। परिणाम स्वरूप ग्रामीण लोगों में भी राजनीतिक जागरूकता बढ़ी है। डी.टी.एच. सेवाएं टेलीफोन व मोबाइल तथा इण्टरनेट सेवाओं के कारण भी आज तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। इन संचार साधनों के कारण ग्रामीण जीवन का सम्पर्क नगरीय जीवन से हुआ है। आज इन साधनों के द्वारा प्रतिक्षण नवीन परिवर्तनों का ज्ञान ग्रामीण जन सामान्य को हो रहा है। ग्राम्य जीवन का अभिन्न अंग टेलीविजन और मोबाइल फोन बनते जा रहे हैं। इनके क्षणिक अभाव होने पर मानव जीवन पंगु सा प्रतीत होता है। आज ग्रामीण समाज पर जनसंचार साधनों की वजह से नगरीय मूल्य एवं जीवन सीधे तौर पर पहुँच रहे हैं। आज ग्रामीण जीवन का प्रत्येक पक्ष नगरीकृत सा प्रतीत हो रहा है। आज विद्वानों में ग्रामीण समाज के नगरीय प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया के अध्ययन की होड़ सी दिखलाई पड़ती है।

ब्रजेश कुमार सिंह ने भारतीय हिन्दू विवाह पर नगरीकरण के प्रभाव को अपने अध्ययन के माध्यम से बताने का प्रयत्न किया है। नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप परिवार विवाह, धर्म, जाति आदि आधारभूत संस्थाएं परिवर्तन की तीव्र प्रक्रिया से गुजर रही हैं। निःसन्देह नगरीकरण का हिन्दू विवाह की संरचना एवं प्रकार्यात्मकता पर प्रभाव पड़ा है किन्तु यह भी सच है कि हिन्दू विवाह की बुनियादी संरचना और प्रतिमान में विशेष परिवर्तन नही आया है।[३] नगरीकरण वह सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसने आज ग्रामीण परिवारों कों विघटित किया है। गाँवो से संयुक्त परिवार के सदस्य जब रोजगार के लिए नगरों में अस्थायी रूप से जाकर बसते हैं तो वे नगरों के भौतिक आकर्षण से इतने प्रभावित हो जाते है कि साधारणतया पुनः गाँवो में लौटना पसन्द नहीं करते। नगरों में रहने के लिए अधिक साधनों की आवश्यकता होने के कारण वे एक ओर अपने ग्रामीण संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में से अपने हिस्से की मांग करते है तो दूसरी ओर नगर में स्थानाभाव के कारण वे अपने परिवार को साथ रखने की स्थिति में नही होते। नगर में नौकरी अथवा व्यापार के द्वारा उन्हें जो आय प्राप्त होती है उसका उपभोग वे स्वयं ही कर लेते है। यह सभी परिस्थितियां ग्रामीण संयुक्त परिवारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। नगरों में प्रवास करने वाले इन लोगों की प्रवृत्तियों का प्रभाव परिवार के दूसरे सदस्यों तथा अर्द्ध-ग्रामीण परिवारों के सदस्यों पर भी पड़ता है।

श्याम सुन्दर प्रसाद ने अपने अध्ययन में बताया कि नगरीकरण, औद्योगीकरण, परिवहन के साधनो में वृद्धि, अंग्रेजी शिक्षा की लोकप्रियता, राजनीतिक एवं सामाजिक जागरूकता, लोकतांत्रिक संस्कार और छुआछूत को दूर करने वाले कानून इत्यादि ने जातिवाद की कुप्रथाओं को कम कर दिया है। हर वर्ग द्वारा भेदभाव का दंश झेलने से ग्रामीण कमजोर वर्ग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गए है। इससे समाज में तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। अब ग्रामीण विवाह भी अंतर्जातीय व्यवस्था पर आधारित हो चुका है। अनुलोम विवाह' के साथ-साथ प्रतिलोम विवाह भी हो रहे हैं। वर्तमान में व्यक्ति के मूल्य जाति पर निर्भर न होकर ज्यादातर उसकी शिक्षा एवं उपलब्धि इत्यादि चीजों पर केंद्रित हो गये हैं। जजमानी व्यवस्था, ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामाजिक क्रम का मेरूदंड था। इस वंशानुगत एवं श्रेणीबद्ध व्यवस्था में 'जजमान' एवं 'कमीन' दो होते है लेकिन यह व्यवस्था धीरे-धीरे परिवर्तित हो रही है।[४]

ग्रामीण जीवन में आज अनेक ऐसी दशाएँ उत्पन्न हुई है। जिनके प्रभाव से ग्रामीण परिवारों की परम्परागत संरचना तथा इनके कार्यो में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न होने लगे है। लोगों की मनोवृत्तियाँ, विचार तथा जीवन शैली में तेजी से परिवर्तन आ रहे हैं।

उद्देश्यः- प्रस्तुत शोध का उद्देश्य रूद्रपुर ब्लाक के ग्रामीण जीवन की सामाजिक संरचना एवं जीवन शैली पर नगरीय प्रभाव का अध्ययन करना है। इस अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार है।

१. ग्रामीण पारिवारिक संरचना एवं वैवाहिक ढाँचे पर नगरीय प्रभाव का अध्ययन।
२. ग्रामीण जीवन के परम्परागत रीति रिवाजों एवं जीवन शैली में नगरीय प्रभाव का अध्ययन।
३. ग्रामीण शिक्षा पर नगरीय प्रभाव का विश्लेषण करना।

शोध अभिकल्प प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक एवं अन्वेषणात्मक शोध अभिकल्प लिया गया है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में रूद्रपुर नगर के निकटवर्ती ग्रामों को उद्देश्यपूर्ण निर्दशन के द्वारा चार ग्रामों छत्तरपुर, धर्मपुरु, बिन्दखेड़ा तथा फौजी मटकोटा का चयन किया गया है। ग्रामों के चयन में इस बात का ध्यान रखा गया है कि रूद्रपुर नगर के निकट स्थित गॉवों को चुना जाय। इन चयनित ग्रामों में परिवारों की कुल संख्या १२५८ हैं। चयनित ग्रामों के परिवारों में से कुल ३१५ परिवारों का चयन समग्र के रूप में उसी अनुपात में किया गया है। परिवारों का चुनाव करने के लिए ग्राम प्रधान से सूची प्राप्त करके सरल दैव निदर्शन पद्धति की लॉटरी विधि का प्रयोग किया गया है।

उपलब्धियाँ

तालिका संख्या-१

पारिवारिक समस्याओं के निराकरण में बुजुर्गो की सलाह

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१६६	५३.६५
नही	६६	२०.६५
कभी-कभी	८०	२५.४०
कुल योग	३१५	१००.००

तालिका संख्या १ से स्पष्ट होता है कि कुल ३१५ उत्तरदाता में से ५३.६५ प्रतिशत उत्तरदाता पारिवारिक समस्याओं के निराकरण में बुजुर्गो की सलाह लेते हैं। २०.६५ प्रतिशत उत्तरदाता बुजुर्गों की सलाह नही लेते हैं तथा २५.४० प्रतिशत उत्तरदाता बुजुर्गों की सलाह कभी-कभी लेते हैं।

तालिका संख्या-२

प्रेम-विवाह के प्रति उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
उचित	१३१	४१.५६
अनुचित	१८४	५८.४१
योग	३१५	१००.००

तालिका संख्या २ से स्पष्ट होता है कि कुल उत्तरदाताओं में से ४१.५६ प्रतिशत उत्तरदाता प्रेम विवाह को उचित मानते हैं तथा अधिसंख्यक (५८.४१ प्रतिशत) उत्तरदाता प्रेम विवाह को अनुचित मानते हैं।

तालिका संख्या-३

बाल- विवाह के प्रति दृष्टिकोण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
उचित	१७	५.४०
अनुचित	२९८	९४.६०
योग	३१५	१००.००

तालिका संख्या ३ से स्पष्ट होता है कि उत्तरदातों की नगण्य संख्या (५.४० प्रतिशत) बाल-विवाह को उचित मानती हैं तथा उनकी विपुलांश संख्या (९४.६० प्रतिशत) में उत्तरदाता बाल-विवाह को अनुचित मानते हैं।

तालिका संख्या-४

विधवा विवाह के प्रति उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
पक्ष में है	२२६	७१.७५
पक्ष में नही है	८९	२८.२५
योग	३१५	१००.००

तालिका संख्या ४ से स्पष्ट होता है कि अधिसंख्यक उत्तरदाता (७१.७५ प्रतिशत) विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में हैं तथा २८.२५ प्रतिशत उत्तरदाता विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में नही हैं।

तालिका संख्या-५

परिवार में खर्च के मानकों के आधार

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
मुखिया के आदेशानुसार	१९८	६२.८६
प्रमुख कमाने वाले व्यक्ति के आदेशानुसार	७३	२३.१७
सभी के अपने-अपने अनुसार	४४	१३.९७
कुल योग	३१५	१००.००

तालिका संख्या ५ से स्पष्ट होता है कि अधिसंख्यक उत्तरदाताओं (६२.८६ प्रतिशत) के परिवार में खर्च मुखिया के आदेशानुसार होता है। २३.१७ प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में खर्च प्रमुख कमाने वाले व्यक्ति के आदेशानुसार होता है, तथा १३.९७ प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में खर्च सभी के अपने-अपने अनुसार होता है।

तालिका संख्या-६

रहन-सहन के ढंग के संदर्भ में दृष्टिकोण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
परम्परागत भारतीय	१२	३.८१
साधारण	२११	६६.९८
आधुनिक	९२	२९.२१
कुल योग	३१५	१००.००

तालिका संख्या ६ से स्पष्ट होता है कि कुल उत्तरदाताओं में से ३.८१ प्रतिशत उत्तरदाताओं के रहन-सहन का ढंग परम्परागत भारतीय हैं। अधिसंख्यक ६६.९८ प्रतिशत उत्तरदाताओं के रहन-सहन का ढंग साधारण है तथा २९.२१ प्रतिशत उत्तरदाताओं के रहन-सहन का ढंग आधुनिक है।

तालिका संख्या-७

उत्तरदाताओं द्वारा मोबाइल फोन का प्रयोग

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	२३६	७४.९२
नही	७९	२५.०८
कुल योग	३१५	१००.००

तालिका संख्या ७ से स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में से अधिसंख्यक (७४.९२ प्रतिशत) मोबाइल फोन का प्रयोग करते हैं, तथा २५.०८ प्रतिशत उत्तरदाता मोबाइल फोन का प्रयोग नही करते हैं।

तालिका संख्या-८
शिक्षा ग्रहण कर रहें बच्चों के विद्यालय

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
सरकारी विद्यालय	२१७	६८.८६
अंग्रेजी माध्यम विद्यालय	९८	३१.११
कुल योग	३१५	१००.००

तालिका संख्या ८ से स्पष्ट होता है कि अध्ययन के अधिकांश (६८.८६ प्रतिशत) उत्तरदाता अपने बच्चों को सरकारी विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करा रहें है, तथा ३१.११ प्रतिशत उत्तरदाता अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करा रहें हैं।

तालिका संख्या-९
महिलाओं के लिए शिक्षा की अनिवार्यता

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	२९९	९४.९२
नही	१२	३.८१
कुल योग	३१५	१००.००

तालिका संख्या ९ से स्पष्ट होता है कि कुल ३१५ उत्तरदाताओं में से अधिकांशतः (९४.९२ प्रतिशत) महिलाओं के लिए शिक्षा को अनिवार्य मानते हैं तथा ३.८१ प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं के लिए शिक्षा को अनिवार्य नही मानते हैं।

निष्कर्षः अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नगरीय प्रभाव के फलस्वरूप ग्रामीण जीवन पर प्रभाव पड़ा है ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं जीवन शैली प्रभावित हुई है। पहले की अपेक्षा अब ग्रामीण परिवारों में पारिवारिक समस्याओं के निराकरण में बुजुर्गो की सलाह कम ली जाती है कुछ परिवारों में लोग अभी भी पूरी तरह से बुजुर्गों की सलाह पर ही निर्भर हैं। नगरीय प्रभाव से गॉवों में भी प्रेम विवाह का प्रचलन काफी बढ़ गया है किन्तु फिर भी अधिकांश ग्रामीण प्रेम विवाह को अभी भी गलत मानते हैं। ग्रामीण समाज में इक्का-दुक्का ऐसे लोग मौजूद हैं जो बाल-विवाह को अभी भी उचित मानते है। आधुनिक समाज में विधवा विवाह को अब गलत नही समझा जाता किन्तु समाज में कुछ लोग अभी भी इसे हेय दृष्टि से देखते हैं। ग्रामीण परिवारों में पहले पारिवारिक खर्च मुखिया के आदेशानुसार ही होता था किन्तु वर्तमान में खर्च अब परिवार के अन्य सदस्यों के आदेशानुसार भी होने लगा है। रहन-सहन का ढंग ग्रामीणों का बदलने लगा है, वह भी आधुनिक जीवन जीना पसन्द करने लगे हैं। आज गावों में लगभग घर-घर मोबाइल फोन है हर व्यक्ति मोबाइल का प्रयोग करने लगा है कुछ जो प्रयोग नहीं करते वह निर्धनता या अशिक्षा, अज्ञानता के कारण मोबाइल फोन का प्रयोग नही कर पातें। आज के दौर में प्रत्येक ग्रामीण व्यक्ति अपने बच्चों को अंग्रेजी शिक्षा दिलाना चाहता है और कुछ ग्रामीण अंग्रेजी शिक्षा दिला भी रहे है, जो अपने बच्चों को सरकारी विद्यालय में शिक्षा दिला रहे है वह निर्धनता के कारण दिला रहे हैं। अधिकांश ग्रामीणों का मानना है कि महिलाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य है, महिलाओं को शिक्षित होना जरूरी है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि नगरीय प्रभाव ने ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं जीवन शैली को काफी प्रभावित किया हैं। वर्तमान ग्रामीण समाज में नवीन मूल्यों एवं प्रवृत्तियों का जन्म हो रहा है। वर्तमान ग्रामीण जीवन मुक्त जीवन शैली को अपना रहा है जो कि पूर्णतया नगरीकृत दिखलाई पड़ रहा है। ग्रामीण समुदाय अपनी मौलिकता को खोता जा रहा है।

सन्दर्भ

१ शाह इला, 'पलायन कारण एवं परिणाम (उत्तराखण्ड के विशेश संदर्भ में)', राधा कमल मुकर्जीः चिन्तन एवं परम्परा, वर्ष १४, अंक १, २०१२, पृ. ५३

२ मीणा कान्ता, 'जनजातीय महिला विकास एवं भूमण्डलीकरणः एक समाजशास्त्रीय संदर्भ', राधा कमल मुकर्जीः चिन्तन एवं परम्परा, वर्ष १५, अंक १, २०१३, पृ. ६३

३ सिंह बृजेश कुमार, 'हिन्दु विवाह पर आधुनिकीकरण का प्रभाव एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधा कमल मुकर्जीः चिन्तन एवं परम्परा, वर्ष १६, अंक १, २०१४, पृ. १५

४ प्रसाद श्याम सुन्दर, जनवरी २०१५, 'ग्रामीण विकास की प्रवृत्तियां एवं सामाजिक परिवर्तन', योजना, वर्ष ५९ अंक ०१, २०१५ पृ. ६७

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

उत्तर भारत में आंतरिक व्यापारिक केन्द्र एवम् मार्ग : एक अध्ययन

❑ पिंकी कुमारी

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को निर्धारित करने में उसके व्यापार की मुख्य भूमिका होती है, इसी कारण व्यापार को महत्त्वपूर्ण माना जाता है।[१] पूर्वमध्यकालीन भारत में प्रायः सातवीं शती ईसवी से भारत का व्यापार पहले से कम हो गया था।

किसी भी देश की प्रगति उसके व्यापार पर निर्भर करती है। इसी कारण आर्थिक व्यवस्था में व्यापार एवं वाणिज्य को महत्वपूर्ण माना गया है। प्राचीन काल से ही भारत ने व्यापार के क्षेत्र में बहुत प्रगति की है जिसके कारण वह विश्व का प्रमुख राष्ट्र बन गया। परंतु पूर्व मध्य काल में स्थिति प्राचीन काल से भिन्न थी। गुप्त काल के पश्चात राजनीतिक उथल-पुथल के वातावरण में व्यापार वाणिज्य कम होता गया। मार्क्सवादी इतिहासकारों डी.डी. कौशाम्बी, आर.एस. शर्मा, बी. एन.एस. यादव, डी.एन. झा आदि का मानना है कि इस काल के अंतर्गत पूर्व कालों की अपेक्षा व्यापार में कमी आई और सत्ता का विकेन्द्रीकरण हुआ फलस्वरूप सामंतवाद का विकास हुआ और मार्क्सवादी इतिहासकार रणवीर चक्रवर्ती, बी.डी. चट्टोपाध्याय, ब्रजेश कृष्ण आदि के अनुसार इस काल में उत्तर भारत के आंतरिक व्यापार के स्वरूप में बदलाव आया था। प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत के आंतरिक व्यापारिक केन्द्रों, व्यापारिक वस्तुओं एवं मार्गों पर प्रकाश डालना रहा है।

इस काल के अंतर्गत ६०० ई. सन् - १००० ई. सन् के मध्य नये परिवर्तन देखने को मिलते हैं, जिसमें नए व्यापारिक संघों का उदय होना तथा नए आन्तरिक व्यापारिक केन्द्रों का विकसित होना था, जिन्हें उत्तरी भारत में 'मंडीपिकाएं' कहा जाता था।[२] देश के आंतरिक भागों में व विशेषकर ग्रामीण अंचल में माल का खरीदना-बेचना सीधा उत्पादनकर्ता व उपभोक्ता के बीच हुआ करता था। अब व्यापार- स्थल के रूप में हाट या मण्डिपिकाएं अर्थात् मण्डियाँ होती थीं, यदि बिक्री के बाद माल बच जाता तो वह देश के अन्य व्यापारिक केन्द्रों में भेज दिया जाता।

समराइच्चकहा में हट्ट शब्द का उल्लेख आया है जिसका प्रयोग आज हाट या बाजार के रूप में किया जाता है।[३] इस काल में बाह्य व्यापार की अपेक्षा आंतरिक व्यापार की स्थिति बेहतर थी। समकालीन साहित्य से स्पष्ट होता है कि भारतीय व्यापारी देश के प्रत्येक भाग से माल खरीदकर उन स्थानों पर पहुँचाते थे जहाँ उनकी माँग होती थी। फलस्वरूप देश के आंतरिक क्षेत्रों में श्रेणियों की शक्ति में वृद्धि होने लगी। नवीं शताब्दी के पेहोवा अभिलेख में उल्लेख है कि पेहोवा में घोड़े बेचने वाले व्यापारी देश के प्रत्येक भाग से आते थे।

गुप्तोत्तरकाल में राजनैतिक व्यवस्था के बिखराव, सामंतीय व्यवस्था तथा विदेशी आक्रमणों में दास व्यापार को गतिशीलता मिली जिससे दास व्यापार आर्थिक गतिविधियों का कारक बन गया। इस काल में देश के विभिन्न राज्यों में व्यापार होता था जिससे धीरे-धीरे व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला और व्यापार में बढ़ोतरी हुई।

प्रस्तुत शोध-पत्र उत्तर भारत में आंतरिक व्यापारिक केन्द्र, एवम् मार्ग : एक अध्ययन (६०० ई. सन् १२०० ई. सन्) का लिखने का उद्देश्य पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत के आतंरिक केन्द्रों, व्यापारिक वस्तुओं एवम् मार्गों पर प्रकाश डालना है।

मण्डिपिकाओं का महत्त्व : पूर्व मध्यकाल में गाँव की अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर बनने और स्थानीय दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माल को खरीदने-बेचने के लिए व्यापारिक केन्द्रों अर्थात् मण्डिपिकाओं की आवश्यकता थी। वास्तव में इस काल में नए आंतरिक व्यापारिक केन्द्र विकसित हुए थे। इनके प्रमुख केन्द्रों में कांगड़ा, ग्वालियर, भरतपुर, जबलपुर, नाडौल, जालौर, काठियावाड़, गुजरात, राजस्थान प्रमुख व्यापारिक 'मण्डिपिकाएं' थीं। कुछ अभिलेखों में स्पष्ट तौर पर 'मंडीपिका' वस्तुओं के लेन-देन के व्यापारिक केन्द्र बताए गए हैं।

छोटी व्यापारिक मण्डियों को 'मण्डिपिकाएं' और बड़ी-बड़ी व्यापारिक मण्डियों को 'महामण्डिपिकाएं' कहा जाता था।[४] ततान्दपुर (बुलंदशहर जिले में गंगा के पश्चिमी तट पर स्थित आधुनिक अहाड़) ८६७-६०४ ई. में गुर्जर-प्रतिहार का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। ६५३ ई. के अहाड़[५] (उदयपुर) के एक अभिलेख में लिखा है कि वहाँ कर्णाट, मध्यप्रदेश, लाट, टक्क (चिनाव और रावी के बीच का प्रदेश) के व्यापारी घोड़े एवम्

❑ शोध अध्येत्री, इतिहास विभाग, एम.डी. यूनिवर्सिटी, रोहतक (हरियाणा)

हाथी के व्यापार के लिए एकत्र होते थे। अहाड़ (उदयपुर) में आवासीय गृह व दुकानें भी बनी हुई थीं[६]।

सियाडोनी झाँसी जिले में ललितपुर के पास स्थित है, इस स्थान से गुर्जर-प्रतिहाकालीन (६०७ ई. - ६६८ ई.) कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं। नमक व्यापारी, तेल के व्यापारी भी इस व्यापारिक नगर में व्यापार करते थे। ६०७ ई. के एक अभिलेख में उल्लेख मिलता है नमक व्यापारी एक दिन में नमक के व्यापार से ५ द्रम्म इकट्ठा कर लेते थे।[७] पृथूदक (आधुनिक पेहोवा) हरियाणा के कुरूक्षेत्र जिले में है, पृथूदक गुर्जर-प्रतिहारों के समय घोड़ों के खरीदने-बेचने का प्रमुख केन्द्र था।[८] पेहोवा घोड़ों के व्यापार का प्रसिद्ध नगर था। ग्वालियर (गोपगिरि) से ८७५-८७६ ई. में दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिससे ज्ञात होता है, ग्वालियर एक व्यापारिक केन्द्र था। यह केन्द्र व्यापार की श्रेणियों के हाथ में था।

बिल्हारी अभिलेख ६७५ ई. में वर्णन है कि जबलपुर प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था, यहाँ पर एक घोड़ा एक द्रम्म में मिलता था। यहाँ पर नमक, तेल, पान, लता के पत्ते, फसलें, फल, काली मिर्च, सुखाया हुआ अदरक, हरी सब्जियों का भी व्यापार होता था। व्यापारी देश के आंतरिक भागों में माल का आयात-निर्यात करते थे। नाडोल (राजस्थान) मंडीपिका में प्रतिदिन बाजार लगता था। यह मंडीपिका प्रतिदिन ५ द्रम्म देती थी। इस मंडीपिका में १२ गाँव आते थे, इसे 'शुल्कामंडीपिका' भी कहा जाता था। यह कृषि उत्पादक राज्य के साथ-साथ राजनीतिक केन्द्र भी था।[९] मंडीपिका की नियमित आय के लिए वस्तुओं का मूल्य निर्धारित किया जाता था। पूर्वमध्यकाल में हाट या मण्डिपिकाएं प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे, समकालीन अभिलेखों में 'हट्टपति' का बाजार का मालिक के रूप में उल्लेख मिलता है।

'शौल्किक' अधिकारी चुंगी लेने वाले कर्मचारी के रूप में नियुक्त था। 'तारिक' नामक कर्मचारी नियुक्त किया जाता था जो माल को समुद्र पार उतरने में सहायता करता और उचित कर वसूल करता था।

व्यापारिक केन्द्रों का महत्त्व : पूर्वमध्यकाल में नगरों तथा व्यापारिक गतिविधियों का आपस में घनिष्ठ संबंध था। ग्रामों में उत्पन्न खाद्यान्नों का अधिशेष नगरों में बिक्री हेतु पहुँचता था।

किसी काल विशेष के व्यापार का आकंलन करते समय उस काल के व्यापारिक केन्द्रों के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। उत्तर भारत के प्रसिद्ध नगर कन्नौज, कपिशा, अहिच्छत्र, अंतरजीखेड़ा, कश्मीर, थानेश्वर, मथुरा, सरहिंद, जालंधर काफी प्रसिद्ध एवम् समृद्ध नगर थे।[१०] बाण के अनुसार थानेश्वर नगरी 'अर्थियों के लिए चिंतामणि भूमि तथा व्यापारियों के लिए लालभूमि थी। थानेश्वर की सम्पत्ति और समृद्धिशीलता का उल्लेख ह्वेनसांग ने भी किया है।[११]

हमारे अध्ययन काल में मथुरा प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। इसके स्निग्ध और धारीयुक्त वस्त्रों की माँग सर्वत्र होती थी। श्रावस्ती और उज्जयिनी भी प्रमुख व्यापारिक नगर थे, देश के भिन्न-भिन्न भागों के व्यापारी व्यापार के लिए नियमित आते जाते रहते थे। मिहिरभोज के पेहोवा अभिलेख से ज्ञात होता है कि पेहोवा पूर्वमध्यकाल में घोड़ों के व्यापार का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था।[१२] पेहोवा के अतिरिक्त अहाड़, कश्मीर, थानेश्वर, ग्वालियर भी घोड़ों के व्यापार के प्रमुख केन्द्र रहे थे।

व्यापारिक वस्तुएँ : पूर्वमध्यकाल में देश के अन्दर विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों का आपसी व्यापार होता था, जो मनुष्यों के उपभोग की विभिन्न सामग्रियों को देश के एक कोने से दूसरे कोने तक उपलब्ध कराने का एक साधन था।

पूर्वमध्यकाल में समाज सामन्तवादी ढ़ाँचे में ढला हुआ था, जिसमें एक तरफ तो अत्यधिक सम्पन्न लोग थे, दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्र में निर्धन लोग। दैनिक उपयोग की वस्तुएँ नमक, मसाले, धान, लोहा, कपड़े, हाथी दाँत, लाख, चँवर, कुम्भहारों द्वारा निर्मित बर्तन एवम् दूसरी वस्तुएं एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाती थीं। बंगाल मखमल, पान, सुपारी, सण के लिए प्रसिद्ध था।[१३] द्वारका शंख व सीपी के लिए, गुजरात सूती कपड़े, नील, चमड़े की वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध था। इस काल में उत्तर भारत में कुरूक्षेत्र, दिल्ली में ईख का उत्पादन किया जाता था।[१४]

दास व्यापार : पूर्वमध्यकाल में दास व्यापार से संबंधित साहित्यिक तथा अभिलेखीय प्रमाण मिलते है वास्तव में प्राचीनकाल से ही दास व्यापार होता आया हैं। महाभारत में उल्लेख मिलता है कि पाटलीपुत्र दास व्यापार का केन्द्र था।[१५] मनुस्मृति में सात प्रकार के दासों का उल्लेख मिलता है - १. ध्वजाहत (युद्ध में जीता हुआ), २. भक्तदास (जिसने आत्मसमर्पण कर दिया हो), ३. गृहज (दासी का पुत्र), ४. क्रीत (खरीदा हुआ), ५. दत्रिम (दूसरे स्वामी का दिया हुआ), ६. पैत्रिक (दास के वंशज), ७. दण्डदास (दण्ड के रूप से बनाया हुआ दास)।

परन्तु गुप्तोतरकाल में केन्द्रीय व्यवस्था के बिखराव, सामन्तीय व्यवस्था तथा विदेशी आक्रमणों से दास व्यापार को गतिशीलता मिली जिसे दास व्यापार आर्थिक गतिविधियों का कारण बन गया। सामंतीय विलासता अन्तर्राष्ट्रीय दास व्यापार संबंधों ने अन्तर्राष्ट्रीय दास व्यापार को बढ़ावा दिया।[१६] दास व्यापार

स्त्रियों-पुरुषों दोनों का होता था। कोल्यमालाकथा में दासों के बारे में लिखा है कि उत्तरी भारत से दक्षिणी भारत में सोने के बदले दासों को खरीदा जाता था।[१७]

लेखापद्धति में भी दास व्यापार के केन्द्रों का वर्णन है।[१८] लेखापद्धति में महाराष्ट्र तथा गुजरात से लड़कियों को पकड़कर बेचे जाने का प्रमाण मिलता है।[१९]

बंदी बनाए गए पुरूष दासों की कीमत दास की बलिष्ठता, योग्यता तथा उम्र देखकर निर्धारित की जाती थी। साहित्यिक व अभिलेखीय प्रमाणों से ज्ञात होता है गुजरात, गौड, मालवा दास व्यापार के केन्द्र थे। दास व्यापार ने पूर्वमध्यकालीन व्यापार -वाणिज्य को बढ़ावा देने में एक कारक की भूमिका निभाई थी।[२०] तुर्कों के आक्रमणों ने भारत में दास व्यापार को बढ़ावा दिया। ११९२ ई. में मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज चौहान को परास्त करने के बाद अजमेर नगर से हजारों हिंदुओं को पकड़कर दास बना दिया था।[२१] इसी प्रकार कुतुबद्दीन ने कालिंजर युद्ध को जीतने के बाद वहाँ से ५०,००० हिंदुओं को पकड़ा दास बनाया।[२२] महमूद के निदार भीम पर आक्रमण के बाद में दास इतनी ज्यादा संख्या में बनाए की उनकी कीमतें गिर गई।[२३]

काफिला व्यापार : एक राज्य से दूसरे राज्य में व्यापार करने वाले व्यापारी काफिलों में रहकर व्यापार करते थे। याज्ञवल्क्य स्मृति पर विश्वरूप की टीका में उन व्यापारियों के निगम के लिए जो एक काफिले में चलते थे नैगम शब्द प्रयुक्त किया है इस काल के साहित्य में व्यापारियों को काफिलों का वर्णन बहुयातायात से मिलता है।[२४] त्रिशष्टिश्ला -कापुरुषचरित में लिखा है कि काफिलों के नेता धन ने ढोल पिटवाकर यह घोषणा कराई कि जो व्यापारी माल लेना चाहेगा, उन्हें माल देगा, जो माल ढोने के लिए सवारी चाहेंगे उन्हें सवारी, जो खाद्यान्न चाहेगें उन्हें खाद्यान्न, जो जंगली पशुओं और डाकुओं से सुरक्षा चाहेगें उन्हें सुरक्षा। सार्थवाह व्यापारियों का नेतृत्व करता था, वह कुशल-पथप्रदर्शक होता था। व्यापारी वर्ग काफिलों में रहकर व्यापार करते थे ताकि चोर डाकुओं से सुरक्षित रहें।

माप-तौल के साधन : किसी भी देश और काल में प्राप्त मुद्रा उस समय की आर्थिक गतिविधि के प्रतिबिम्ब होते हैं। इस काल की मुद्रा में कमी आई परन्तु मुद्रा का प्रचलन पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ था।[२६] मुद्रा का प्रतिदिन व्यापार में उपयोग था। मुद्रा विनिमय का माध्यम थी। चाहमान काल में 'विशोपक' नामक मुद्रा का प्रचलन था। द्रम्म का बीसवां भाग होने के कारण ही इस मुद्रा को 'विशोपक' कहा गया था।[२७]

राजतरंगिणी और कथासरितसागर में सुवर्ण रूपक के साक्ष्य से प्रदर्शित होता है कि रूपक को सिक्कों के रूप में प्रयोग किया गया है।[२८]

पूर्वमध्यकाल में लक्ष्मणराज द्वितीय के कारीतलाई शिलालेख में 'खारि' नामक मामक का उल्लेख मिलता है, जिसका प्रयोग अन्न मापने के लिए किया जाता था।[२९] एक 'खारि' बीस 'द्रोण' के बराबर होता था। 'गोणी' नामक मापक का भी वर्णन मिलता है जो चार 'खारि' के बराबर होता था। मापतौल के रूप में 'भारक' नामक मापक का प्रयोग सुपारी, कालीमार्च, सोंठ तथा सामग्रियाँ तौलने के लिए किया जाता था। नमक मापने के लिए 'खण्डिका' नामक मापक का उल्लेख मिलता है।

मुस्लिम काल की मुद्रा की यह विशेषता थी कि अब धीरे-धीरे सोने के स्थान पर मुलम्मा चढ़ी चाँदी, चाँदी और कांसे का मिश्रण और ताँबे के सिक्के ढाले जाने लगे। दसवीं सदी के बाद सिक्कों का प्रचलन बढ़ा जो बढ़ती हुई व्यापारिक गतिविधियों का प्रतीक है।

यातायात के साधन : पूर्वमध्यकाल में व्यापार के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले साधनों का वर्णन तत्कालीन अभिलेखों तथा अरब यात्रियों के विवरणों में मिलता है। सुलेमान, इब्नखुर्दज्बा और अलमसूदि आदि ने अपने वृतान्तों में यातायात के साधनों का वर्णन किया है भाष्यकर मेधातिथि के विवरण से ज्ञात होता है कि बैल, खच्चर, भैंस और अन्य पशुओं को गाड़ियों में जोतकर अथवा उनकी पीठ पर सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता था।[३०]

उपमितिभव प्रपंचकथा से ज्ञात होता है कि माल ढोने के लिए व्यापारी, व्यापारिक काफिलों को ऊँट, घोड़े आदि पशु माल ढोने के लिए उपलब्ध कराते थे।[३१] गुप्तकाल में माल ढोने वाले और व्यापारियों के लिए जो नियम थे वे इस काल में भी लागू किए जाते थे। उदाहरण के लिए मेधातिथि ने लिखा है कि यदि कोई व्यापारी माल ले जाने के लिए किसी से गाड़ी किराये पर ले और गाड़ी वाला माल लेकर नहीं आए तो उसे किराया नहीं लेना चाहिए।[३२]

राजतरंगिणी में भी नदियों द्वारा यात्रा करने का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। गाहड़वाल शासकों के अभिलेख इस बात की पुष्टि करते हैं कि सरकार के पास अपनी नावें होती थीं जिन्हें नाविकों और व्यापारियों को किराए पर दिया जाता था।

आंतरिक व्यापार के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले व्यापारिक मार्ग : पूर्वमध्यकाल में देश के सभी नगर और ग्राम विभिन्न स्थल और जल मार्गों से परस्पर जुड़े हुए थे।

व्यापारी इन मार्गो के माध्यम से आंतरिक एवम् बाह्य व्यापार करते थे। मेधातिथि ने व्यापार के लिए प्रयोग किए जाने वाले स्थल एवम् जल, दोनों जगह के मार्गों का उल्लेख किया है।[३३]

मोतीचंद्र के अनुसार उत्तर, दक्षिण एवम् पश्चिम दिशाओं से आने वाले मार्ग त्रिपुरी में मिलते थे और इनमें से एक मार्ग बुंदेलखंड होता हुआ, त्रिपुरी को प्रयाग से जोड़ता था। दक्षिण में यह मार्ग नागपुर होते हुए वत्सगुलम तक जाता था और उससे भी आगे आंध्र देश तक पहुँचता था।[३४] अलबेरूनी (११वीं शताब्दी के अरब लेखक) ने भारत के विभिन्न प्रदेशों और नगरों को जोड़ने वाले मार्गों की विस्तार से चर्चा की है।[३५]

अलबेरूनी ने कुल १५ मार्गों का उल्लेख किया है जो कि कन्नौज, मथुरा, बाड़ी, बयाना, धार, अनहिलपाटण (गुजरात) से देश के विभिन्न मार्गों को जाते थे। एक मार्ग कन्नौज से प्रयाग और तत्पश्चात् पूर्वी तट पर जाकर दक्षिण में कांजीवरम तक जाता था। दूसरा मार्ग कन्नौज, वाराणसी और तत्पश्चात् गंगा के मुहाने तक जाता था। तीसरा मार्ग कन्नौज से लेकर पूर्व में कामरूप और उत्तर के सीमावर्ती प्रदेश नेपाल और तिब्बत तक पहुँचता था।

चौथा मार्ग कन्नौज से दक्षिण की ओर जाकर दक्षिण तट पर स्थित बनवासी (दक्षिण से कदम्ब-राजवंश की राजधानी) को जोड़ता था। पाँचवा मार्ग, कन्नौज से बजान था नारायण तक और तत्पश्चात् गुजरात की राजधानी तक जाता था। छठा मार्ग मथुरा से धार तक पहुँचता था। सातवाँ मार्ग धार से उज्जैन को जोड़ता था। आठवाँ मार्ग धार से होकर मान्दगिरि गोदावरी तक जाता था। नौवा मार्ग धार से पश्चिम की ओर सागरतलीय तान को जोड़ता था। दसवाँ मार्ग बजान से काठियावाड़ के दक्षिण सोमनाथ तक फैला था।

ग्यारहवाँ मार्ग अनहिलवार (ऊनहिलपाटन) से बम्बई के पश्चिमी तट तान तक जाता था बारहवाँ मार्ग बजान से भाटी (भटिण्डा) होते हुए सिंधु नदी के मुहाने पार स्थित लोहरानी (संभवत वर्तमान कराची) तक पहुँचता था। तेरहवाँ मार्ग कन्नौज से कश्मीर तक जाता था।

चौदहवां मार्ग कन्नौज से पानीपत, अटक, काबुल और गजनी तक पहुँचता था। पन्द्रहवाँ मार्ग बब्रघन से अधिष्ठान (कश्मीर की राजधानी) तक जाता था।

कन्नौज का एक मार्ग पानीपत, ऊटक और काबुल होते हुए गजनी तक जाता था। इस वर्णन से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भारत को एक-दूसरे से जोड़ने के लिए विभिन्न मार्ग बने हुए थे। इसी सन्दर्भ में तबकात-ए-नासिरी में उल्लेख है कि उनके व्यापारी इस मार्ग के द्वारा व्यापार करते थे।[३६]

उत्तर भारत का सम्पर्क दक्कन भारत के साथ दो गालियारों के माध्यम से कायम था। एक पूर्वी मध्यप्रदेश व उड़ीसा से होकर तथा दूसरा मालवा क्षेत्र से होकर जाते थे। स्थलमार्गों के अलावा जलमार्गों द्वारा भी व्यापार होता है। उत्तरी भारत में मैदानी क्षेत्र में स्थल मार्ग की अपेक्षा नदियों के माध्यम से व्यापार अधिक सुरक्षित था। राजतरंगिणी में नदियों द्वारा यात्रा करने का काफी उल्लेख मिलते हैं।

भारत के विदेशों से व्यापारिक संबंध : उत्तर पश्चिमी भारत में हिमालय पर्वत श्रेणियों में से ऐसे अनेक दर्रे थे जिनसे होते हुए न केवल बाहरी आक्रमणकारी आए बल्कि इन रास्तों का प्रयोग विदेशों अर्थात् मध्य एशिया व पश्चिमी देशों के साथ व्यापार के लिए किया जाता था। अनेक व्यापारी इन रास्तों से व्यापार करने के लिए आते जाते थे।[३७] कुषाणों के काल में यहाँ का व्यापार काफी समृद्ध था। परन्तु उत्तर गुप्तकाल में हुणों के आक्रमण ने भारत के स्थल मार्ग के व्यापार को प्रभावित किया और विदेशी व्यापार में गिरावट आने लगी। रोमन साम्राज्य के पतन के कारण पश्चिम देशों के साथ भारत का व्यापार बन्द हो गया था।[३८] परन्तु चीन के साथ व्यापार नए सिरे से शुरू होने के तथ्य मिलते हैं।[३९] शुंग वंश के राज्यकाल से १०वीं शताब्दी के अंत तक लगभग ४४ भारतीय प्रतिनिधियों के चीन यात्रा के उल्लेख हैं।[४४]

भारत का समुद्री व्यापार : पूर्वमध्यकालीन साहित्य में भारतीय व्यापारियों की यात्राओं के विषय में काफी जानकारी मिलती है। समुद्री मार्गों का वर्णन विदेशी यात्रियों में इब्नखुर्ददबा, अलमसूदी, अलइदरिसी आदि ने किया है। भारत के तत्कालीन बड़े बंदरगाहों तेज, देबल, खंभात और सोपारा आदि का वर्णन अरब यात्रियों ने किया है।[४१]

इब्न खुर्दाज्बा ने उन पदार्थों की सूची दी है जो भारत से अरब और इराक को भेजे जाते थे। ये पदार्थ इस प्रकार थे - सुगन्धी, चंदर, कपूर, लौंग, इमारती लकड़ी, नारियल, जायफल, सन के वस्त्र, रूई के मखमली वस्त्र और हाथी दाँत। भारत में अरब देशों को अनेक प्रकार के फल जैसे आम, नारियल, नींबू और जामुन आदि भेजे जाते थे।

अरब, ईराक, ईरान आदि देशों में भारत की बनी तलवारें बहुत प्रसिद्ध थीं और इनका निर्यात उन देशों के लिए बड़े रूप में होता था। उपर्युक्त निर्यात की वस्तुओं के बदले में पश्चिमी देशों से भारत में जो वस्तुएँ आती थीं, उनमें मिस्र की पन्ने की अंगुठियाँ, सोना और लोहा मुख्य पदार्थ थे। फ्रांस का प्रसिद्ध गुलाब जल भी भारत में बड़े परिमाण से आता था।[४२]

अरब से घोड़े बड़ी संख्या में भारत आते थे। चीन से रेशम का आयात भी किया जाता था। श्रीलंका से भी भारत मुख्यतः मोती, अदरक और टीन आयात करता था। महीन कपड़े, का भी आयात किया जाता था।

व्यापारिक बाधाएँ : पूर्वमध्यकाल में राजनैतिक अस्थिरता, अरब से मुस्लिम शासकों का उदय, व्यापारियों में सुरक्षा की कमी, राजनैतिक व्यवस्था का सामंतीकरण की प्रक्रिया आदि अनेक कारणों से पूर्वमध्यकाल में आंतरिक व्यापार में ह्रास दिखाई देता है। चोर और डाकुओं के भय से मार्ग असुरक्षित थे। इस काल में सामंतों की शक्ति बढ़ने से मार्ग असुरक्षित हो गये थे क्योंकि सामंत भी व्यापारियों को लूट लेते थे। ह्वेनसांग स्वयं दो बार लुटेरों का शिकार बने थे।[४३]

मेधातिथि ने लिखा है राजा को लुटेरों से व्यापारियों की रक्षा करनी चाहिए।[४४] व्यापारियों को एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने पर चुंगी देनी पड़ती थी। स्मृति तथा नीति ग्रंथों में कहा गया है कि व्यापारियों को राज्य द्वारा जान-माल की सुरक्षा मिलनी चाहिए जिससे व्यापार-वाणिज्य को उन्नतशील बनाया जा सके।

निष्कर्ष : पूर्वमध्यकाल में सामन्तवादी प्रथा के कारण केंद्रीय सत्ता का विघटन, सामन्तवादी व्यवस्था का उद्‍भव तथा राजनैतिक परिवर्तन के कारण तत्कालीन पारम्परिक व्यापारिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ तथा नई व्यापारिक व्यवस्था का उद्‍भव हुआ। प्राचीन बड़े व्यापारिक नगरों के पतन के कारण श्रेणी तथा व्यापारिक संघों का पलायन हुआ जिससे छोटे व्यापारिक संघों का उदय हुआ।

उत्तर भारत में कन्नौज, कपिषा, अंतरजीखेड़ा, थानेश्वर, मथुरा, सरहिन्द, जालंधर प्रमुख समृद्ध नगर थे। इस काल में विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों में आंतरिक व्यापार हो रहा था जिससे धीरे-धीरे व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला और १०वीं शताब्दी के बाद व्यापार में बढ़ोतरी हुई। स्थानीय व्यापारिक मण्डियों में दैनिक उपयोग की वस्तुओं का व्यापार किया जाता था। देश के सभी नगर और ग्राम विभिन्न स्थल मार्ग व जल मार्गों द्वारा जुड़े हुए थे। अरब लेखक अलबेरूनी ने भारत के विभिन्न प्रदेशों और नगरों को जोड़ने वाले मार्गों की विस्तार से चर्चा की है।

भाष्यकार मेधातिथि के विवरण से ज्ञात होता है यातायात के साधनों के लिए बैल, खच्चर - भैंसे और अन्य पशुओं का प्रयोग किया जाता था।[४५] इस काल में शुद्ध सोने के सिक्कों के अतिरिक्त मिश्रित सिक्कों का प्रचलन बढ़ा तथा अलग-अलग राज्यों ने अलग-अलग सिक्के जारी किए। विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए अनेक राज्यों ने विदेशों में अपने राजदूत भेजे जिससे विदेशी व्यापार में गतिशीलता बनी रही। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए जल व स्थल मार्गों का उपयोग होता था।

कुछ इतिहासकार जैसे डी०डी० कौशाम्बी, आर०एस० शर्मा, बी०एन०एस० यादव, एन० झा आदि पूर्व मध्यकाल को व्यापारिक पतन का काल मानते हैं जो कि पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। प्रस्तुत शोध-पत्र में यह बात उभरकर सामने आती है कि पूर्वमध्यकालीन उत्तर भारत में आंतरिक व्यापारिक केन्द्रों का पूर्णतः पतन नहीं हुआ था परंतु सत्ता के बिखराव के कारण और केंद्रीकृत राजव्यवस्था न होने के कारण इसके लिखित प्रमाण कम मिलते हैं। इसके प्रमाण छोटे प्राचीन नगरों व छोटी व बड़ी मण्डिपिकाओं के रूप में मिलते हैं जो इस काल में व्यापार के बदलते स्वरूप के द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त दास व्यापार में गतिशीलता, स्थानीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का स्वरूप, स्थानीय व्यापारिक केंद्रों (मण्डिपिकाओं) का महत्त्व, व्यापारिक मार्गों एवम् व्यापारिक गतिविधियों के रूप में सह-सम्बन्धात्मक अध्ययन से ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पूर्वमध्यकालीन उत्तर भारत में आंतरिक व्यापारिक केंद्र, व्यापारिक वस्तुएं एवम् मार्ग इस काल की वास्तविक स्थिति का महत्त्वपूर्ण केंद्र बिंदु हैं।

सन्दर्भ

१. गुप्ता, देवेन्द्र कुमार, 'प्राचीन भारत में व्यापार', कालेज बुक डिपो, जयपुर, २००४, पृ० १२३
२. चक्रवर्ती, रणबीर, 'ट्रेड एण्ड ट्रेडरस इन अर्ली सोसायटी', मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००७, पृ० ११६
३. हरिभद्रसूरीकृत, 'समराइच्चकहा', पं. भगवान दास कृत, सम्पादन एम. सी. मोदी, जैन सोसायटी अहमदाबाद, १६३८, पृ० २६०
४. दलाल सी०डी० और जी०के० श्रीगोण्डेकर (सम्पा.), 'लेखापद्धति', सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी, बड़ौदा, १६२५, पृ० १४
५. प्रकाश, ओम, 'प्राचीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास', विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, २००१, पृ० ११६
६. सिंह, संतोष कुमार, 'उत्तर भारत में नगरों का विकास', बुक इण्डिया पब्लिकेशन, दिल्ली, २००४, पृ० १३५
७. चक्रवर्ती, रणबीर, पूर्वोक्त, पृ० १८६
८. चट्टोपाध्याय, बी०डी०, 'द मेकिंग ऑफ अर्ली मेडिवल इण्डिया', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ० १३३

९. चट्टोपाध्याय, बी०डी०, 'मार्केट एण्ड मरचेंट इन अर्ली मेडिकल राजस्थान', आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ० २६३ -२६४
१०. कृष्ण ब्रजेश, 'फॉरेन ट्रेड इन अर्ली मेडिवल इण्डिया', हरमन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, २०००, पृ० १६
११. सेमुअल बी० (अनु०), सी०यू०की०, संपा. रीज डेविस, टी. डब्ल्यू. एण्ड बुशेल आई. डब्ल्यू. 'आनयुवान च्यांग ट्रेवेल इन इंडिया', आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस लंदन, १९०६, रिप्रिंट दिल्ली, १९६९, पृ० ५८-६२
१२. इण्डियन ऐन्टिक्वेयरी, ६, ३११
१३. प्रकाश, ओम, पूर्वोक्त, पृ० १३६
१४. शर्मा, दशरथ, 'राजस्थान थ्रू द एजिज', मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली १९५९, पृ० ३३३
१५. महाभारत, १, पृ० ६१-६३
१६. गोपाल, लल्लन जी, 'इकनॉमिक लाइफ इन नॉदर्न इण्डिया', मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९६५, पृ० ७१
१७. कोल्यमालाकथा, १, पृ० १८८-२३६
१८. लेखापद्धति, पूर्वोक्त, पृ० ४४-४८
१९. वही, पृ० ४०-४४
२०. यादव, बी०एन०एस०, 'कलियुग के वर्ण और समाज का प्राचीनकाल से मध्यकाल में संक्रमण', सैन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, १९७३, पृ० ४४
२१. स्मिथ, बी०ए०, 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', ऑक्सफोर्ड, १९०४, पृ० ४०३
२२. वही, पृ० ४०६
२३. इलियट एण्ड डाउसन, 'इण्डिया इज टोल्ड बाई इटस ऑन हिस्टोरियन', आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस लंदन, १८६६-१८६७, पृ० ६३
२४. विश्वरूप की टीका, याज्ञवल्क्य स्मृति, २, १९२, ए०एस०एस० भाग-२, पूना, १९०३, १९०४
२५. हेमचन्द्रकृत, 'त्रिशाटिश्लाकापुरुषचरित', १, अनुवादक जान्सन, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, पृ० ७
२६. गुप्ता, देवेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ० १५३-१५५
२७. गुप्ता, लल्लन जी, पूवोक्त, पृ० २०६
२८. जर्नल ऑफ द न्यूमेसमेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XIX, पृ० ११६
२९. लीट, कॉपर्स, 'इन्सिक्रपशन्स इण्डिकेरम', ४, अभिलेख संस्था, ४२, पृ० २४४-२४५
३०. मनुस्मृति पर मेधातिथि की टीका, ८, कलकत्ता, १९३२-१९३९, पृ० १५३
३१. उपमितिभव प्रपंचकथा, पृ० ८६७-८६८
३२. मनुस्मृति पर मेधातिथि की टीका, ८, पृ० २९०-२९२
३३. वही, पृ० १५३
३४. मोतीचन्द्र, 'सार्थवाह', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९५३, पृ० २१
३५. सचाऊ, ई०सी०, 'अलबेरुनीज इण्डिया', १, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस लन्दन, १९१४, पृ० १९६-१९८
३६. इलियट एण्ड डाउसन, पूर्वोक्त, पृ० १९८
३७. गोपाल, लल्लन जी, पूर्वोक्त, पृ० १४६
३८. शर्मा रामशरण, 'प्राचीन भारत में नगरों का पतन', मणिकसम मनोहरलाल प्रकाशन, पटना, १९८७, पृ. १४६
३९. कृष्ण, ब्रजेश, पूर्वोक्त, पृ० ७-१२
४०. वही, पृ० ६
४१. वाजपेयी, कृष्णदत्त, 'प्राचीन भारत का विदेशों से संबंध', मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, मथुरा, १९८०, पृ० १३५-१३७
४२. वाजपेयी, कृष्णदत्त, पूर्वोक्त, पृ० १५०
४३. सेमुअल, बील (अनु०), सी०यू०की०, पृ० १२२
४४. प्रकाश, ओम, पूर्वोक्त, पृ० १७४-१७५
४५. मनुस्मृति पर मेघातिथि की टीका, ८, पूर्वोक्त, पृ. २९०

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

मथुरा जनपद की मुद्राएँ एवं प्रतीक चिन्ह

❑ ज्योति मिंज

मौर्य साम्राज्य के विघटन के पश्चात् सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने भारतवर्ष के एक सीमित भूभाग पर शासन किया। परन्तु शुंग शासन भी अधिक समय तक स्थिर न रह सका। मौर्य-साम्राज्य के विश्रृंखलित होते ही प्रान्तीय शासकों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। ऐसे स्थानों में अयोध्या (कोसल की राजधानी साकेत), पंचाल, कौशाम्बी (वत्सराज), मथुरा, तक्षशिला, अवन्ति तथा एरण आदि क्षेत्र विशेष उल्लेखनीय है। इन स्थलों पर गुप्तकाल से पूर्व तक अपना स्वतन्त्र शासन चलता रहा। इन शासकों द्वारा प्रचलित मुद्राएँ लगभग २०० ई. पू. से प्रारम्भ होकर तीसरी सदी ईसवी तक प्रचलित रही जिनमें से अनेक स्थल नामों पर जारी हैं और अनेक पर प्रतीकों का अंकन है। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत मथुरा जनपद की मुद्राएं एवं प्रतीक चिन्हों को प्रस्तुत किया गया है।

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर तीसरी सदी ईसवी तक मथुरा जनपद के कई स्थानीय स्वतन्त्र शासकों की मुद्राएं मिली हैं।[१] इन मुद्राओं में ताम्र धातु की मुद्राओं का बाहुल्य है। प्रचलनकर्ताओं के सांस्कृतिक परिवेश के आधार पर इन मुद्राओं को दो भिन्न वर्गों में विभक्त किया गया है (१) स्थानीय हिन्दू-शासकों की मुद्राएं (दूसरी सदी ईसा पूर्व से लेकर प्रथम सदी ईसा पूर्व तक)। (२) विदेशी शक-क्षत्रप शासकों की मुद्राएं (प्रथम सदी ईसवी के मध्य तक)।

मथुरा जनपद के प्रारम्भिक स्थानीय हिन्दू शासकों में गोमितस (गोमित्र-प्रथम), गोमितस (गोमित्र द्वितीय), ब्रह्ममितस (ब्रह्ममित्र), द्रधिमितस (द्रधि मित्र), सूर्यमितस (सूर्य मित्र), विष्णुमितस (विष्णु मित्र) और सतमितस (शतमित्र अथवा सत्यमित्र) जैसे सात शासक मित्र नामान्त हैं।[२]

गोमित्र प्रथम के वर्गाकार तांबे के सिक्कों के पुरोभाग पर प्रमुखतः दो बार 'द' तथा मकार, श्रीवत्स और वेदिका वृक्ष का अंकन है। ब्राह्मी मुद्रा लेख (गो) मितस। पृष्ठ भाग वेदिका वृक्ष।

कतिपय मुद्राएं ऐसी हैं जिन पर ब्राह्मी में मुद्रा लेख तो गोमितस ही है किन्तु प्रतीक-चिन्हादि की दृष्टि से ये उपर्युक्त गोमित्र के सिक्कों के सर्वथा भिन्न दिखाई देती हैं जिसके आधार पर एलन महोदय ने इस गोमित्र को गोमित्र द्वितीय माना है। इस गोमित्र द्वितीय की प्रायः सभी मुद्राएं ताम्र धातु की वर्गाकार हैं। प्रतीकादि की दृष्टि से इन्हें तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

१. पुरोभाग : भुजाओं को ऊपर उठाये रूक्ष मानवाकृति, उसके दायें मकार चिन्ह। ब्राह्मी लेख 'गोमितस'।
पृष्ठ भाग : वेदिका वृक्ष।

२. पुरोभाग : दाहिने हाथ में कमल लिए खड़ी नारी आकृति। एलन महोदय ने इसे लक्ष्मी माना है। आकृति की बायीं ओर वृक्ष तथा उज्जयिनी चिन्ह दायें श्रीवत्स। नीचे की ओर नदी में तैरती हुई मछलियाँ। ब्राह्मी लेख गोमितस।
पृष्ठ भाग : अंकुश लिए हुए तीन हस्त्यारोही।

३. पुरोभाग : वेदिका वृक्ष के सम्मुख खड़ा वृषभ तथा उज्जयिनी चिन्ह। ब्राह्मी लेख 'गोमितस'।
पृष्ठ भाग : रिक्त।

ब्रह्ममित्र, द्रधिमित्र, सूर्यमित्र, विष्णुमित्र और शतमित्र या सत्यमित्र के तांबे के सिक्कों के पुरोभाग पर बायें हाथ में कमल लिए हुए खड़ी लक्ष्मी का अंकन है। लक्ष्मी के बायें वृक्ष, दायें उज्जयिनी चिन्ह और श्रीवत्स। ब्राह्मी में सम्बद्ध शासकों का नामोल्लेख। पृष्ठ भाग अंकुशधारी तीन हस्त्यारोही। इन सिक्कों के समयावधि की दृष्टि से अध्ययन कर इन स्थानीय मित्र शासकों को द्वितीय शताब्दी ई.पू. से लेकर प्रथम शताब्दी ई.पू. के मध्य तक रखा जा सकता है।

मित्र नामान्त शासकों के पश्चात् लगभग सात दत्त शासकों राज्ञों गोषदतस (राजा घोषदत्त), पुरूषदतस (पुरूषदत्त), राज्ञो उत्तमदतस (राजा उत्तमदत्त), रामदतस (रामदत्त), राज्ञो रामदतस (राजा रामदत्त), राज्ञो कामदतस (राजा कामदत्त), राज्ञो भवदतस (राजा भवदत्त) और राज्ञो शेषदतस (राजा शेषदत्त) के तांबे के सिक्के भी मथुरा जनपद से मिले हैं।[३] इन सात दत्त शासकों के अतिरिक्त एक अन्य शासक राज्ञो बलभूतिस (राजा बलभूति) के सिक्के भी मिले हैं।[४]

इन शासकों के सिक्कों के पुरोभाग पर सामान्यतया खड़ी हुई लक्ष्मी के बायें वृक्ष तथा दायें श्रीवत्स का अंकन है। नदी में तैरती हुई मछलियां भी दिखाई गई हैं। ब्राह्मी लिपि में सिक्कों पर मात्र सम्बद्ध शासकों का नाम तथा अन्य पर नाम के साथ

❑ शोध अध्येत्री इतिहास विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

राजा उपाधि भी संयुक्त है। पृष्ठ भाग पर तीन हस्त्यारोही व कहीं एक हाथी चित्रित है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी मुद्रायें भी उपलब्ध हुई हैं, जिन पर प्रतीकांकनादि तो इन नामान्त शासकों के ही समान है पर मुद्रा लेख है 'राज्ञो बलभूतिस'। **इन शासको** के शासन के लिए प्रथम सदी ईसा पूर्व का अन्तिम चरण निर्धारित किया जाता है।

मथुरा जनपद के स्थानीय हिन्दू शासकों के बाद दो ऐसे शासकों शिवघोष तथा शिवदत्त के सिक्के उपलब्ध होते हैं जिनका नाम तो भारतीय है परन्तु उनके लिए विदेशी शक शासकों के लिए प्रयुक्त क्षत्रप उपाधि का प्रयोग मिलता है। इन क्षत्रप शासकों के तांबे के गोलाकार सिक्कों के पुरोभाग पर पूर्वगामी परम्परा में खड़ी हुई लक्ष्मी तथा वृक्ष प्रतीक का अंकन है। पृष्ठ भाग अश्व का अंकन है। समय की दृष्टि से एलन ने इन सिक्कों को ईसा पूर्व ६०-७० निर्धारित किया है।[५]

सन्दर्भवश उल्लेखनीय है कि दो अन्य विदेशी शक-क्षत्रप शासकों के सिक्कों को भी उपर्युक्त श्रेणी में रखा जा सकता है।[६] वस्तुतः ये सिक्के शिघोष एवं शिवदत्त के सिक्कों की अनुकृति प्रतीत होते हैं। इनमें ब्राह्मी लिपि 'खतपस हगामशस (क्षत्रप हगामश) और दूसरे तीन पंक्तियों में 'खतपस हगानस हगामशस (क्षत्रप हगान-हगामश) का अंकन है। इन सिक्कों के पृष्ठ भाग पर अश्व दिखाया गया है। संभवतः ये मथुरा जनपद के सर्वप्रथम विदेशी शासक थे। सम्भव है, इन्होंने संयुक्त रूप से शासन किया हो। स्पष्ट ही मथुरा जनपद के स्थानीय हिन्दू शासकों के पश्चात् विदेशी शक-क्षत्रप शासकों ने मथुरा क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। उपलब्ध सिक्के तथा अभिलेखों को इसके ज्वलन्त प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है।

चार क्षत्रप शासकों के पश्चात् राजुवुल या राजुल नामक शासक के तीन प्रकार के सिक्के मिले हैं।[७] ये सिक्के चांदी की खोट वाले, तांबे और पोटीन के हैं।

प्रथम प्रकार

पुरोभाग : दाहिने हाथ में वज्र और बायें हाथ में राजदण्ड धारण किए यवन देवी पेलास। खरोष्ठी लेख 'अप्रतिहत चक्रस छतपस राजुवुलस'।

द्वितीय प्रकार

पुरोभाग : खड़ी हुई लक्ष्मी के बायें सर्प, दायें श्रीवत्स तथा स्वस्तिक का अंकन है। ब्राह्मी लेख 'महाखतपस राजुवुलस'।

पृष्ठ भाग : गजाभिषेक लक्ष्मी का अंकन। पूर्वगामी हिन्दू शासकों के सिक्कों के अनुकरण पर ये प्रतीक अंकित हैं।

तृतीय प्रकार

पुरोभागः दक्षिणाभिमुख सिंह तथा श्रीवत्स प्रतीक। भ्रष्ट लिपि में यवन लेख।

पृष्ठ भाग : बायें हाथ में गदा लिए तथा भुजा पर व्याघ्रचर्म धारण किये खड़ा हेराकिल। खरोष्ठी लेख 'महाखतपस अप्रतिचक्रस राजुलस'।

शक-क्षत्रप शासक राजुवुल की प्रथम प्रकार की मुद्राएं यवन शासक स्ट्रेटों प्रथम और स्ट्रेटो द्वितीय की मुद्राओं से मिलती जुलती हैं। अतः दिनेशचन्द्र सरकार आदि विद्वानों द्वारा प्रायः अनुमान किया जाता है कि राजुवुल ने सर्वप्रथम यवन शासकों के प्रदेश पूर्वी पंजाब पर तदनन्तर मथुरा पर अपना आधिपत्य स्थापित किया होगा। राजुवुल के दूसरे प्रकार की मुद्राओं पर मथुरा के पूर्वस्थानीय हिन्दू शासकों की मुद्राओं का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। मथुरा से प्राप्त सिंह-स्तम्भ अभिलेख में प्रथम बार राजुवुल के लिए महाक्षत्रप उपाधि का प्रयोग और सिक्कों पर उसके लिए चयन लिपि में बैसीलियस (महाराज), बैसीलियॅान (राजाधिराज) और सोटेरॅास (त्रातार अथवा संरक्षक) जैसी राजकीय उपाधियां अंकित हैं जो उसके स्वतंत्र शासन के स्पष्ट प्रमाण हैं। मुद्राओं के प्राप्ति-स्थलों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजुवुल का राज्य पूर्वी पंजाब से लेकर मथुरा तक विस्तृत था।[८]

राजुवुल के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी पुत्र या किसी अन्य शासक शोडास के तांबे तथा पोटीन के बने तीन प्रकार के सिक्के मिले हैं।[९] इन तीनों प्रकार के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर समान रूप से अभिषिक्त लक्ष्मी का अंकन है। पुरोभाग पर भी यदि अंकित मुद्रा लेख को छोड़ दिया जाय तो एक तरह की आकृति प्रतीकों का अंकन है। प्रथम प्रकार के सिक्कों पर 'ब्राह्मी लेख महाखतपस पुतस खतपस शोडाशस', द्वितीय प्रकार के सिक्कों पर ब्राह्मी लेख 'राजुवुल पुतस खतपस शोड़ाशस' और तृतीय प्रकार के सिक्कों के पुरोभाग पर ब्राह्मी लेख मात्र 'महाखतपस शोडाशस' है।

इन मुद्राओं के सामान्य अध्ययन से स्पष्ट है कि सर्वप्रथम शोडास राजुवुल के अन्तर्गत क्षत्रप रहा, तत्पश्चात् वह महाक्षत्रप बनकर स्वतन्त्र रूपसे मथुरा पर शासन करने लगा। इसकी पुष्टि उसके मथुरा सिंह स्तम्भ लेख[१०] में अंकित मात्र क्षत्रप तथा आमोहिनी प्रतीक वाटिका से भी होती है। प्रथम में जहां उसे मात्र क्षत्रप कहा गया है दूसरे में महाक्षत्रप उपाधि प्राप्त होती है। शोडास की मुद्रायें पूर्वी पंजाब से नहीं उपलब्ध होती हैं जिससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि उसके समय तक पूर्वी पंजाब शासन में नहीं रह गया था।

शोडास के पश्चात् एक और क्षत्रप शासक तोरणदास का मात्र

एक ताम्र-मुद्रा प्रकार[11] मिला है जिसके पुरोभाग में दायें हाथ में कमल लिए खड़ी लक्ष्मी, उसके बायें वृक्ष। ब्राह्मी लेख 'महाखतपस पुतस खतपस तोरण दासस' (महाक्षत्रप पुत्र क्षत्रप तोरणदास) पृष्ठभाग : अभिषिक्त लक्ष्मी।

इन सिक्कों के महाक्षत्रप राजुवुल के सिक्कों की समानता के आधार पर एलन महोदय ने तोरणदास के महाक्षत्रप राजुवुल के कनिष्ठ पुत्र होने की सम्भावना व्यक्त की है।

समय की दृष्टि से एलन महोदय ने इन सभी शक- क्षत्रप शासकों को लगभग ६०-५० ईसा पूर्व से १० ईसा पूर्व के मध्य रखने का प्रयत्न किया है, जबकि कृष्णदत्त बाजपेयी ने इन शासकों के प्रथम सदी ईसवी के मध्य तक शासन करने का दावा किया है।

सन्दर्भ

१. ब्रि.म्यू.क्वा.एं.इं. एलन पृ. CVIII-CXVI, पृ. १६६-१६१।

२. वही, पृ. १६६-१७६, जॅ न्यू.सो.इं. भाग XXVIII पृ. ४२, प्लेट ii ७, ब्रह्ममित्र तथा सूर्य मित्र की मुद्राएँ रेड (जयपुर, राजस्थान) से मिली है, पुरी : के.एन. एक्स्केवेशन एट रेड पृ. ६६-६८ ब्रह्ममित्र की एक अन्य मुद्रा इं.म्यू.क्वा : स्मिथ, भाग १, पृष्ठ २०५ प्लेट XXIII , ५ पर प्रकाशित है।

३. ब्रि.म्यू.क्वा.एं.इं. एलन पृ. १७४, १७६, १७७, १७६-१८३, इं.म्यू. क्वा. स्मिथ, पृ. १८३; राजा शेषदत्त जॅ.रा.ए.सो. (१६००) पृ. ११० क्रमांक ६-११।

४. ब्रि.म्यू.क्वा.एं.इं. एलन पृ. १७८ वर्ग 'अ'।

५. वही, पृ. CXII १८३।

६. वही, पृ. १८३-१८४, इं.न्यू.स्ट. बाजपेयी पृ. १०३-१०४

७. वही, पृ. १८५-'१८६।

८. क्वायन्स ऑफ द शकाज : कनिंघम, पृ. २६।

६. ब्रि.म्यू.क्वा.एं.इं. एलन पृ. १६०-१६१।

१०. इपि. इंडिका, जिल्द २ पृ. १६६, आ.स.रि. जिल्द III पृ. ३० प्लेट XIII.1 ।

११. ब्रि.म्यू.क्वा.एं.इं. एलन पृ CXII पैरा १२६, जॅ न्यू.सो.इं. जिल्द XXXVII (१६७५) खण्ड १ व २ पृ. १४७-१४६।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

भारत में भाषाई संरचना : एक अध्ययन

❑ राकेश चन्द्र शाह

> भारत सर्व धर्म समभाव एवं वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव रखने वाला विश्व का एक मात्र देश है। यहाँ अनेक धर्म एवं जातियों के लोग रहते हैं तो स्वाभाविक है कि इसकी भाषाई संरचना भी अपने आप में बहुत बड़ी है। भारत में अनेक भाषाएँ एवं बोलियाँ बोली जाती हैं। इन्हीं भाषाओं एवं बोलियों के स्वरूप में देश की विविधता को देखा जा सकता है। देश का सांस्कृतिक एवं सामाजिक ढांचा इसलिए भी अभेद है कि यहां पर भाषा, समाजीकरण एवं सांस्कृतिक प्रसार का सशक्त माध्यम है। प्रस्तुत लेख भारत की भाषाई संरचना का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भाषा अभिव्यक्ति का साधन मात्र ही नहीं बल्कि व्यक्तियों के मध्य विचार सम्प्रेषण एवं आपसी जुड़ाव का महत्वपूर्ण आधार है और इसका प्रयोग वैचारिक अभिव्यक्ति के लिए लिखित एवं मौखिक दोनों रूपों में होता है। भारत सर्व धर्म समभाव एवं वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव रखने वाला विश्व का एक मात्र देश है। यहाँ अनेक धर्म एवं जातियों के लोग रहते हैं तो स्वाभाविक है कि इसकी भाषाई संरचना भी अपने आप में बहुत बड़ी है। भारत में अनेक भाषाएँ एवं बोलियाँ बोली जाती हैं। इन्हीं भाषाओं एवं बोलियों के स्वरूप में देश की विविधता को देखा जा सकता है। देश का सांस्कृतिक एवं सामाजिक ढांचा इसलिए भी अभेद है कि यहां पर भाषा, समाजीकरण एवं सांस्कृतिक प्रसार का सशक्त माध्यम है।

भारतवर्ष में संस्कृति, विचार एवं मानवीय प्रतिमान, पीढ़ी-दर-पीढ़ी भाषा के माध्यम से ही संज्ञानित होते हैं। यह मानव समूह के मध्य विचारों के आदान-प्रदान का साधन है तथा यह इनके मध्य अन्तःक्रिया को सुगम व प्रभावी बनाती है और मानव जगत में मानव जाति की अति महत्वपूर्ण तथा विशिष्ट सम्पत्ति है। सिंह के अनुसार, पीढ़ी-दर-पीढ़ी संस्कृति के हस्तान्तरण में भाषा सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है, जो कथाओं, प्रमाणिक विचारों, गीतों, उपदेशों, वंशावलियों आदि के रूप में सांस्कृतिक तत्वों को संरक्षित रखती है।[1] भाषा के माध्यम से विचारों के आदान-प्रदान तथा सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं के संचालन में सरलता होती है, किन्तु भाषा के अभाव में ये कार्य लगभग असंभव हो जाते हैं।

भाषा बातचीत की संगठित पद्धति है, जिसके द्वारा मनुष्य एक दूसरे से संचार करता है। भारत में प्राकृतिक अलगाव के कारण प्रायः दस मील पर भाषा में अन्तर पाया जाता है। ''कोस-कोस पर बदले पानी, कोस-कोस पर बानी'', का यह कथन भारत के सन्दर्भ में ही कहा गया है। भारतीय संविधान के आठवें अनुच्छेद में अंग्रेजी के अतिरिक्त २२ भाषाएं सम्मिलित हैं। वर्ष १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत में १६५२ भाषाएँ बोली जाती हैं। इतनी भाषाएँ भारत के अतिरिक्त किसी दूसरे देश में सम्मिलित नहीं हैं। भारत में विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों का अपना साहित्य है जो काफी समृद्ध भी है किन्तु भाषाई वैमनस्यता यहाँ की समस्या भी है। भूमण्डलीकरण और भाषा के रिश्तों का अध्ययन करने वालों ने मान लिया है कि यदि दुनियां में भाषाओं की इमारत खड़ी कर दी जाय तो अंग्रेजी, स्पेनी, रूसी, अरबी, बांग्ला, पुर्तगाली, मलय, जापानी, जर्मन के साथ हिन्दी भाषा को भी ऊपरी तले में रखना होगा। चूंकि हिन्दी भाषा भारत, नेपाल, पाकिस्तान, फिजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका और कई पश्चिमी देशों में फैले कई लोगों की लोकप्रिय भाषा है इसलिए इसकी विधिवत गणना नहीं का जा सकती है।

इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, जापान, कोरिया आदि देशों में किसी एक भाषा का वर्चस्व स्पष्ट दिखाई देता है परन्तु भारत में स्थिति इनसे भिन्न है, क्योंकि यहां भिन्न-भिन्न प्रदेशों में ही नहीं बल्कि प्रदेशों के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग भाषाओं का वर्चस्व मिलता है। भाषा के सन्दर्भ में नागर का विश्लेषण कहता है कि विश्व की अनेक सभ्यतायें समाप्त हो गई हैं लेकिन भारतीय संस्कृति आज भी विश्व स्तर पर अपनी उपस्थिति बनाये हुऐ है। भारतीय संस्कृति के उद्भव व विकास को संस्कृत भाषा का स्वर प्राप्त हुआ है। अतः भारत वर्ष में शिक्षा ही नहीं अपितु संस्कृति व सभ्यताओं के संरक्षण एवं विकास में संस्कृत भाषा की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है।[2]

भाषाई संरचना : भारत में बहुजातीय एवं बहुक्षेत्रीय समाज होने के कारण भाषा परिदृश्य बहुभाषिक है और यह स्वाभाविक भी है। भारत में हिन्दी के साथ-साथ अनेक भाषाएँ, यहां के निवासियों के विचार विनिमय का साधन हैं। जन-व्यवहार में आने वाली इन भाषाओं की विभिन्न राज्यों में संख्यात्मक

❑ अतिथि व्याख्याता, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय पोखरी (उत्तराखण्ड)

स्थिति का विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

भारत की भाषायी संरचना, २०११[३]

भाषा	कुल जनसंख्या (प्रतिशत में)
हिन्दी	४०.००
बांग्ला	८.२
तेलुगू	७.८
मराठी	७.३
तमिल	६.३
उर्दू	५.१
गुजराती	४.८
कन्नड़	३.६
मलयालम	३.६
उड़िया	३.३
पंजाबी	२.८
असमिया	१.६
कश्मीरी	०.५
सिन्धी	०.३
नेपाली	०.३
कोंकण	०.२
मणिपुरी	०.२
अन्य	३.८

स्वतंत्रता के उपरान्त संविधान के अनुच्छेद-३५१ में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार तो किया गया परन्तु व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण हिन्दी, राष्ट्र व राजभाषा का व्यावहारिक रूप प्राप्त नहीं कर सकी। विभिन्न राज्यों की भाषायें अलग-अलग हैं जिसके कारण तर्क दिया जाता है कि किसी भी भाषा को सभी राज्यों में शिक्षा और सरकारी कामकाज की भाषा नहीं बनाया जा सकता है। इस विचारधारा के लोगों का कहना है कि यदि किसी एक भाषा को राजकीय महत्व दिया गया तो इस भाषा को जानने वाले व्यक्ति राष्ट्रीय स्तर पर आगे बढ़ जायेंगे तथा उस भाषा को न जानने वाले तमाम व्यक्ति पिछड़ जायेंगे। कुमार ने स्पष्ट किया कि भारत की भाषाओं में हिन्दी सबसे अधिक जन-व्यवहार में आने वाली भाषा है। वस्तुतः भारत की जनसंख्या का ४० प्रतिशत भाग हिन्दी में व्यवहार करता है। विशाल हिन्दी क्षेत्र में सैकड़ों भाषाएं और बोलियां आती हैं जिनसे हिन्दी का बड़ा ही आत्मीय तथा घरेलू रिश्ता है और इस बड़े भू-भाग के लोगों के लिए कभी भी हिन्दी विजातीय नहीं हो सकती। इस प्रकार सम्पूर्ण भारत के लोग द्विभाषिक तो होते ही हैं। अतः अन्य भाषियों के लिए अगर कोई दूसरी सम्पर्क भाषा हो सकती है तो वह भी हिन्दी ही होनी चाहिए।[४] लोहिया के अनुसार, जो लोग कहते हैं कि तेलगू, हिन्दी, उर्दू, मराठी गरीब भाषाएं हैं और आधुनिक दुनियां के लायक नहीं हैं तो उनको इन भाषाओं के और अधिक इस्तेमाल की बात सोचनी चाहिए क्योंकि इस्तेमाल करते-करते ये भाषाएं धनी हो जायेंगी।[५]

निष्कर्ष : भाषा हमारी अभिव्यक्ति का माध्यम है इसके द्वारा हम विचारों एवं भावनाओं से तथ्यों और सूचनाओं का आदान प्रदान करते हैं। भाषा पर अधिकार रखने वाला व्यक्ति सृजनशील होता है। सृजनात्मकता अर्थात निर्माण करने की योग्यता ही ज्ञान के सृजन का पहला पायदान है। हाँ, यदि भाषाई प्रभाव अच्छा रहा तो सृजनात्मकता के साथ-साथ ज्ञान प्रभावपूर्ण होता है और विचारों एवं भावनाओं से तथ्यों और सूचनाओं के आदान प्रदान करने का कार्य आसान हो जाता है। यद्यपि भारत की जनसंख्या का ४० प्रतिशत भाग हिन्दी भाषी है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारी उपलब्धियाँ कम न हों तथा प्रतिस्पर्धा के इस दौर में हमारे राष्ट्र का परचम लहरायें इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के महत्व को भी समझना होगा। हिन्दी जैसी सशक्त एवं राष्ट्र भाषा के रूप में इसके अस्तित्व को और मजबूत करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय भाषा को भी साथ लेकर राष्ट्र के नौनिहालों को भाषाई सम्पूर्णता एवं मानवीय ज्ञान से परिपूर्ण करना होगा। इस कार्य हेतु बालक-बालिकाओं के कोमल मानष पटल को संवादहीन नहीं बल्कि इच्छायुक्त भाषा का चयन करने की स्वतंत्रता होगी, जिससे स्वभाषा अथवा राष्ट्रभाषा को मजबूती मिलेगी।

सन्दर्भ :

१. सिंह, जे०पी०, 'समाजशास्त्र, अवधारणा एवं सिधान्त', पी०एच०आई० लर्निंग प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, २०१३, पृ० ५६५

२. नागर, सुनीता के०, 'वर्तमान सन्दर्भ में संस्कृत भाषा की उपादेयता', भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष ३२, अंक-१, जुलाई, २०११ पृ०१६

३. सेन्सस ऑफ इण्डिया, 'प्रोविजनल पॉप्यूलेशन टोटल्स, सीरिज-१', रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, २०११

४. कुमार, सुवास, 'हिन्दी-विविध व्यवहारों की भाषा', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९९४ पृ० ४७

५. लोहिया, राम मनोहर, 'भारत में भाषा का प्रश्न और अंग्रेजी', भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष ३३, अंक-२, अक्टूबर, २०१२, पृ० ७३

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

महिला स्वास्थ्य में आशा कार्यकत्रियों की भूमिका

❑ प्रितिमा गुप्ता

स्वतंत्रता के समय देश की महिलाओं का स्वास्थ्य चिन्ताजनक व निराशाप्रद स्थिति में था। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या, निरक्षरता, निर्धनता, कुपोषण व अल्पपोषण, महिला वर्ग की निम्न सामाजिक स्थिति एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की अपर्याप्तता के कारण महिलाएं स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक जटिलताओं से जूझ रही थीं। भारत में महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति में भारी प्रयासों द्वारा पिछले कुछ वर्षों में सुधार आया है फिर भी आज भी यह दुनिया के कई देशों के मुकाबले कहीं पीछे है। महिला स्वास्थ्य की दिशा में भारत सरकार ने २००५ में एक महत्वपूर्ण प्रयास राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का प्रारंभ करके किया है। यह मिशन स्वास्थ्य के क्षेत्र में अब तक की सबसे बड़ी एकीकृत पहल है यहीं नहीं इस मिशन के तहत जल, शिक्षा, पोषण व लैंगिक समानता जैसे महत्वपूर्ण तत्वों पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस मिशन का मुख्य आधार स्तम्भ मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा) हैं। प्रस्तुत अध्ययन महिला स्वास्थ्य में आशा कार्यकत्रियों की भूमिका को उजागर करने का एक प्रयास है।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने उचित ही कहा था कि किसी राष्ट्र की महिलाओं की हालत देखकर उस राष्ट्र की स्थिति बतायी जा सकती है एक स्वस्थ्य महिला ही अपने परिवार की देखभाल व पोषण सम्बन्धी विविध आवश्यकताओं को सुचारू रूप से परिपूर्ण करती हुई परिवार के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। स्वस्थ्य महिला ही स्वस्थ्य व हस्ट-पुष्ट संतान को जन्म देकर उसके भरण-पोषण की समुचित व्यवस्था करते हुए स्वस्थ्य भावी युवा पीढ़ी का निर्माण करती है, जो समाज व देश के भावी 'कर्णधार' होते हैं। एक स्वस्थ्य महिला ही इन सब दायित्वों का निर्वहन सफलतापूर्वक करते हुए परिवार, समाज व देश के विकास की राह को सरल व सुगम बनाती है। अतः अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि एक स्वस्थ्य, सभ्य व सुसंस्कृत राष्ट्र के निर्माण में महिलाओं के स्वास्थ्य की अहम् भूमिका होती है।

किसी भी परिवार की धुरी 'महिला' होती है महिलाओं के कंधो पर मां, बेटी, बहन व पत्नी आदि के रूप में अनेक दायित्वों का भार होता है। अतः महिला के स्वास्थ्य का प्रभाव, विकास व खुशहाली पर पड़ता है। अतः परिवार, समाज व देश के समग्र व संतुलित विकास में महिलाओं के स्वास्थ्य की अहम् भूमिका है।[1]

स्वतंत्रता के समय देश की महिलाओं का स्वास्थ्य चिन्ताजनक व निराशाप्रद स्थिति में था। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या, निरक्षरता, निर्धनता, कुपोषण व अल्पपोषण, महिला वर्ग की निम्न सामाजिक स्थिति एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की अपर्याप्तता के कारण महिलाएं स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक जटिलताओं से जूझ रही थीं भारत में महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति में भारी प्रयासों द्वारा पिछले कुछ वर्षों में सुधार आया है फिर भी आज भी यह दुनिया के कई देशों के मुकाबले कहीं पीछे है। वर्ल्ड बैंक के एक्सपर्ट मीरा चटर्जी की रिपोर्ट 'स्पायरिंग लाइव्स'' में भारत समेत बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान तथा श्रीलंका में महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति का लेखा-जोखा पेश किया गया है, और इसके अनुसार भारत में आज भी प्रति एक लाख प्रसवों के दौरान ३०१ महिलाओं की मृत्यु हो जाती है। जबकि नेपाल में यह दर २८१, पाकिस्तान में २७६ तथा श्रीलंका में सिर्फ ५८ है। रिपोर्ट के अनुसार भारत में १५-१८ साल की उम्र की ५१.४ फीसदी महिलाएं खून की कमी से ग्रस्त हैं तथा इसी आयु वर्ग में ४१ फीसदी पोषण के अभाव में कम वजन की समस्या से जूझ रही हैं। २०-२२ आयु वर्ग में करीब ४५.६ फीसदी महिलाएं रक्त अल्पता से ग्रस्त हैं तथा ८०.६ फीसदी अंडरवेट हैं।[2] इतना ही नहीं प्रजनन स्वास्थ्य में कमजोर होने की एक मुख्य वजह ५० फीसदी महिलाओं का विवाह २० साल से कम उम्र में होना है। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत को महिलाओं के स्वास्थ्य पर फोकस करने के लिए अपने स्वास्थ्य सुरक्षा तंत्र को मजबूत बनाया जाए।[3] ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मिकी की तैनाती कर सभी प्रजजन सेवाएं एक स्थान पर दी जानी चाहिए। इसकी व्यवस्था भारत सरकार द्वारा १२ अप्रैल २००५ में ''राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन योजना की शुरूआत कर के की गयी जिसका मुख्य उद्देश्य दूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को सस्ती सुगम और गुणवत्तायुक्त चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से किया गया। यह मिशन

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र विभाग, डी.डी.यू. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)

स्वास्थ्य के क्षेत्र में अब तक की सबसे बड़ी एकीकृत पहल है यहीं नहीं इस मिशन के तहत जल, शिक्षा, पोषण व लैंगिक समानता जैसे महत्वपूर्ण तत्वों पर की विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस मिशन के अन्तर्गत उन राज्यों पर, जहाँ स्वास्थ्य सुविधाएं संतोषजनक नहीं है, विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस मिशन के अन्तर्गत करीब एक लाख ४६ हजार उप-स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित किए गए हैं, तेरह हजार से अधिक ''रोगी कल्याण समितियां'' बनाई गई हैं और ४ लाख से अधिक 'आशा' और सामुदायिक कार्यकर्ता नियुक्त की गई हैं। इस मिशन का मुख्य आधार स्तम्भ मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा) हैं।[४]

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत मातृत्व स्वास्थ्य लाभ हेतु चलायी गयी कुछ योजनायें निम्न प्रकार है :- जननी सुरक्षा योजना, जननी-शिशु सुरक्षा कार्यक्रम, राष्ट्रीय प्रसव लाभ योजना, सबल योजना, इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना नियमित टीकाकरण आदि। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ने निर्धारित लक्ष्य को पाने के लिए अन्य कई कदम उठाये हैं, जैसे - आशाओं का चयन, नवजात शिशु परिचर्या का प्रारम्भ, ग्राम स्वास्थ्य एवं स्वच्छता समितियों का गठन, स्वास्थ्य संसाधन केन्द्रों की स्थापना, प्रशिक्षण कार्यक्रम, सचल चिकित्सा इकाइयों का प्रबन्ध किया गया है इसके अतिरिक्त कई गैर सरकारी संगठन भी निःशुल्क स्वास्थ्य सेवायें प्रदान करने में भारत सरकार की सहायता कर रहे हैं।

कुछ महत्वपूर्ण आकड़े :-

१. जनवरी २०१३ के आँकड़ों के अनुसार भारत में आशा कर्मियों की कुल संख्या ८६३५०६ है।[५]
२. शिशु मृत्यु दर साल २००५ में जन्में १ हजार शिशुओं में ५८ थी जो २०१२ में ४२ दर्ज की गई है।[५]
३. मातृ-मृत्यु दर में भी कमी आयी है यह २००१-०३ में १ लाख में ३०१ थी जो २००७-०९ में २१२ तक आ गई।[५]
४. बच्चा जन्म देने के ४२ दिन के भीतर होती हैं ७८ हजार महिलाओं की मौत। ऐसी मौतों में से ७५ फीसदी को बचाया जा सकता है।[६]
५. राज्यों में डाक्टरों की संख्या ८,५१३, नर्सो की संख्या ३५,१७२, १४,४६५ पैरामेडिक्स की नियुक्ति एन० आर० एच० एम० २००५ में की गयी।[६]
६. कुछ दशक पहले तक जहाँ बच्चे का जन्म देते हुए मौतें की शिकार हुई महिलाओं की संख्या ७५००० थी वहीं २०१० में यह संख्या ५००० दर्ज की गई है।[६]
७. शिक्षा के क्षेत्र में भारत का स्थान १२१ वाँ और स्वास्थ्य के मामले में १३४ वाँ है।[७]
८. कुछ प्रजजन दर भी घटकर २०११ में २.४ प्रतिशत पर आ गई जो २००५ में २.९ प्रतिशत थी।[७]
९. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के उपमिशन के रूप में सरकार द्वारा शहरी स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत १२वीं पचंवर्षीय योजना में इसके लिए १५१४३ करोड़ रूपये आवंटित किए गए हैं।[८]
१०. ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन में मान्यता प्राप्त ८.९० लाख सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का चयन किया गया।[८]

अध्ययन का उद्देश्य

१. ग्रामीण महिलाओं में मातृत्व स्वास्थ्य लाभ योजनाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
२. ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य समस्याओं का अध्ययन करना।
३. महिलाओं के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने हेतु सरकारी प्रयासों का मूल्यांकन करना।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग करते हुए ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं का जानने का प्रयास किया गया है। अध्ययन के लिए गोरखपुर जनपद से पांच किलोमीटर दूर खोराबार के प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के ७ आशाओं को चुना गया तथा उनसे लाभान्वित ५० महिलाओं से साक्षात्कार द्वारा जानकारी प्राप्त की गई। उनसे यह जानने का प्रयास किया गया कि आशा कार्यकत्रियों की स्वास्थ्य सुधार में क्या भूमिका है तथा उन्हें वह स्वास्थ्य सुविधायें की जानकारी किस प्रकार सुनिश्चित करा रही हैं ग्रामीण लाभान्वित महिलाये उनके कार्यो से सन्तुष्ट हैं या नहीं।

लाभान्वित महिलाओं की आर्थिक एवं शैक्षिक पृष्ठभूमिः महिला स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध परिवार की आर्थिक स्थिति से है। प्रायः देखा जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आय का स्त्रोत सीमित होता है तथा परिवार का आकार बड़ा जिसके कारण उत्तम स्वास्थ्य सम्बन्धी मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाती है। पोषण युक्त भोजन, उचित प्रोटीन मात्रा, हरी सब्जी, फल, दूध आदि उपलब्ध नहीं हो पाता। जिसके कारण महिला स्वास्थ्य प्रभावित होता है, अतः लाभान्वित महिलाओं से पूछा गया कि उनकी परिवार की मासिक आय कितनी है।

तालिका सं० १

परिवार की मासिक आय

आय (रूपये में)	संख्या	प्रतिशत
१०००-५०००	३५	७०
५००१-१००००	११	२२
१०००१-१५०००	४	८
योग	५०	१००

तालिका सं० १ को देखने से स्पष्ट होता है कि ७० प्रतिशत सूचनादात्रियों के परिवार की मासिक आय रू० १०००-५००० के मध्य, २२ प्रतिशत सूचनादात्रियों के परिवार की मासिक आय रू० ५००१-१०००० के मध्य तथा ८ प्रतिशत सूचनादात्रियों के परिवार की मासिक आय १०००१-१५००० के मध्य है। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश सूचनादात्रियों के परिवार की मासिक आय बहुत कम है।

शैक्षिक स्तर – नारी की पूर्णता स्त्रीत्व में है, स्त्रीत्व की पूर्णता मातृत्व में है और मातृत्व की पूर्णता मातृत्व स्वास्थ्य से होती है। प्रायः देखा गया है कि महिलायें अपने स्वास्थ्य के लिए नकारात्मक रवैया अपनाती हैं। ग्रामीण महिलायें पूर्वाग्रह और अंधविश्वास से अभी मुक्त नहीं हो पायी हैं। इसका कारण है अशिक्षा, अज्ञानता एवं जानकारी का अभाव। महिलाओं की शैक्षिक स्थिति जानने पर प्राप्त सूचनायें तालिका सं० २ में प्रदर्शित है।

तालिका सं० २

सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर

शिक्षा का स्तर	संख्या	प्रतिशत
प्राइमरी	१७	३४
जूनियर	७	१४
हाईस्कूल	८	१६
इण्टरमीडिएट	३	६
स्नातक	४	८
अशिक्षित	११	२२
योग	५०	१००

तालिका सं० २ को देखने से स्पष्ट होता है कि ३४ प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर प्राइमरी है, १४ प्रतिशत सूचनादात्रियों का स्तर जूनियर है, १६ प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर हाईस्कूल है, ६ प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर इण्टरमीडिएट है, ८ प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर स्नातक है तथा २२ प्रतिशत सूचनादात्रियों अशिक्षित है। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर प्राइमरी है तथा अधिक संख्या में सूचनादात्रियों अशिक्षित भी है।

तालिका नं० ३

सूचनादात्रियों की विवाह के समय आयु

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिशत
१५ वर्ष से कम	२१	४२
१६ से २० वर्ष	१०	२०
२१ से २५ वर्ष	१६	३८
योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ४२ प्रतिशत महिलाओं का विवाह कम आयु (१५ वर्ष से कम) में हो गया था जिसका उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा जो स्वयं में चिंता का विषय है। कम उम्र की लड़कियॉं जिनका अपना शरीर ही विकासशील अवस्था में होता है मॉं बन जाती हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

तालिका सं० ४

किस तरह के प्रसव उचित

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिशत
घर में प्रसव	४	८
अस्पताल में प्रसव	४६	९२
दाई के द्वारा	००	०
योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ९२ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे अस्पताल में प्रसव उचित मानती हैं तथा ८ प्रतिशत महिलायें घर पर ही प्रसव को वरीयता देती हैं

तालिका सं० ५

स्वास्थ्य परीक्षण न कराने का कारण

कारण	संख्या	प्रतिशत
स्वास्थ्य केन्द्र दूर होना	९	१८
जानकारी न होना	१५	३०
घरेलू पाबन्दी	८	१६
पति का दूर कार्यरत होना	१८	३६
योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण लाभान्वित महिलाओं में १८ प्रतिशत महिलाएं स्वास्थ्य केन्द्र से दूर होने के कारण, ३० प्रतिशत महिलाओं को जानकारी का अभाव होने के कारण, १६ प्रतिशत महिलायें घरेलू पाबन्दी के कारण तथा ३६ प्रतिशत पति के दूर कार्यरत होने के कारण सरकार द्वारा चलाये गये कार्यक्रम का लाभ नही उठा पा रही हैं।

निष्कर्ष : स्वास्थ्य से सम्बन्धित अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्वास्थ्य सम्बन्धी

अत्यधिक समस्याएं हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी देख-रेख में भी महिलाओं के प्रति भेदभाव किया जाता है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का शैक्षिक स्तर अत्यन्त निम्न है जिसके कारण सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाली सुविधाओं के बारे में उन्हें बहुत कम जानकारी है। अतः महिलाये अपने अधिकारों से वंचित हैं। मातृत्व स्वास्थ्य को उन्नत बनाने हेतु बुनियादी स्तर से सुधार की आवश्यकता है। जिस एक नवीन पहल ASHA (आशा) कार्यकत्रियों द्वारा एक अच्छी पहल २००५ में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ मिशन के रूप में शुरू किया गया है जो ग्रामीण महिलाओं को जो अशिक्षा, अंधविश्वास, संकोच, भय, लज्जा से अस्पताल तक आने में सक्षम नही थी, उन्हें आशा कार्यकत्री स्वयं अस्पताल तक लाकर इलाज कराती हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी देकर इनकी आशंकाओं तथा भ्रान्तियों का निराकरण कर के महिलाओं और बच्चों के लिए बेहतर स्वास्थ हेतु जागृत सुविधाएं सुनिश्चित कर रही हैं। आशा कार्यकत्री 'Community helpers' के रूप में सरकारी सेवायें उपलब्ध करा रही हैं तथा स्वास्थ्य सेवाओं के मध्य सेतु का कार्य कर रही है।

सन्दर्भ

१. सारस्वत ऋतु, 'ग्रामीण स्वास्थ्य और नई स्वास्थ्य नीति', कुरूक्षेत्र, अंक ०६ जुलाई २०१५, पृ. ३०

२. शुक्ला पश्यंती, कुरूक्षेत्र अंक ०३ जनवरी २०१६, पृ. ४१

३. विश्व स्वास्थ्य संगठन 'द वर्ड हेल्थ रिर्पोट १९९७', कोकरिंगे सफरिंग, एनरीयिंग ल्यूमेनिरी, जिनेवा, WHO 1997.

४. परिवार कल्याण, महानिदेशालय (स्वास्थ्य भवन) उत्तर प्रदेश लखनऊ पत्रांक संख्या - १७२२/५-९-२००५ - ९ (२७७/८४) दिनांक २३ अगस्त २००५.

५. Ras Meera Mohan, 'Health Care Become Prohibitively Become Expensive Health Action', June. 2016

६. सफरिंग, एनरीयिगं ल्यूमेनिरी जिनेवाः, WHO 1997.

७. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन पत्रिका, स्वास्थ्य एवं परिवार, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार अक्टूबर - जनवरी २०१३ पृ० ३.

८. सारस्वत ऋतु, ग्रामीण स्वास्थ्य और नई स्वास्थ्य नीति', कुरूक्षेत्र अंक ६ जुलाई, २०१५, पृ. ३०

९. शुक्ला पश्यंती, पूर्वोक्त, पृ. ४१

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

आधुनिक परिवेश में हिन्दू महिलाओं के बदलते दृष्टिकोण

❑ मोनिका

स्वतंत्रोपरांत भारत में महिला सशक्तीकरण हेतु किए गए संवैधानिक प्रावधानों, वैधानिक व्यवस्थाओं तथा महिला कल्याण की अनेकानेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति, उनके विचारों तथा दृष्टिकोणों में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं। वे आज के जीवन के समस्त क्षेत्रों में पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है। अतः वर्तमान परिवेश में उनके बदलते हुए विचारों एवं दृष्टिकोणों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास है।

भारतीय समाज परिवर्तन की तेज गति से होकर गुजर रहा है, जिससे समाज के परम्परागत ढ़ाँचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। यद्यपि भारतीय समाज जहाँ एक ओर पुरूष प्रधान समाज रहा है, वहीं दूसरी ओर परम्परावादी समाज भी रहा है। इन दोनों व्यवस्थाओं ने महिलाओं के जीवन में अनेक संकीर्णताओं को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप महिलाओं का जीवन दयनीय होता चला गया। शिक्षा का प्रसार, आवागमन एवं संचार के साधनों के विपुल विस्तार, पश्चिमी मूल्यों के प्रभाव एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप महिलाओं में जागृति आयी। उन्हें अपने अस्तित्व का बोध हुआ, जिसके कारण वे समाज की संकीर्ण धारणाओं को तोड़ते हुए प्रतिस्पर्धा के खुले क्षेत्र में आ गयी।

यद्यपि वैदिक काल से लेकर आज तक की यात्रा में उनके उत्थान के लिए अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयत्नों, सामाजिक विधानों एवं समाज सुधारकों के आन्दोलनों का सतत् प्रयास जुड़ा हुआ है। आज वे सामाजिक, व्यावसायिक, प्रशासनिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में पुरूषों के समान ही आगे बढ़ती जा रहीं हैं। आज वे कुशल व्यवसायी, इंजीनियर, डाक्टर, प्रोफेसर, अधिवक्ता, उच्चाधिकारी, जज, वैज्ञानिक एवं नेता के रूप में शिखर पर पहुंच रही हैं। यह समस्त उपलब्धियॉं उनकी समकालीन स्थितियों की परिचायक हैं।

आज प्रत्येक राष्ट्र यह मानता है कि किसी भी राष्ट्र का विकास महिलाओं के विकास के बिना सम्भव नहीं है। यद्यपि भारतीय संदर्भ में वैदिक युग से आज तक महिलाओं की स्थितियों में बहुत उतार-चढ़ाव रहा है। वैदिक युग के बाद मध्यकाल एवं स्मृति काल तक आते-आते महिलाओं की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया गया और विभिन्न धार्मिक धारणाओं के साथ उनके ऊपर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये गये। फलतः वैदिक युग की प्रगतिशील नारी मध्यकाल एवं स्मृतिकाल में आकर संकीर्ण धारणाओं में बंध गयी। उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। अंग्रेजों के भारत आने पर महिलाओं के जीवन में परिवर्तन आना प्रारम्भ हुआ। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर एवं ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज के प्रयासों से महिलाओं में जागृति आयी। वैधानिक तौर पर भी अनेक अधिनियम बनाकर महिलाओं की स्थितियों में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया। हिन्दू विधवा पुर्नविवाह अधिनियम १८५६, बाल विवाह विरोध अधिनियम १९२६, विशेष विवाह अधिनियम १९५५, दहेज निरोध अधिनियम १९६१ संशोधित अधिनियम १९८६ समान पारिश्रमिक अधिनियम १९७६ आदि बनाकर महिलाओं के विकास के लिए योजनाबद्ध प्रयास किये गये जिसके फलस्वरूप महिलाओं में नयी चेतना जागृत हुई तथा वे सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में निरन्तर आगे आने लगी हैं। महिलाओं ने अपनी दक्षता, कुशलता एवं कौशलता के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि महिलाएं केवल बच्चे पैदा करने वाली मशीन नहीं हैं, बल्कि एक योग्य शिक्षक, दक्ष व्यवसायी, कुशल इंजीनियर, योग्य डॉक्टर तथा कुशल राजनेता और श्रेष्ठ वैज्ञानिक के रूप में प्रतिद्वन्द्वता की दौड़ में पुरूष से आगे हैं। यह मात्र शब्दों की बात नहीं है आज की प्रगतिशील महिला ने यह सब करके भी दिखा दिया है।

अनेक समाजशास्त्रीयों ने महिलाओं की इस परिवर्तनशील एवं प्रगतिशील स्थितियों का अध्ययन करके विचारणीय तथ्यों को प्रस्तुत किया है। पदमिनी सेन गुप्ता ने लिखा है कि अधिकाधिक महिलाएं अब अपने आत्मसम्मान और व्यक्तित्व के विकास को अपने जीवन का लक्ष्य मानने लगी हैं। हाटे ने अपने अध्ययन में पाया कि धीरे-धीरे महिलाएं महसूस करने लगी हैं कि इंसान के रूप में उनका भी एक निजी व्यक्तित्व है। उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य अच्छी पत्नियॉं और समझदार मॉं बन जाने से पूरा नही हो सकता बल्कि वे नागरिक समुदाय तथा संगठित समाज की एक प्रबुद्ध सदस्या हैं। दुबे का कथन है कि समकालीन

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, जे.एल.एन. (पी.जी.) कालेज एटा (उ.प्र.)

भारतीय समाज में नारी के स्थान और उनकी भूमिका के विषय में प्रचलित मान्यताऐं धीरे-धीरे बदल रही हैं।

प्रमिला कपूर ने पाया कि शिक्षित स्त्रियों के दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन आया है। वे कानूनी तथा राजनैतिक अधिकारों और शिक्षा एवं आर्थिक स्वतन्त्रता के अवसरों की बजह से प्राप्त अपने हकों तथा विशेष अधिकारों के प्रति अधिकाधिक जागरूक होती जा रही हैं। राजाबाबू ने मुस्लिम महिलाओं के बदलते दृष्टिकोणों का अध्ययन किया तो उन्होंने पाया कि आज मुस्लिम नवयुवतियों का दृष्टिकोण बदलता जा रहा है वे अपने वैयक्तिक विकास एवं आत्मसंतुष्ठि के लिए घर से बाहर निकलकर काम करना चाहती हैं। जकिया-ए-सिद्दीकी अनवर जहां जावरी ''मुस्लिम वुमैन प्राब्लम्स एवं प्रोस्पेक्टस'' में पाया कि बढ़ते शिक्षा स्तर एवं आर्थिक आवश्यकताओं के कारण मुस्लिम समाज में महिलाओं का बाहर काम पर जाना अपमानजनक समझा जाता था परन्तु वर्तमान परिवेश में इस दृष्टिकोण में बदलाव आ रहा है।

विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हो रहा है कि महिलाओं की परम्परागत स्थितियों में तथा उनके दृष्टिकोणों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहा है। प्रस्तुत अध्ययन उनके दृष्टिकोणों में आ रहे नूतन परिवर्तनों का मूल्यांकन करने का एक प्रयास है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन में जनपद एटा के नगरीय क्षेत्र का चयन किया गया। एटा नगर से उद्देश्यपूर्ण निदर्शनविधि की सहायता से अध्ययन हेतु २०० शिक्षित कामकाजी महिलाओं का चुनाव किया गया। अध्ययन में सम्मिलित महिलाएं २० वर्ष से ३५ वर्ष आयु वर्ग की हैं तथा इंटरमीडिएट से स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षित हैं। सूचनादात्रियों से आंकड़ों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची की सहायता ली गई है।

उपलब्धियाँ

सारणी-१

सूचनादात्रियों के पसन्दीदा परिवार

परिवार का स्वरूप	महिलाएं	प्रतिशत
संयुक्त परिवार	१०	५
एकांकी परिवार	१९०	९५
योग	२००	१००

सारणी सख्या १ से सूचनादात्रियों के पसंदीदा परिवार के संबंध में पूछने पर स्पष्ट हुआ कि अधिकांश (९५ प्रतिशत) सूचनादात्री एकाकी परिवार को पसन्द करती हैं। संयुक्त परिवार के सन्दर्भ में इनका कहना है कि संयुक्त परिवार प्रतिद्वन्द्वता के परिवेश में पूर्णतः अनुपयुक्त है। साथ-साथ रहने से लड़ाई होती है, यदि अलग-अलग रहते है तो प्रेम बना रहता है।

सारणी-२

प्राचीन मान्यताऐं समाज व्यवस्था के लिए ठीक

प्रतिउत्तर	महिलाएं	प्रतिशत
सहमत	५	२.५
असहमत	१८०	९०
उदासीन	१५	७.५
योग	२००	१००

सारणी सख्या २ के आंकड़ों से स्पष्ट है कि अधिकांश (९० प्रतिशत) सूचनादात्री परम्परागत मान्यताओं से पूर्ण असहमत हैं उनका कहना है कि परम्परागत मान्यताओं ने महिलाओं की दयनीय स्थिति बनायी है। वे उनकी प्रगतिशीलता के लिए पूर्णतः बाधक है परम्परागत मान्यताएं ही दकियानूसी माहौल को उत्पन्न करती है। इसलिए उन्हें समाप्त करना ही महिलाओं की प्रगति का आधार होगा।

सारणी-३

विवाह की प्रकृति

विवाह की प्रकृति	महिलाएं	प्रतिशत
जन्म जन्मान्तर का संबंध	१०	५
अटूट बन्धन	१५	७.५
स्त्री-पुरूष के तालमेल का संबंध	१७०	८५
यौन संतुष्ठि को पूर्ण करने का व्यवस्थित रूप	५	२.५
योग	२००	१००

सूचनादात्रियों से विवाह की प्रकृति के संबंध में पूछने पर सारणी संख्या ३ से स्पष्ट है कि अध्ययन में अधिकांश ८५ प्रतिशत सूचनादात्री यह मानती हैं कि विवाह न तो जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है और न अटूट बन्धन यदि पति-पत्नी में एक दूसरे के प्रति वैचारिक लैगिंक एवं कार्मिक संतुष्टि नहीं मिलती है तो ऐसे विवाह को बनाये रखना पूर्णतः अनुचित है। पति-पत्नी परिवार में बराबर का अधिकार रखते हैं इसलिए विवाह को अटूट और जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध मानकर घुटन भरे माहौल में जिन्दा रखना पूर्णत अनुचित है।

सारणी-४

पारिवारिक निर्णयों के संबंध में विचार

विचार	महिलाएं	प्रतिशत
बुर्जुर्गो का निर्णय मान्य	५	२.५
पति का निर्णय सर्वोपरि	१०	५
निर्णय पहले पत्नी से विचार विमर्श आवश्यक	१८०	६०
कोई उत्तर नहीं	५	२.५
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारणी के अनुसार अधिकांश (६०प्रतिशत) सूचनादात्रियों का मानना है कि जो निर्णय लिया जाता है उसमें पत्नी की सहमति का भी पूर्ण अधिकार है। यदि पत्नी का निर्णय ठीक नहीं लगता है तो उसे विद्रोह कर उस निर्णय को बदलवाना चाहिए।

सारणी-५

विवाह के निर्णय में प्राथमिकता

विचार	महिलाएं	प्रतिशत
माता-पिता द्वारा तय किया हुआ विवाह।	२०	१०
लड़का-लड़की अपनी पसन्द से।	४०	२०
माता-पिता तथा लड़का लड़की की राय से।	१४०	७०
योग	२००	१००

एक समय विशेष था जब लड़का लड़की के विवाह में माता-पिता का निर्णय सभी के द्वारा मान्य था अर्थात लड़का-लड़की की राय लेना आवश्यक नहीं था किन्तु अब अधिकांश (७०प्रतिशत) सूचनादात्रियों का कहना है कि विवाह माता-पिता द्वारा ही व्यवस्थित हो लेकिन विवाह से पूर्व लड़का-लड़की को अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो उन पर किसी प्रकार का दबाव न डाला जाय। माता-पिता द्वारा तय किए हुए विवाह को मात्र १० प्रतिशत सूचनादात्रियाँ ही स्वीकार करती हैं।

सूचनादात्रियों में से यह पूछने पर कि वे परिवार में कितने बच्चों का होना अच्छा मानती हैं इस संबंध में सभी सूचनादात्रियों ने परिवार में एक या दो बच्चों का होना ही अच्छा बताया है।

अन्त में शोधकर्त्री ने विषम लिगिंयों के बीच मित्रता के सन्दर्भ में प्रश्न किया। इस संबंध में भी अधिकांश (६० प्रतिशत) सूचनादात्रियों ने इस मित्रता को, उचित बताया किन्तु उनका मानना है कि यह मित्रता केवल बातचीत या औपचारिक व्यवहार एवं कार्यो तक ही सीमित होनी चाहिए, शारीरिक मिलन अथवा कामवासनाओं से युक्त व्यवहार पूर्णतः वर्जित होना चाहिए।

उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यहा कहा जा सकता है कि अध्ययन की सूचनादात्रियां अधिकांशतः (६५ प्रतिशत) एकाकी परिवारों में रहना पसंद करती हैं, वे (६० प्रतिशत) समाज की प्राचीन मान्यताओं से पूर्णतः असहमत हैं क्योंकि वे उनकी प्रगतिशीलता में बाधक हैं, उनकी अधिकांश संख्या (८५ प्रतिशत) विवाह को स्त्री-पुरूष की बीच तालमेल का संबंध मानती हैं, जन्म जन्मांतर का संबंध अथवा अटूट बंधन नहीं, पारिवारिक निर्णयों के संबंध में अधिकांशतः (६० प्रतिशत) की मान्यता है कि निणर्यो से पहले पति से विचार-विमर्श आवश्यक है तथा विवाह के निर्णय में अधिसंख्यक सूचनादात्रियों (७० प्रतिशत) का विचार है कि लड़की की राय से माता-पिता द्वारा विवाह का निर्णय लिया जाना चाहिए। निष्कर्षतः उनके विचार प्रगतिशीलता की दिशा में अभिमुखीकृत हैं।

सन्दर्भ

१. सेनगुप्ता, पद्मिनी, 'वीमन वर्कर्स इन इण्डिया', एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, १९६०

२. हाटे, सी०ए० 'दि० सोशल पोजीशन ऑफ हिन्दू वीमन', बम्बई १९४६

३. दुबे एस.सी., 'मेनूस एण्ड वीमनूस रोलुस इन इण्डिया', यूनेस्को पेरिस, १९६३, पृ. २०२

४. कपूर प्रमिला, 'कामकाजी भारतीय नारी', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९७६

५. शर्मा राजा बाबू, 'कार्यशील महिलाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन, अप्रकाशित पीएच.डी., थीसिस, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, १९६०

६. सिद्दीकी ज़किया ए, 'मुस्लिम वीमन-प्रोबलम एण्ड प्रोस्पेक्ट्स', एम.डी. पब्लीकेशन दिल्ली, १९६३

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

पंचायती राज नेतृत्व में महिलाओं की सहभागिता

❑ अंकिता सिंह

भारत प्रमुखतया गांव का देश है। प्राचीनकाल से ही भारतीय ग्रामीण समुदाय की सामाजिक संरचना के तीन महत्वपूर्ण आधार जाति प्रथा, संयुक्त परिवार और ग्रामीण पंचायत रहे हैं। स्वशासन की इकाई के रूप में ग्रामीण पंचायतों का विशेष महत्व रहा है। सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने के लिए विभिन्न राज्यों में ग्राम पंचायतें स्थापित की गयीं। सन १९५९ में पंचायती राज योजना को प्रारम्भ किया गया। ग्रामीण नेतृत्व परम्परागत एवं वंशानुगत होता था। परम्परागत नेतृत्व में उच्च जाति एवं अधिक आयु का महत्व था। यह नेतृत्व निरंकुश और एकात्मक था किन्तु पंचायती राज द्वारा सत्ता के विकेन्द्रीकरण किए जाने के फलस्वरूप गांवों में प्रजातंत्रात्मक नेतृत्व का उदय हुआ। आज नेतृत्व के अवसर किसी धर्म, जाति, व्यवसाय, रंग, लिंग और आयु तथा परिवार तक सीमित नही हैं। यद्यपि परम्परात्मक नेतृत्व पुरूष प्रधान था किन्तु अब स्त्रियां भी ग्रामीण नेतृत्व में आ रहीं है।१९९३ में ७३वें संविधान संशोधन को पारित कराकर पंचायतों के कुल स्थानों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए। अतः दो दशक से अधिक समय में पंचायती राज संस्थाओं में स्त्रियों की सहभागिता का मूल्यांकन करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास है।

भारत प्रमुखतया गांव का देश है। प्राचीनकाल से ही भारतीय ग्रामीण समुदाय की सामाजिक संरचना के तीन महत्वपूर्ण आधार जाति प्रथा, संयुक्त परिवार और ग्रामीण पंचायत रहे हैं। स्वशासन की इकाई के रूप में ग्रामीण पंचायतों का विशेष महत्व रहा है। महात्मा गांधी की मान्यता थी कि ग्रामीण जीवन का पुनर्निर्माण ग्राम पंचायतों की पुनः स्थापना से ही सम्भव है। ग्राम पंचायत ग्रामीण क्षेत्रों में शासन प्रबंध शान्ति और सुरक्षा की एक मात्र संस्था रही है। देश के स्वतंत्र होने के पश्चात यहां सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने के लिए विभिन्न राज्यों में ग्राम पंचायतें स्थापित की गयीं। सन १९५२ में गावों के सर्वांगीण विकास हेतु सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किए गए।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम को जनता का कार्यक्रम बनाने तथा आवश्यक जन सहयोग प्राप्त करने हेतु बलवन्तराय मेहता कमेटी ने सन १९५७ में पंचायतीराज योजना प्रस्तुत की जिसको लोकतांत्रिक विकेन्दीकरण कहा गया। राष्ट्रीय विकास परिषद ने सन १९५८ में इस योजना को स्वीकार कर लिया। इस तरह सन १९५९ में पंचायती राज योजना को प्रारम्भ किया गया। पंचायती राज योजना को प्रारम्भ करने वाले प्रथम राज्यों में राजस्थान तथा आन्ध्र प्रदेश थे। पंचायतीराज योजना का उद्घाटन २ अक्टूबर १९५९ को प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा राजस्थान राज्य के नागौर जिले में किया गया। उ०प्र० में यह व्यवस्था उत्तर प्रदेश पंचायत विधि अधिनियम १९९४ के आधार पर की गयी जिसमें ग्रामीण नेवृत्व को नई दिशा दी गई। ग्रामीण नेतृत्व परम्परागत एवं वंशानुगत होता था। परम्परागत नेतृत्व में उच्च जाति एवं अधिक आयु का महत्व था। यह भी कहा जा सकता है कि परम्परागत नेतृत्व निरंकुश और एकात्मक था किन्तु पंचायती राज द्वारा सत्ता के विकेन्द्रीकरण किए जाने के फलस्वरूप गांवों में प्रजातंत्रात्मक नेतृत्व का उदय हुआ। आज नेतृत्व के अवसर किसी धर्म, जाति, व्यवसाय, रंग, लिंग और आयु तथा परिवार तक सीमित नही हैं। यद्यपि परम्परात्मक नेतृत्व पुरूष प्रधान था किन्तु अब स्त्रियां भी ग्रामीण नेतृत्व में आ रहीं है।

सन १९८९ में श्री राजीव गांधी ने ६४वें संविधान संशोधन के रूप में पंचायती राज विधेयक को संसद में प्रस्तुत किया लेकिन वह पारित नही हो सका। सन १९९३ में प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने ७३वें संविधान संशोधन को पारित कराकर पंचायतीराज को संवैधानिक दर्जा दिलाया। इसके द्वारा संविधान में अनुच्छेद २४३क आ गया जिसमें महिलाओं तथा अनुसूचित जाति व अनुसूचित जन जाति के स्थान आरक्षित किए गए। इसके अनुसार पंचायतों के कुल स्थानों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए। यद्यपि इस संशोधन से पूर्व भी महिलायें पंचायतों में नामित होकर आती थीं वर्तमान में लगभग १० लाख महिलायें पंचायतीराज के त्रिस्तरीय ढांचे के सदस्य और अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। प्रारम्भ में महिलाओं को जब आरक्षण का लाभ दिया गया था उस समय कई प्रकार की शंकाए लोगो के मन में थी।

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, जे.एल.एन. (पी.जी.) कालेज, एटा (उ.प्र.)

१. आरक्षण के बल पर पंचायत में आ जाने से क्या वे राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी कर पायेंगी।
२. क्या हमारा सामाजिक ढांचा उन्हें ऐसी स्थिति प्रदान करने को तैयार है जिसमें कि महिलाऐं प्रारम्भ से ही भेदभाव की शिकार हैं?
३. क्या इस प्रकार की जिम्मेदारियों को वहन करने के लिए उनके पास आवश्यक शिक्षा, ज्ञान एवं अनुभव है?

किन्तु आज उक्त सभी शंकाएं धीरे-धीरे कम हो रही हैं तथा उनमें राजनीतिक जागरूकता आ रही है और वे अब अपने उत्तरदायित्व तथा कर्तव्यों के संदर्भ में भी जागरूक हो रही है। एम०एन० श्री निवास[1] ने पाश्चात्यीकरण की प्रक्रिया के द्वारा कई अर्थो में महिलाओं की प्रस्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट किया है। उनका मानना है कि प्रक्रिया के फलस्वरूप नए सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभाव हो रहा है। उन सांस्कृतिक परिवर्तनों ने महिलाओं में भी सामान्यतया अधिकार चेतना को उत्पन्न किया है।

शोध प्रारूप : शोधकत्री प्रस्तुत अध्ययन हेतु जनपद के सांख्यकी विभाग से महिला प्रधानों की सूची ली फिर उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली से उस सूची में से ३०० महिला प्रधानों को चुन लिया। ये महिला प्रधान ऐसे चुने थे जिनसे कि आसानी से सम्पर्क किया जा सकता है। प्रयास अवश्य ही ऐसा रहा है कि जाति, आयु एवं शिक्षा के आधार का सही प्रतिनिधित्व हो सके। सूचनादाताओं से सूचनाओं के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची की सहायता ली गई।

१. चुने हुये उत्तरदाताओं में सामान्य वर्ग की ५१ प्रतिशत पिछड़ा वर्ग की ३० प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति की ६ प्रतिशत हैं।
२. उत्तरदाताओं की आयु के आधार पर विश्लेषण किया तो स्पष्ट हुआ कि अधिकांश (६१.३३ प्रतिशत) उत्तरदाता ३१ से ४० वर्ष की आयु वर्ग में है तथा १३.६७ प्रतिशत उत्तरदाता ३० वर्ष से कम उम्र के है। सबसे कम प्रतिनिधि अर्थात ५.३३ प्रतिशत उत्तरदाता ५१ वर्ष से ऊपर की हैं।
३. शिक्षा के आधार पर विश्लेषण किया तो स्पष्ट हुआ कि सर्वाधिक (५८ प्रतिशत) उत्तरदाओं की शैक्षिक योग्यता हाईस्कूल से कम है। अभी भी कुछ ४.३४ प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित हैं। वे हस्ताक्षर भी नही कर सकती थीं।

उपलब्धियाँ

१. महिला प्रधानों की परिवार के सदस्यों से राजनैतिक चर्चा : चूंकि महिलाऐं आरक्षण व्यवस्था से जन प्रतिनिधि तो बन जाती है किन्तु उनका राजनैतिक ज्ञान एवं राजनीति के प्रति लगाव बहुत कम देखा जाता है वे घर के काम काज में लगी रहती है कहीं उनके पिता, पति या पुत्र अथवा परिवार का अन्य चला फिरा व्यक्ति प्रधानी के सम्पूर्ण काम करता है। यहां तक कि उनके हस्ताक्षर भी बना देता है शोधकत्री ने समाचार पत्रों में प्रकाशित घटनाओं का विश्लेषण कर अनुभव किया कि ज्यादातर महिलायें प्रधानों के घर के पुरूष वर्ग उन्हें आगे नही आने देते हैं वे तो नाम मात्र की प्रधान होती हैं। अतः शोधकत्री ने यह जानना चाहा कि कितनी महिला प्रधान ऐसी हैं जो कि अपने परिवारी सदस्यों के साथ बैठकर राजनैतिक चर्चा करती हैं।

सारणी संख्या १
परिवार के सदस्यों से राजनैतिक चर्चा

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
अधिकांश	३८	१२.६७
प्रायः	६४	२१.३३
कभी कभी	९८	३२.६७
कभी नही	१००	३३.३३
योग	३००	१००.००

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिसंख्यक ३३.३३ प्रतिशत महिला प्रधानों (उत्तरदताओं) ने शोधकत्री को बताया कि उनकी अपने परिवार सदस्यों के साथ बैठक में कभी भी राजनैतिक चर्चा नही होती है, ३२.६७ प्रतशत की कभी-कभी, २१.३३ प्रतिशत की प्रायः और मात्र १२.६७ प्रतिशत ही अधिकांश चर्चा करती हैं।

सारणी संख्या २
पड़ोस की महिलाओं से राजनैतिक चर्चा

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
अधिकांश	३०	१०.००
प्रायः	६०	२०.००
कभी कभी	१२५	४१.६७
कभी नही	८५	२८.३३
योग	३००	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश ४१.६७ महिला प्रधानों का कहना है कि वे अपने पड़ोसी महिलाओं के बीच कभी कभी राजनैतिक चर्चा करती हैं क्योंकि अध्ययन के अंतर्गत अधिकांश, प्रायः और कभी-कभी तीनों वर्गों में कुल ७१.६७ प्रतिशत महिला नेत्री अपनी पड़ोसी महिलाओं के साथ चर्चा करती रहती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं

में राजनैतिक जागरूकता बढ़ती जा रही है।

सारणी संख्या ३

अपने सहयोगियों से राजनैतिक चर्चा

सहायोगियों से चर्चा	संख्या	प्रतिशत
अधिकांश	२३	७.६७
प्रायः	३३	११.००
कभी कभी	६४	२१.३३
कभी नही	१८०	६०.००
योग	३००	१००.००

सारणी संख्या ३ में अधिकांश ६० प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे अपने सहयोगियों से कभी राजनैतिक चर्चा नही करती हैं जबकि मात्र २१.३३ उत्तरदाताओं का कहना है कि कभी कभी वे अपने सहयोगियों से राजनैतिक चर्चा करती हैं तथा ऐसा करते हुऐ उन्हें अच्छा लगता है।

शोधकत्री ने सोचा कि इस जागरूकता का प्रमुख स्तम्भ मीडिया है। अतः शोधकत्री ने जानना चाहा कि कितने उत्तरदाता समाचार पत्रों को पढ़ती हैं तथा राजनैतिक उथल पुथल को ध्यान से पढ़ती हैं।

सारणी संख्या ४

समाचार पत्रों को पढने की प्रवृत्ति

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
अधिकांश	२०	६.६७
प्रायः	६०	२०.००
कभी कभी	१५०	५०.००
कभी नही	७०	२३.३३
योग	३००	१००.००

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश ५० प्रतिशत उत्तरदाता कभी कभी समाचार पत्र पढ़ती हैं तथा २० प्रतिशत उत्तरदाता प्रायः समाचार पत्र पढ़ती हैं किन्तु २३.३३ प्रतिशत उत्तरदाता समाचार पत्र कभी भी नहीं पढ़ती हैं। इस विश्लेषण से यह अवश्य स्पष्ट हो रहा है कि महिला प्रधानों में भी घटनाओं को जानने की जिज्ञासाएं उत्पन्न हो रही हैं।

शोधकत्री ने उत्तरदाताओं से जानना चाहा कि सांसद, मंत्री, प्रधानमंत्री, विधायक, एवं मुख्यमंत्री द्वारा दिए गए भाषण या वक्तव्य को देखने में उनकी कितनी रूचि है तो इसके उत्तर में ७० प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि वे ऐसे व्यक्तियों को ध्यान से सुनती हैं तथा उन्हें लगता है कि कभी न कभी ऐसा दिन आए जब उन्हें भी टीवी पर बोलने का मौका मिले। उनके इस तरह के उत्तर से ऐसा अनुभव हुआ कि महिलाओं में राजनैतिक जागरूकता निरन्तर बढ़ती जा रही है। यह बात अलग है कि इस जागरूकता का अधिकांश अंश अभी कल्पना तक ही सीमित है।

शोधकत्री ने इन महिला प्रधानो से राजनैतिक गतिविधियों के संदर्भ में बातचीत की तो ८० प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि लोगों के विभिन्न जगहों पर कार्य होते हैं। उन्हें कराने हेतु वे नहीं जाती हैं उनके पति या घर के अन्य सदस्य जाते है। किन्तु जब जिलाधिकारी के यहां मीटिंग होती है तो उन्हें जाना ही पड़ता है, क्योंकि एक आदेश निकला था कि प्रधान पतियों को मीटिंग में आने की अनुमति नहीं होगी। इसके उपरान्त शोधकत्री ने जानना चाहा कि क्या जन सभाओं में वे जाती हैं।

सारणी संख्या ५

जनसभाओं में भागीदारी

उपस्थिति	संख्या	प्रतिशत
लगातार	५७	१९.००
कभी-कभी	१९५	६५.००
कभी नहीं	४८	१६.००
योग	३००	१००.००

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश ६५ प्रतिशत कभी-कभी सभाओं में उपस्थित होती हैं जबकि १९ प्रतिशत उत्तरदाता लगातार अर्थात हर मीटिंग एवं सभा में अवश्य ही उपस्थित होती हैं, परन्तु १६ प्रतिशत उत्तरदाता सभाओं में कभी नहीं जाती हैं। स्पष्ट है कि महिलाओं में नेतृत्व का भाव जागृत हो रहा है तथा वे सभाओ में पहुंचकर अपने को नेता के रूप में दिखाना भी चाहती है।

शोधकत्री ने उत्तरदात्रियों से यह भी जानने का प्रयास किया कि एक प्रधान के रूप में जो निर्णय लेन पड़ते हैं, उसमें उनकी क्या स्थिति रहती है।

सारणी संख्या ६

महिला प्रधानों की निर्णय लेने में स्थिति

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
स्वंय निर्णय लेती है	३०	१०
निर्णय में पति की मुख्य भूमिका	१९५	६५
अन्य	७५	२५
योग	३००	१००

उक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश ६५ प्रतिशत महिला प्रधानों को जब प्रधान के रूप में निर्णय लेना होता है तो उनके पति ही निर्णय लेते हैं। इससे ज्ञात होता है कि उनके पति वास्तविक भूमिका अदा करते हैं। शोधकत्री ने जानना चाहा कि वे स्वयं निर्णय क्यो नहीं लेती हैं, तो उनका

कहना है कि आज की परिस्थितियों में धोखे बहुत होते है, इसलिए पति पर ही सब कुछ छोड़ दिया है। शोधकत्री ने यह भी जानना चाहा कि क्या उनके पति निर्णय लेते समय उनसे विचार विमर्श करते हैं तो उन्होने स्पष्ट उत्तर दिया कि पति ऐसा नहीं करते है। केवल १० प्रतिशत ही ऐसी है जिनका कहना है कि निर्णय में वे किसी को शरीक नहीं होने देती हैं। इसे लेकर कभी-कभी उनके पति एवं परिवार वाले भी नाराज हो जाते है। शोधकत्री ने महिला प्रधानों से यह भी जानना चाहा कि धन एवं बजट तथा खर्चा सम्बन्धी जानकारियां आपको रहती है।

सारणी संख्या ७

बजट एवं खर्चों की जानकारी

जानकारियां रहती हैं	संख्या	प्रतिशत
हॉ	१५	५
नहीं	२८५	९५
योग	३००	१००

अधिकांश उत्तरदाताओं का कहना है कि वजट एवं पैसे का लेन-देन उनके पति ही करते हैं। उन्हें इस संदर्भ में कोई जानकारी नहीं होती है। जब शोधकत्री ने जानना चाहा कि आप स्वयं क्यो नहीं करतीं। तो उनका उत्तर था कि प्रधान तो उनके पति ने ही बनवाया तो फिर हमें उन पर पूरा विश्वास हैं।

शोधकत्री ने यह भी अनुभव किया है कि आज महिलाए सांसद है मंत्री है, मुख्यमंत्री है तथा विभिन्न राजनैतिक पद पर आसीन है किन्तु जब ग्रामीण नेतृत्व की बात आती है तो यहां उनकी संख्या बहुत कम है। जहां दिखाई भी देती है। वहां केवल आरक्षण के फलस्वरूप ही है।

मिलब्रेथ[२] ने नेतृत्व का अध्ययन करने पर पाया कि महिलाएं अधिकांशतः पारिवारिक क्रियाओं में व्यस्त रहती हैं। पद प्राप्त करने पर भी वे राजनीति से विमुख रहती हैं। योगेन्द्र सिंह[३] ने अपने अध्ययन में पाया कि पंचायती शक्ति प्राप्त करने में जमीदारी, ईमानदारी, विनय व्यवहार और परिवार के सदस्य अहम् भूमिका निभाते हैं। प्लानीथुराई[४] ने अपने अध्ययन में पाया कि आज महिलाएं स्थानीय स्तर पर स्थिति प्राप्त कर रही हैं, उनके दृष्टिकोण बदल रहे हैं। सदियों से चली आ रही व्यवस्था के विरूद्ध अपने कदम बढ़ा दिए हैं। आज वे अपने विकास के प्रति सजग हो गई हैं। एस.एस. शर्मा[५] ने उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के ६६ गांव पंचायतों में नई पंचायती व्यवस्था में नेतृत्व को समझने का प्रयास किया कि परम्परात्मक रूप से जो सत्ता में थे, अधिकतर नई पंचायती राज व्यवस्था में भी सत्ता पर काबिज रहे हैं। बी.आर. चौहान[६] ने बताया कि ग्रामीण समुदायों में जातीय सूत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

शोधकत्री ने इस अध्ययन से अनुभव किया है कि पंचायतों में महिलाओं के आरक्षण से ही महिलाओं की सक्रिय सहभागिता नहीं बढ सकती है। पुरूष प्रधान समाज व्यवस्था, निरक्षरता, अनुभवहीनता तथा घर के काम काज का उत्तरदायित्व आदि ऐसी अनेक समस्याएं है, जिनके कारण महिलाओं के पद प्राप्त करने के बावजूद राजनीति में उनकी सक्रियता नहीं हो पा रही है। शोधकत्री ने यह भी अनुभव किया है कि पुरूष आधिपत्य के कारण महिलाएं ग्राम सभा की बैठकों एवं अधिकारियों द्वारा ली जाने वाली बैठकों में भी भागीदार नहीं हो पाती है। इसके लिए कुछ ठोस प्रयास करने होगें। उनकी शिक्षा को बेहतर बनाना होगा तथा युवा वर्ग की महिलाओं को राजनीति में आने के लिए प्रेरित भी करना होगा। साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि चुने हुए प्रतिनिधियों की ब्लाक एवं तहसील स्तर पर प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जाए जिससे कि उन्हें सरकारी योजनाओं एवं नीतियों को समझने एवं उन्हें क्रियान्वित करने की जानकारी होगी। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि समस्त व्यवधानों से निपटने के लिए महिलाओं में जागरूकता को लाना बहुत आवश्यक है जिससे कि वे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में अपने को सफल बनाने में सक्षम हो सके।

सन्दर्भ

1. Srinivas M.N., 'Social Change in Modern India', University of California Press, 1966.
2. Milbreth, L.W., 'Political Participation', Rand MC Mally & Co. Chicago, 1965.
3. Singh, Y, 'A Sociological Study of Panchayati Raj Institutions and Development of Scheduled Castes in District Bulandshar (U.P.)', Ph.D. Thesis Deptt.of Sociology, Meerut University, Meerut, 1993.
4. Planithurai G., 'The Gen of Woman Leaders in Local Bodies-Experience from Tamilnadu', The Indian Journal of Public Administration Jan.-March, Vol. XLVII No. 1 pp. 38-49.
5. Sharma S.S., 'Rural Elites in India', Sterling Publication, Jalandhar, 1979.
6. Chauhan B.R., 'The Panchayati Raj and the Democratic Policy', Sociological Bulletin Vol. XVII pp. 35-54.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी–जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

भारतीय ग्रामीण स्वास्थ्य व्यवस्था में परिवर्तन एवं विकास : एक समीक्षात्मक मूल्यांकन

❑ **अमित कुमार शर्मा**

भारत को हमेशा गाँव के देश के रूप में जाना जाता रहा है। यहाँ नगरीकरण की दर बहुत धीमी रही है। १९५१ से २०११ तक यह ६० वर्षों में सिर्फ १३.४१ प्रतिशत रही है। १९५१ में भारत की ८२.५५ प्रतिशत जनसंख्या गाँव में रहती थी जबकि आज ६८.८४ प्रतिशत (२०११ की जनगणना के अनुसार) गाँव में रहती हे इसीलिए जब तक गाँवों का समुचित विकास नहीं किया जायेगा तब तक देश को विकसित नहीं किया जा सकतां लेकिन आज के गाँव पहले की तरह गाँव नहीं है। गाँव की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संरचनाओं में परिवर्तन आ रहा है। जैसे-जैसे आर्थिक विकास व सामाजिक विकास हो रहा हे वैसे-वैसे स्वास्थ्य सेवाओं में भी विकास हो रहा है। पहले लोग पारम्परिक औषधि एवं स्वास्थ्य सेवाओं के ऊपर निर्भर थे जैसे कि जड़ी-बूटी और बुरी आत्माओं को शान्त करना, देवी देवताओं को शान्त करना या प्रसन्न करना आदि जैसे उपचार करते थे। धीर-धीरे पश्चिमी देशों के प्रभाव से आधुनिकीकरण के चलते आधुनिक औषधि एवं उपचार के प्रयोग की शुरूआत हुई। तब भी लोगों में पारम्परिक अन्धविश्वास से सम्बन्ध जारी रहा। स्वतंत्रता के थोड़े समय के बाद ही भारत सरकार नें ग्राम-विकास का एक व्यापक कार्यक्रम शुरू किया।१९५२ में सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा १९५९ में पंचायतीराज की शुरूआत से परिवर्तन की प्रक्रिया और तेज हुई। इन दोनों कार्यक्रमों नें ग्रामों की जड़ता को दूर करने का सफल प्रयास किया।

वर्तमान स्वास्थ्य व्यवस्था पारम्परिक स्वास्थ्य व्यवस्था से कुछ भिन्न है लेकिन यह एक मिली जुली व्यवस्था है। जहाँ पहले स्वास्थ्य समस्या का अर्थ प्राकृतिक शक्ति, जादू टोना, भूत प्रेत, ईश्वर की इच्छा से लगाया जाता है। शिक्षा के विकास व जागरूकता कार्यक्रमों द्वारा आज स्वास्थ्य समस्या का कारण शरीर में किसी समस्या से लगाया जाता है और लोग उसका इलाज आधुनिक पद्धतियों द्वारा करने का प्रयास भी करते हैं। ग्रामीण समाजों में आज भी लोग पारम्परिक पद्धतियों का प्रयोग करते हैं क्योंकि वहाँ आधुनिक स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है या वह अपर्याप्त हैं। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य ग्रामीण समाज में खराब स्वास्थ के कारणों का पता लगाना तथा स्वास्थ्य व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों का मूल्यांकन करना है।

इस शोध प्रपत्र का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण समाज में खराब स्वास्थ्य कारणों का पता लगाना तथा स्वास्थ्य व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों का मूल्यांकन करना है। वर्तमान स्वास्थ्य व्यवस्था पारम्परिक स्वास्थ्य व्यवस्था से कुछ भिन्न है लेकिन यह एक मिली जुली व्यवस्था है। जहाँ पहले स्वास्थ्य समस्या का अर्थ प्राकृतिक शक्ति, जादू टोना, भूत प्रेत, ईश्वर की इच्छा से लगाया जाता है। शिक्षा के विकास व जागरूकता कार्यक्रमों द्वारा आज स्वास्थ्य समस्या का कारण शरीर में किसी समस्या से लगाया जाता है और लोग उसका इलाज आधुनिक पद्धतियों द्वारा करने का प्रयास भी करते हैं। ग्रामीण समाजों में आज भी लोग पारम्परिक पद्धतियों का प्रयोग करते हैं क्योंकि वहाँ आधुनिक स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है या वह अपर्याप्त हैं। इसीलिए भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पारम्परिक व आधुनिक एलोपैथिक स्वास्थ्य व्यवस्था का समन्वय देखा जाता है जिसमें लोग सुविधानुसार दोनों पद्धतियों को महत्व देते हैं और दोनों का प्रयोग साथ-साथ करते हैं।

ग्रामीण समाजों के विकास के लिए सरकार द्वारा कई विकासात्मक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में सबसे पहले आर्थिक विकास पर बल दिया गया किन्तु आर्थिक विकास द्वारा समस्यायें समाप्त नहीं हुई। उसके बाद समाज वैज्ञानिकों नें सामाजिक विकास की अवधारणा दी जिसे बाद में विकास कार्यक्रमों में लागू किया गया। सामाजिक विकास एक संर्वागीण विकास है जिसमें आर्थिक विकास भी शामिल है।[1]

सामाजिक विकास में स्वास्थ्य की अहम भूमिका होती है तथा मानव सूचनांक में भी ये महत्वपूर्ण आधार है इसीलिए केन्द्र सरकार द्वारा स्वास्थ्य व परिवार कल्याण से सम्बन्धित लगभग ६३ कार्यक्रम (योजनायें) वर्तमान समय में चल रहे हैं। इन विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य लोगों के स्वास्थ्य स्तर में सुधार

❑ शोध अध्येता समाजशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ.प्र.)

तथा स्वास्थ्य के प्रति जगरूकता लाना है।

ग्रामीण समाज में अधिकतर लोग पारम्परिक उपचार पद्धतियों का प्रयोग करते हैं जिससे स्वास्थ्य समस्यायें बढ़ जाती हैं। इसके अलावा निर्धनता, बढ़ती जनसंख्या, पुत्र प्राथमिकता महिलाओं की निम्न सामाजिक स्थिति तथा सांस्कृतिक रूढ़ियों के कारण भी स्वास्थ्य समस्यायें पैदा होती हैं। भारत में बिटिश शासन के समय और उसके बाद ग्रामीण समाज में आधुनिक एलोपैथिक दवाइयों का प्रयोग शुरू हुआ। सरकार नें प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना के साथ ही चिकित्सकों को ग्रामीण क्षेत्रों में जाने के लिए प्रेरित किया किन्तु चिकित्सकों की अनुपस्थिति, दवाओं की कमी, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, शिक्षा का अभाव आदि के कारण जितना विकास होना चाहिए था उतना नहीं हुआ।

भूमण्डलीकरण व सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ स्वास्थ्य सेवाओं का विकास हुआ। २००५ में भारत सरकार नें राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की शुरूआत की जिसके तहत कई स्वास्थ्य सेवाओं को लागू किया गया। पहले से चल रही योजनाओं को भी इसी कार्यक्रम में एकीकृत कर दिया गया जिसके कई सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुये लेकिन आज भी ग्रामीण समाजों में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता के अलावा दिन-प्रतिदिन लोगों में बढ़ रहे नये-नये रोग व बीमारी के कारण अन्य समस्यायें पैदा हो रही हैं।

स्वस्थ्य व्यक्ति ही अपनी कार्यकुशलता व कार्यक्षमता का प्रयोग कर अपने राष्ट्र व समाज को विकास के मार्ग पर ले जा सकता है। अगर व्यक्ति किसी भी प्रकार से अस्वस्थ है या उसके सामाजिक सम्बन्धों में कोई समस्या है तो उसका प्रभाव उसकी वैचारिकी, कार्यक्षमता पर भी पड़ता है। पिछले एक दशक में हो रहे अध्ययनों में अर्थशास्त्रियों वा समाजवैज्ञानिकों नें स्वास्थ्य एवं सामाजिक-आर्थिक विकास के बीच सम्बन्धों को मुख्य विषय बनाया है और उनके अध्ययनों से यह निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं कि किसी भी समाज में मानव विकास एवं परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण मानक/सूचकांक स्वास्थ्य है।

किसी भी समाज में स्वास्थ्य का स्तर हमारी आवश्यकताओं के लक्षण व संकेतों के माध्यम से जाना जा सकता है सामान्यतया स्वास्थ्य में कुछ संकेत का प्रयोग करते हैं उदाहरण के लिए अपरिष्कृत मृत्युदर, शिशु मृत्युसंख्या, जन्मदर, लिंग अनुपात, जीवन प्रत्याशा, स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुंच आदि। सारणी संख्या १ में कुछ तथ्य हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य का स्तर खराब है।

सारणी संख्या-१

जन्मदर

वर्ष	कुल	ग्रामीण	नगरीय
१६८७	३२.२	३३.७	२२.७
१६६५	२८.३	३०.०	२२.७
१६६६	२७.५	२६.३	२१.६
१६६७	२७.२	२८.६	२१.५
२००१	२७.५	२७.१	२०.२
२००५	२३.६	२५.८	१६.०
२००६	२२.५	२४.१	१८.३
२०१३	२१.४	–	–

मृत्युदर

वर्ष	कुल	ग्रामीण	नगरीय
१६८७	१०.६	१२.०	७.४
१६६५	६. ०	६.८	६.६
१६६६	६.०	६.७	६.५
१६६७	८.६	६.६	६.५
२००१	८.४	६.१	६.३
२००५	७. ६	८.१	६.०
२००६	७.३	७.८	५.८
२०१३	७.०	–	–

स्रोतः मैनुअल ऑन हेल्थ स्टैटिक्स इन इण्डिया, मिनिस्ट्री ऑफ स्टैटिक्स एण्ड प्रोग्राम इम्पलिमेंटेशन गवूर्नमेन्ट् ऑफ इण्डिया ,मई २०१५।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है स्थिति संतोषजनक नहीं है बाद के वर्षो में सुधार हुआ है लेकिन नगरीय क्षेत्रों की तुलना में कम। नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छ पीने के पानी की उपलब्धता व शौचालय की उपलब्ध सुविधा भी अच्छी नही है। यह सारणी संख्या १.२ से स्पष्ट होता है।

सारणी संख्या २

स्वच्छ पीने का जल तथा शौचालय सेवा की उपलब्धता

	नगरीय	ग्रामीण	कुल
जल की उपलब्धता	६५	८४.५	६३ प्रतिशत
शौचालय की सुविधा	५२.८	१७.६	३६.० प्रतिशत

स्रोतः सामाजिक आर्थिक स्टेटिस्टिक्स २०११, मिनिस्ट्री ऑफ स्टेटिस्टक्स एण्ड प्रोग्राम इम्पलीमेन्टेशन, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, २०११

हमारी जनसंख्या का ६८.८४ प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। हमारे देश में स्वास्थ्य संबंधी कई चुनौतियां है, लेकिन लिंगानुपात का तेजी से घटना एक बड़ी समस्या है। लिंगानुपात

की खराब स्थिति को देखते हुये सरकार की ओर से जागरूकता अभियान चलाये जाने एवं शिक्षा के प्रसार से भी इसमें पहले की अपेक्षा सुधार हुआ है। भारत में लिंगानुपात की जानकारी सारणी संख्या १.३ में दी गई है।

सारणी संख्या- ३

भारत में ग्रामीण लिंग अनुपात

(प्रति १००० पुरूष पर स्त्री)

वर्ष	१९६१	१९७१	१९८१	१९९१	२००१	२०११
लिंग अनुपात	९६३	९४६	९५१	९३८	९४६	९४७

स्रोतः सामाजिक आर्थिक स्टेटिस्टिक्स २०११, मिनिस्ट्री ऑफ स्टेटिस्टक्स एण्ड प्रोग्राम इम्पलीमेन्टेशन, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, २०११

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि भारत में लिंग अनुपात की खराब स्थिति काफी चिन्ताजनक है। भारत में लिंग अनुपात की असमानता के कई कारण हैं जैसे कि पुत्र को प्राथमिकता देना, कम उम्र में लड़कियों का विवाह जन्म मृत्यु संख्या, प्रसव के दौरान होने वाली माताओं की मृत्यु आदि। समाज वैज्ञानिकों नें ग्रामीण स्वास्थ्य व्यवस्था तथा उसके परिवर्तन व ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विषयों पर महत्वपूर्ण शोध कार्य प्रकाशित हुये हैं जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं:-

अलेक्जेन्डर एव कुमारन[२] के अनुसार विकास एक बहुआयामी प्रक्रिया हैं जो कि सम्पन्ता बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं साथ ही बीमारी की रोकथाम, स्वास्थ्य में सुधार, (प्रजनन) जनसंख्या में कमी, पर्यावरण सुधार और व्यक्तिगत स्वास्थ्य में भी महत्वपूर्ण है। विकास में कार्य करने के तरीकों में उचित प्रकार से आगे बढ़ने एवं मूल्य विशेष आधारित पहलू की भी आवश्यकता होती है। गरीबी के स्तर में कमी आई है, साक्षरता बढ़ी है, परिवार नियोजन के साधनों के प्रति लोगों का ध्यान गया है। शिशु मृत्युदर में कमी आई है लेकिन सम्पत्ति के अभाव तथा कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई है। गरीबी में कमी आने से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य के स्तर में सुधार हुआ है।

सच्चिदानन्द[३] के अनुसार अगर हम वास्तविकता में जाकर ग्रामीण समाज का अध्ययन करके योजना नहीं बनायेगें तो विकास के कार्यक्रम असफल रहेंगे। लोगों की सक्रिय सहभागिता के द्वारा ही ग्रामीण विकास कार्यक्रम सफल रहेगा।

श्रीवास्तव[४] के अनुसार हमारे देश में महिला स्वास्थ्य की स्थिति अच्छी नहीं है और ग्रामीण भारत में यह कहीं और खराब है। यदि घर की महिला स्वस्थ्य हो तो बच्चे स्वस्थ्य होगें और परिवार के अन्य सदस्यों पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

कटारिया[५] के अनुसार ग्रामीण स्वास्थ्य का स्तर मूलतः निर्धनता एवं निरक्षरता का परिणाम है जो एक विषैले कुष्ठ को जन्म देता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही स्थिति बनी रहती है। उन्होंने सुझाव दिया कि राष्ट्र का समग्र आर्थिक विकास हुए बिना स्वास्थ्य क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकती है।

चौरसिया[६] का मानना है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल, परिवहन तथा संचार साधनों की कमी, चिकित्सकों एवं स्वास्थ्य कार्मिकों का ग्रामीण क्षेत्रों में कम ठहराव तथा वित्तीय संसाधनों की कमी इत्यादि समस्याएँ ग्रामीण स्वास्थ्य एवं विकास को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। इसलिए इन्होनें सुझाव दिया कि सम्पूर्ण विकास से सम्बन्धित कल्याणकारी योजनाओं का एकीकरण करके सामाजिक-आर्थिक विकास के लक्ष्य बेहतर ढंग से तथा शीघ्र प्राप्त किये जा सकते हैं।

दुबे[७] ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन किया था और कहा रणखण्डी में क्रियान्वित किये गये कार्यक्रमों में जो कार्यक्रम संस्कृति के अनुरूप नहीं थे वे असफल रहे। जैसे-शौचालय, लोगों नें इसका प्रयोग नहीं किया क्योंकि वह शौचा हेतु खुली जगह जाते थे। वह 3x3 के कमरे में नहीं जाते थे वह शौचालय को अशुद्ध मानते थे।

यादव[८] के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य सुविधाओं की सुचारू रूप से उपलब्धता न होने के कारण यहॉ के अधिकतर व्यक्ति पारम्परिक उपचार पद्धतियों का सहारा लेते हैं। ग्रामीणों में रोग की जटिलता बढ़ती जाती है। स्वास्थ्य किसी भी समाज की आर्थिक प्रगति के लिए अनविार्य है।

इसी प्रकार उपर्युक्त अध्ययनों की समीक्षा करने से ज्ञात होता है कि ग्रामीण समाज में खराब स्वास्थ्य के कई कारण हैं और यह कारण कहीं ना कहीं ग्रामीण समाज में व्याप्त गरीबी, अजागरुकता तथा सामाजिक सांस्कृतिक संरचना है। अब तक किये गए अध्ययनों में यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के बाद भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने एक तरफ भारतीय ग्राम की परम्परागत संरचना को प्रभावित किया है तो वहीं दूसरी तरफ सूचना प्रौद्योगिकी व भूमण्डलीकरण के विकास की वजह से स्वास्थ्य सेवाओं का भी विकास हुआ। फिर भी अभी जनसाधारण में स्वास्थ्य की परिस्थिति अभी भी संतोशजनक नहीं हैं।

आज गॉवों में शिक्षा के प्रचार प्रसार से ग्रामीण लोगों में अन्धविश्वास कम हुए हैं। सरकारी योजनाओं के प्रचार प्रसार का भी सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है लेकिन अभी भी इस दिशा में उचित प्रगति नहीं हो पाई है। आज चिन्ता का विषय

स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता के अलावा दिन प्रतिदिन लोगों में बढ़ रहे नये-नये रोग व बीमारी हैं। रोगोपचार पद्धतियों एवं तकनीकियों में निरन्तर विकास के बावजूद इन रोगों पर नियत्रंण नहीं हो पा रहा है।

सन्दर्भ

१. चौधरी, एस०के०, 'मोयोपिक डेवलपमेन्ट एण्ड कल्चरल लेन्स', इण्टर इण्डिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १६६३

२. अलेक्जेन्डर, के०सी० एवं के०पी० कुमारन, 'कल्चरल एण्ड डेवलपमेन्ट; कल्चरल पैटर्नस इन एरिया ऑफ अनइवेन डेवलपमेन्ट', सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १६६२।

३. सच्चिदानन्द, 'सस्टेनेबल डेवलपमेन्ट एण्ड दा क्वालिटी ऑफ लाइफ इन इण्डिया' में ए०के० लाल, (सम्प०) अदर बैंकवर्ड क्लासेज एण्ड सोशल चेन्ज, ऐशेज इन ऑनर ऑफ डॉ० बिन्देश्वरी पाठक, कन्सेप्ट पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली २००३

४. श्रीवास्तव, सुखपाल, 'सामुदायिक स्वास्थ्य में पंचायती राज का कामकाज', वोल्यूम ५४, अंक १०, कुरूक्षेत्र २००८, पृ० १५-१६

५. कटारिया, सुरेन्द्र, 'गॉवों में स्वास्थ्य सुविधाओं का मूल्यांकन', कुरूक्षेत्र, २००८ वोल्यूम.५४, अंक १२, पृ० १०-१२

६. चौरसिया, मुकेश, 'ग्रामीण विकास में स्वास्थ्य सेवाओं कामहत्व' वोल्यूम ५४, अंक १२, कुरूक्षेत्र, २००८, पृ० २१-२५

७. दुबे, एस० सी०, 'इण्डिया चेन्जिंग विलेजेज', राउटलेज एण्ड केगन पॉल, लन्दन १६५८

८. यादव, विजय कुमार, 'भारत में ग्रामीण स्वास्थ्य परिदृश्य' वोल्यूम ५४, अंक १२, कुरूक्षेत्र, २००८, पृ० ७-६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 1, जनवरी-जून 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

दहेज प्रथा का वर्तमान स्वरूप- एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डा० अन्जू देवी**

भारतीय समाज में दहेज ऐसी भयंकर समस्या है जिसके परिणामस्वरूप घरेलू हिंसा, आत्महत्या, ऋणग्रस्तता, पारिवारिक तनाव आदि समस्याएं ही उत्पन्न नहीं हो रहीं अपितु वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक विघटन के एक अतिशय प्रभावी कारक के रूप में एक चुनौती बनकर समाज एवं शासन के समक्ष खड़ा है। वैधानिक प्रावधान एवं प्रयास भी इसकी विकरालता के समक्ष असफल सिद्ध हो रहे हैं। प्रस्तुत आलेख दहेज की इसी समस्या के कतिपय आयामों को प्रकाशित करने का एक प्रयास रहा है।

हिन्दू विवाह से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं मे से दहेज एक भीषण समस्या है। दहेज प्रथा भारतीय समाज पर एक बहुत बडा कलंक है। हमारा समाज नैतिक रूप से खोखला और आर्थिक रूप से अपंग कर देने वाली कुप्रथाओं में दहेज प्रथा की जितनी भी निन्दा की जाए वो कम है"।[1]

दहेज प्रथा एक ऐसी घातक जघन्य प्रथा है जिसने हमारे समाज के मजबूत ढाँचें को भी लड़खड़ा दिया है और हमारी सामाजिक व्यवस्था की गाड़ी की धुरी मानों तड़तड़ा कर विखण्डित हो जाना चाहती है। दहेज की इस 'डायन' ने समाज में भाई और बहन के बीच द्वेष की दीवार खड़ी की है, पिता और पुत्री के बीच घृणा की चिंगारी सुलगाई है, पति और पत्नी के पावन सम्बन्धों में अनाचार एवं स्वार्थ का विष घोला है और क्या नही किया इस पापिन दहेज प्रथा ने? इसी के कारण समाज में पुत्री पिता पर भार है। भाई बहन से लाचार है। पति को पत्नी से नही धन से प्यार है। यह सब इस कुल कलंकिनी दहेज प्रथा के ही दुष्परिणाम हैं। इस दहेज बाघिन के शिकार बनकर समाज में कितने ही धनवान भिखारी बन गये।

सामान्यतः दहेज उस धन या सम्पत्ति को कहते है जो विवाह के समय कन्या पक्ष द्वारा वर पक्ष को दिया जाता है। वेब्बस्टर शब्द कोश के अनुसार "दहेज वह धन, वस्तुएँ अथवा सम्पत्ति है जो एक स्त्री विवाह के समय अपने पति के लिए लाती है।"[2]

दहेज एक सामाजिक बुराई है : देवी, माँ, सहचारी और प्राण के रूप में प्रतिष्ठित नारी आज भी समाज में उत्पीड़न का शिकार है। उसकी करूणा, दया, प्रेम ,त्याग और मातृत्व को आज भी उसे दहेज हत्या करके चुकाया जा रहा है। यूँ तो लक्ष्मी रूप नारी से ही तमाम प्रकार के अत्याचार होते हैं, किन्तु उसमें सबसे बुरा दहेज उत्पीड़न है तथाकथित सभ्य समाज में दहेज निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है जिसके कारण आज कन्या का जन्म अभिशाप माना जाने लगा है। लिंग असमानता शोषण और अनेकों सामाजिक बन्धनों और अपात्रताओं से त्रस्त नारी की वेदना को दहेज प्रथा ने निरन्तर बढ़ाया ही है।

इस सम्बन्ध में महादेवी वर्मा ने ठीक ही लिखा है "मै नीर भरी, दुख की बदली।"[3] इस प्रकार दहेज प्रथा एक सामाजिक कोढ़ है जिसका प्रभाव सर्वव्यापी है इसलिए इस कुप्रथा को रोकना ही चाहिए। जिससे दहेज हत्यायें और विवाह-विच्छेद रूके और पारिवारिक विघटन न हो।

दहेज का कलंक धोना ही चाहिए क्योकि वर्तमान समाज में लोग इससे ग्रसित हैं।"[4] दहेज के विरोध में समाज के सभी अंगों ने आवाज बुलन्द की हैं। सुधारकों ने प्लेटफार्मो, पत्र-पत्रिकाओं द्वारा दहेज की तीव्र निन्दा की है। अब सरकार को भी दहेज विरोधी कानून बनाने को सजग होना पड़ा। जिसके परिणाम स्वरूप दहेज लेना और देना केवल सामाजिक कुरीति न रहकर जुर्म भी बनने जा रहा है।"[5] यूँ तो दहेज विरोधी कानून भारत में कई वर्ष से प्रचलित है पर उनका स्वरूप कागजी मात्र है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर में स्थित लाल बंगला, हरजेन्दर, जे० के० कालोनी, के० डी० ए० कालोनी, श्यामनगर के आस-पास के क्षेत्रों में दैव निदर्शन विधि द्वारा ४०० परिवारों का चयन करके यह देखने का प्रयास किया गया कि हिन्दू समाज में दहेज की समस्या किस तरह फैल रही है। सूचनादाताओं से साक्षात्कार अनुसूची के द्वारा सूचनाओं को संकालित किया गया।

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य "हिन्दू समाज में दहेज की समस्या" का अध्ययन करना है। प्रत्येक भारतवासी इससे दुखी है। क्योंकि कोई विरला ही ऐसा होगा जिसके घर में कन्या न हो। इतना होते हुए भी आश्चर्य है कि यह कुप्रथा कम होने की अपेक्षा दिन पर दिन अधिक रूप से बढ़ती ही जा रही है। यदि चक्र इसी प्रकार चलता रहा तो हिन्दू जाति का भारी

❑ अस्थायी प्रवक्ता पं०आर०एन०के०एल० शुक्ला, डिग्री कालेज, नानकारी, आई०आई०टी०, कानपुर (उ०प्र०)

अहित होगा। ''दहेज आर्थिक रूप से एक शैतानी चक्र है'' जिसमें फंसा हुआ हमारा समाज दिन पर दिन निर्धन, अस्थिर और अव्यवस्थित होता है। सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से जनता और सरकार का समान रूप से कर्तव्य है कि इस कुप्रथा के विरूद्ध जनमत तैयार करें।

परिवार में लड़कियों की अधिक संख्या होने की चिन्ता : नवीन युग में मध्यम परिवार में अधिक लड़कियों की संख्या माता-पिता को चिंतित करती हैं क्योंकि लड़कियों को पढ़ाना लिखाना तथा साथ ही उनकी शादी के लिए दहेज इकट्ठा करना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि लड़की पढ़ी-लिखी होने के साथ साथ दहेज का होना जरूरी होता है क्योंकि दहेज एक प्रथा है जिसके न होने पर शादियाँ तक रूक जाती हैं तथा साथ ही साथ जिनके परिवार में खुशियां होती हैं वो धन से सम्पन्न होते हैं पैसे की कमी नही होती है ऐसे लोगों को परिवार में लड़कियों की अधिक संख्या होने पर कोई चिन्ता नही रहती है। जिन परिवारों में धन की कमी होती है उन परिवारों में लड़कियों की अधिक संख्या चिन्ता का कारण बन जाती है। इस सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार सारणी सं० १ में प्रर्दशित किये गये है-

सारणी संख्या-१

लड़कियों की अधिक संख्या होना चिन्ता का विषय

विचार	सूचनादाता	प्रतिशत
हाँ	३१६	७९
नही	०८४	२१
योग	४००	१००

सारणी संख्या १ में उत्तरदाताओं के विचारों से प्राप्त आंकड़ों के सांख्यकीय विश्लेषण से पाया गया कि ७९ प्रतिशत जन समूह का कहना है कि परिवार में लड़कियो की संख्या अधिक होना प्रायः उन्हें चिन्तित किये रहता है और २१ प्रतिशत जनसमूह का कहना है कि परिवार में लड़कियों की संख्या अधिक होना उन्हें चिन्तित नही किये रहता है।

लड़कियों की शिक्षा से अधिक उनके दहेज जुटाने का प्रयास : आज भी अपने देश में दहेज प्रथा के कारण बेटी का जन्म अभिशाप मानते हैं। क्योकि दहेज प्रथा ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि अब के समाज में लड़की चाहे जितनी पढ़ी लिखी क्यों न हो जब तक लड़के वालों को उनकी मनमानी धनराशि न मिले तो वह विवाह नही करते हैं। ऐसी स्थिति में कई माता पिता को विवश होकर अपनी लड़की को शिक्षित करने के बजाय उनकी शादी के लिए दहेज जुटाना अच्छा समझते हैं। लेकिन जहाँ पर पढ़े लिखे समाज तथा ऊँचे घराने के लोग होते हैं वह अपनी लड़कियों को उसकी इच्छानुसार तक पढ़ाते हैं। उनकी शिक्षा पर व्यय करना आवश्यक समझते हैं। इस संबंध में सूचनादाताओं के विचार तालिका संख्या-२ में देख सकते है।

सारणी संख्या-२

लड़कियों की शिक्षा से अधिक आवश्यक दहेज जुटाना

विचार	सूचनादाता	प्रतिशत
हाँ	०८३	२०.७५
नही	३१४	७८.२५
योग	४००	१००

उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकडों से पाया गया कि २०.७५ प्रतिशत जनसमूह का मत है कि वे अपनी लड़कियों की शिक्षा पर अनावश्यक व्यय से अच्छा उनकी शादी के लिए दहेज जुटाना है और ७८.२५ प्रतिशत जनसमूह का मत है कि वे अपनी लड़कियों को उच्च्व शिक्षा देना चाहते हैं न कि उनकी शादी के लिए दहेज जुटाना चाहते हैं इस प्रकार अधिकांश सूचनादाता अपनी लड़कियों के लिए दहेज जुटाने की तुलना में उन्हें शिक्षा देना पसंद करते हैं।

दहेज विरोधी परिवार के सूचनदाताओं से पूछा किया कि दहेज के संबंध में उनके परिवार के विचार क्या हैं। वे दहेज के पक्षधर हैं अथवा विरोधी इस संबंध में सूचनादाताओं के विचार सारणी संख्या-३ में प्रदर्शित किये गये है।

सारणी संख्या-३

दहेज विरोध पर परिवार के विचार

विचार	सूचनादाता	प्रतिशत
हाँ	३३३	८३.२५
नही	०६७	१६.७५
योग	४००	१००

उत्तरदाताओं के विचार से स्पष्ट हुआ कि अधिकांशतः ८३.२५ प्रतिशत जनसमूह का कहना है कि उनका परिवार दहेज का सख्त विरोधी है और १६.७५ प्रतिशत जनसमूह का कहना है कि उनका परिवार दहेज विरोधी नही है।

अर्न्तजातीय विवाह के संबंध में विचार : इस नवीन युग में अब अपनी ही जाति मे शादी करना कोई आवश्यक नहीं रह गया है। वधू पक्ष के लोग एक अच्छा पढ़ा-लिखा लड़का चाहते है लेकिन वर पक्ष के लोग थोड़ा बहुत पढ़ क्या लेते हैं वो यह सोचते हैं कि उन्हें अच्छा खासा दहेज मिल जायेगा। इसलिए अधिकांश लोग अब अर्न्तजातीय विवाह को ठीक मानते हैं कि उनके मन के अनुसार लड़का मिल जाता है और इतना ज्यादा दहेज भी नहीं देना पड़ता है।

सारणी संख्या-४
अर्न्तजातीय विवाह के प्रति विचार

विचार	सूचनादाता	प्रतिशत
विरोधी हैं	२८७	७१.७५
विरोधी नही	११३	२८.२५
योग	४००	१००

उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकडों से पाया गया है कि ७१.७५ प्रतिशत अर्थात् अधिकांश जनसमूह का मत है कि अर्न्तजातीय विवाह का विरोधी है और २८.२५ प्रतिशत जन समूह का मत है कि मैं अर्न्तजातीय विवाह का विरोधी नही हूँ।

विवाह के पश्चात् दहेज लड़कियो के सुख का आधारः दहेज के कुचक्र में फंसे वर्तमान माज में ऐसा सोचा जाता है कि दहेज देने से विवाह के पश्चात् लड़कियों को ससुराल में सुख मिलेगा और यदि वर पक्ष की मांग के अनुसार दहेज नहीं दिया तो उन्हें सुख नहीं मिलेगा इस संबंध में उत्तरदाताओं के विचार सारणी-०५ में प्रदर्शित किये गये हैं।

सारणी संख्या-५
विवाह के पश्चात दहेज लड़कियों के सुख का आधार

विचार	सूचनादाता	प्रतिशत
हाँ	२४६	६१.५
नही	१५४	३८.५
योग	४००	१००

सारणी संख्या ५ में उत्तरदाताओं के विचारों के विश्लेषण से पाया गया है कि ६१.५ प्रतिशत अर्थात् अधिकांश जन समूह का मत है कि विवाह के पश्चात लड़कियों का सुख उनके भाग्य एवं पर्याप्त दहेज पर निर्भर है और ३८.५ प्रतिशत जनसमूह का मत है कि विवाह के पश्चात् लड़कियों का सुख उनके भाग्य एवं पर्याप्त दहेज पर निर्भर नही है।

सन्तानों के आत्मनिर्भर होने के बाद विवाहः समाज में बहुत से ऐसे लोग है जो यही चाहते हैं कि उनकी लड़की के लिए कोई ऐसा लड़का मिले जो आत्मनिर्भर हो जिससे वह अपने परिवार को अच्छी तरह चला सके और उसकी बेटी को खुश रख सके। इसलिए आत्मनिर्भर होने के बाद विवाह करने की दिशा में लोगों का सुझाव हो रहा है। इस संबंध में सूचनादाताओं के विचार जानने का प्रयास किया गया जो सारणी सं. ०६ में प्रदर्शित किये गये हैं।

सारणी संख्या-६
आत्मनिर्भर होने के बाद विवाह का विचार

विचार	सूचनादाता	प्रतिशत
हाँ	२८६	७१.५
नही	११४	२८.५
योग	४००	१००

उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकडों के सांख्यकीय विश्लेषण से पाया गया है कि ७१.५ प्रतिशत के विशाल जन समूह का मत है कि वे सन्तानों के आत्मनिर्भर होने के बाद ही विवाह करना चाहते हैं और २८.५ प्रतिशत का मत है कि वे सन्तानों के विवाह के लिए आत्मनिर्भर होने की प्रतीक्षा नहीं करना चाहते।

प्रस्तुत अध्ययन में उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट होता है ७९ प्रतिशत जनसमूह का कहना है कि परिवार में लड़कियों की संख्या अधिक होना प्रायः उन्हें चिन्तित किये रहती है और २१ प्रतिशत जनसमूह का कहना है कि परिवार में लड़कियों की संख्या अधिक होना उन्हें चिन्तत नही रहता। २०.७५ प्रतिशत जनसमूह अपनी लड़कियों की शिक्षा पर अनावश्यक व्यय से अच्छा उनकी शादी के लिए दहेज जुटाना अच्छा समझते हैं और ७८.२५ प्रतिशत जनसमूह अपनी लड़कियों को उच्च शिक्षा देना चाहते हैं, न कि उनकी शादी के लिए दहेज जुटाना चाहते। ८३.२५ प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि उनका परिवार दहेज का सख्त विरोधी है और १६.७५ प्रतिशत का कहना है कि उनका परिवार दहेज का विरोधी नही है। ७१.७५ प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि वे अर्न्तजातीय विवाह के विरोधी हैं और २८.२५ प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि वे अर्न्तजातीय विवाह के विरोधी नही हैं। ६१.५ प्रतिशत सूचनादाता सही मानते हैं कि विवाह के पश्चात् दहेज लड़कियों के सुख का आधार है जबकि ३८.५ प्रतिशत सूचनादाता दहेज लड़कियों का सुख का आधार नही मानते हैं। ७१.५ प्रतिशत सूचनादाताओं का मत है कि वे सन्तानों के आत्मनिर्भर होने के बाद ही विवाह करना चाहते है और २८.५ प्रतिशत सूचनादाता विवाह के लिए आत्मनिर्भर होना आवश्यक नहीं समझते।

सन्दर्भ

१ आचार्य पं० श्री राम शर्मा, 'विवाहोन्माद, समस्या और समाधान', अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, सम्पादक-ब्रह्मवर्चस, १९९९ पृ. ३.४३

२ New Webester"s Dictionary of the English Language, Bharat Prakashan Mandir, Meerut, 1993. pp. 299

३ शर्मा संत नरायण (संपा.) 'काव्यांजलि- महादेवी वर्मा के सांध्यगीत', इलाहाबाद, २००१-०२, पृ. १५.

४ आचार्य पं० राम शर्मा आचार्य, पूर्वोक्त, पृ. ३.७

५ आचार्य पं० राम शर्मा, 'दहेज खोरी एक घृणित पाप है', अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा, १९९९, पृ. ३.८

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: ध्यारा जनजाति संस्कृति और समाज
लेखक	: डॉ. मोहम्मद रिज़वान सहायक प्रवक्ता वि.बी.टी.सी. वेलफेयर एसोसिएशन (उ.प्र.)
प्रकाशक	: हस्ताक्षर प्रकाशन, दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	: २०१५
मूल्य	: रू. ११६/-
पृ. सं.	: २४०

उपर्युक्त पुस्तक सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में गुणात्मक एवं संख्यात्मक शोध का एक उपयुक्त उदाहरण है। कुल ६७ सारणियों से सुसज्जित यह पुस्तक प्रस्तावना एवं उपसंहार सहित आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में ध्यारा जनजाति के इतिहास, इसकी सांस्कृतिक विशेषताओं, इसका जनसंख्यात्मक विश्लेषण, शारीरिक लक्षण, इनकी भाषा/बोली इत्यादि का उदाहरण है। दूसरे अध्याय में विषय से संबंधित अब तक किये गये शोध कार्य, अध्ययन का महत्व एवं उद्देश्य, पूर्व कल्पनायें, शोध विधि तथा लेखक द्वारा अनुभूत कठिनाइयों, विशेषकर तथ्य संकलन करते समय, की चर्चा की गई है।

पुस्तक के तृतीय, चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ अध्याय सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इन अध्यायों में लेखक ने सम्पूर्ण संकलित तथ्यों का विवरण एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है। तृतीय अध्याय में ध्यारा समुदाय की पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की चर्चा की गई है। इसके अंतर्गत इनके परिवार, गोत्र एवं नातेदारी व्यवस्था, महिलाओं की स्थिति, पर्दा प्रथा, शिक्षा, परिवार नियोजन, प्रौढ़ शिक्षा, स्वास्थ्य एवं बीमारियां, विवाह के प्रकार एवं वैवाहिक अनुष्ठान, बाल विवाह, विवाह पूर्व एवं अतिरिक्त यौन संबंध, नशाखोरी, वैश्यावृत्ति, बाल अपराध आदि पर लेखक ने प्रकाश डाला है। इस अध्याय में लेखक ने उन परिस्थितियों एवं कारणों की चर्चा भी की है जिनके फलस्वरूप स्वतंत्रतापूर्व भारत में ध्यारा जनजाति एक 'अपराध-प्रवृति' वाले समुदाय के रूप में मानी जाती रही तथा अंग्रेज सरकार ने इन पर अनेक पाबंदियां भी लगा रखी थीं।

चतुर्थ अध्याय में ध्यारा समुदाय की आर्थिक स्थिति एवं संरचना तथा आवासीय स्थिति की चर्चा की गयी है। यहां यह भी दर्शाया गया है कि किस प्रकार ध्यारा समुदाय पराम्परागत व्यवस्था को जारी रखते हुए शिक्षा, आधुनिकीकरण एवं नगरीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप आर्थिक प्रगति एवं परिवर्तन की ओर अग्रसर है।

पांचवे अध्याय में ध्यारा समुदाय की राजनीतिक व्यवस्था की चर्चा की गई है। इस अध्याय की महत्वपूर्ण बात यह है कि ध्यारा समुदाय में आज भी आदिम कानून व्यवस्था जैसी विशेषताएं विद्यमान हैं।

छठा अध्याय अति महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में ध्यारा समुदाय के आत्माओं पर विश्वास, उनकी धर्म, जादू-टोने, जीवन चक्र से संबंधित अंधविश्वासों इत्यादि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

सातवें अध्याय में राज्य तथा केन्द्र सरकार द्वारा चलायी गई कल्याणकारी योजनाओं की चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त उन योजनाओं के प्रभाव पर भी प्रकाश डाला गया है।

अंततः उपसंहार में शोध कार्य की संक्षिप्त व्याख्या के अतिरिक्त ध्यारा समुदाय के उत्थान के लिए सुझाव दिये गये हैं। यह पुस्तक न केवल समाजशास्त्रियों तथा मानवशास्त्रियों के लिए वरन् जनजातीय विकास हेतु नीति निर्धारकों के लिए भी अतिशय उपयुक्त है।

समीक्षक

प्रोफेसर विजय एस. सहाय

एमेरिटस फैलो (यू.जी.सी.)

मानवशास्त्र विभाग

रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

पूर्व विभागाध्यक्ष मानवशास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ.प्र.)

डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध पुरस्कार

डॉ. राकेश कुमार की स्मृति को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए '**समाज विज्ञान विकास संस्थान**', **बरेली** ने यह निर्णय लिया था कि शोध अध्येताओं को अच्छे शोध-लेख लिखने के लिए प्रेरित करने हेतु शोध पत्रिका "**राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा**" में शोध अध्येताओं द्वारा लिखे गये वर्ष के दोनों अंकों के शोध पत्रों को विशेषज्ञों के द्वारा मूल्यांकित कराकर सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र लिखने वाले शोध अध्येता को '**डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध प्रशस्ति पत्र**' तथा रु. 2100/- मूल्य की शोध सहायक पुस्तकें पुरस्कार स्वरूप संस्थान द्वारा प्रदान की जायेंगी।

पत्रिका के वर्ष 16 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2014 के अंक में संस्थान के उपर्युक्त निर्णय को प्रकाशित किया गया था।

संस्थान के इस निर्णय के अनुसार वर्ष 2015 के दोनों अंकों में शोध अध्येताओं द्वारा लिखे गये शोध पत्रों का विद्वानों द्वारा मूल्यांकन कराकर वर्ष 2015 के सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र लिखने वाले शोध अध्येता की घोषणा की जाती है।

श्री दीपक सिंह, शोध अध्येता इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर, जनपद चमोली (उत्तराखण्ड) को उनके शोध पत्र "बदरी-केदार तीर्थ यात्रा आर्थिक प्रभाव के रूप में चट्टियों से नगरीकरण-एक ऐतिहासिक अध्ययन" को 2015 का डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध पुरस्कार प्रदान किया जाता है तथा उन्हें एक प्रशस्ति पत्र तथा रु. 2100/- मूल्य की पुस्तकें प्रदान की जाती हैं।

संस्थान के इस कार्य में प्रोफेसर एस.डी. सिंह सेवानिवृत्त प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, महात्मागांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.), प्रोफेसर जयवीर सिंह धनकड़ विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा) तथा प्रोफेसर. सी.पी. सिंह, अध्यक्ष समाजकार्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) ने विशेष सहायता प्रदान की है। संस्थान इन विद्वानों का विशेष रूप से आभारी है।

डॉ. जे.एस. राठौर
सचिव

आजीवन सदस्यों की सूची

(गतांक से आगे)

७११. डॉ. नलिनी राजपूत, अतिथि प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, बरेली कालेज, बरेली (उ.प्र.)
७१२. डॉ. अनुपमा मिश्रा, समाजशास्त्र विभाग, चित्रा डिग्री कालेज, नौवस्ता कानपुर (उ.प्र.)
७१३. श्री शचिन्द्र सिंह राठौर, शोध अध्येता भूगोल, सरदार भगत सिंह पी.जी. कालेज, रूद्रपुर, ऊधमसिंह नगर (उत्तराखण्ड)
७१४. सुश्री रूपा यादव, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, सरदार भगत सिंह पी.जी. कालेज, रूद्रपुर, ऊधमसिंह नगर (उत्तराखण्ड)
७१५. सुश्री संगीता रानी, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, सरदार भगत सिंह पी.जी. कालेज, रूद्रपुर, ऊधमसिंह नगर (उत्तराखण्ड)
७१६. सुश्री निशा बरैया, एम.फिल समाजशास्त्र, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
७१७. डॉ. सीमा अग्रवाल, एसोशिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, एस.आर.एस. गर्ल्स पी.जी. कालेज, बरेली (उ.प्र.)
७१८. डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, अध्यक्ष इतिहास विभाग, के.के. (पी.जी.) कालेज, इटावा (उ.प्र.)
७१९. डॉ. लक्ष्मी गुप्ता, असिस्टेंट प्रोफेसर, सोशल वर्क, एस.आई.टी. कालेज, सीधी (म.प्र.)
७२०. सुश्री पिंकी कुमारी, शोध अध्येत्री इतिहास, एम.डी. यूनीवर्सिटी, रोहतक (हरियाणा)
७२१. श्री आदित्य प्रताप सिंह भदौरिया, शोध अध्येता समाजशास्त्र, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
७२२. डॉ. अंजू देवी, प्रवक्ता समाजशास्त्र, आर.एन. के शुक्ला डिग्री कालेज, नानकारी निकट आई.आई.टी., कानपुर (उ.प्र.)
७२३. डॉ. सुरेन्द्र सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर अर्थशास्त्र विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय वि.वि., श्रीनगर (उत्तराखण्ड)
७२४. सुश्री ज्योति मिंज, शोध अध्येत्री इतिहास, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)
७२५. डॉ. सादिक मोहम्मद खान, शोध अध्येता स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज, देवी अहिल्या वि.वि. इन्दौर (म.प्र.)
७२६. डॉ. बाल विद्या प्रकाश, प्रवक्ता स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, केशव प्रसाद राल्डी पी.जी. कालेज, औराई, भदोही (उ.प्र.)
७२७. श्री यशवनी कुमार, प्रवक्ता समाजशास्त्र, चौधरी कलीराम महाविद्यालय, नागल, सहारनपुर (उ.प्र.)
७२८. सुश्री मोनिका यादव, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, जे.एल.एन. (पी.जी.) कालेज, एटा (उ.प्र.)
७२९. सुश्री अंकिता सिंह, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, जे.एल.एन. (पी.जी.) कालेज, एटा (उ.प्र.)
७३०. डॉ. संजीता अग्रवाल, प्रवक्ता समाजशास्त्र, आर्य महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाहजहांपुर (उ.प्र.)
७३१. श्री कमल जोशी, शोध अध्येता लोक प्रशासन, इग्नू (नई दिल्ली)
७३२. सुश्री सरिता त्रिकोटी, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, एस.एस. जे. परिसर, कुमायूं विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)
७३३. डॉ. निशा, राजनीति विज्ञान विभाग, एस.एम.जे.एन. कालेज हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
७३४. सुश्री जकिया युसुफ, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)
७३५. डॉ. सीमा रानी, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, राजकीय कन्या महाविद्यालय, कोटा सहारनपुर (उ.प्र.)
७३६. श्री राकेश चन्द्र शाह, अतिथि व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, पोखरी (उत्तराखण्ड)
७३७. सुश्री प्रितिमा गुप्ता, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, डी.डी.यू. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)
७३८. श्री अमित कुमार शर्मा, शोध अध्येता समाजशास्त्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ.प्र.)
७३९. श्री दिनेश कुमार चौधरी, अतिथि प्रवक्ता समाजशास्त्र, जे.एन. व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
७४०. श्री आनंदी लाल कुर्मी, शोध अध्येता समाजशास्त्र, डॉ. हरिसिंह गौर सागर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
७४१. श्रीमती सरस्वती जोशी, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

इस अंक में

१. तीर्थ चिन्तन में देवत्व की भावना : तीर्थों का दैवीकरण १
प्रोफेसर श्यामधर सिंह

२. प्रोफेसर ए.के. सेन का आर्थिक चिंतन और उसकी भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए प्रासंगिकता १४
डॉ० ओ.पी. मिश्र

३. पूर्व मध्यकालीन भारत में कृषक संबंध (६५०-१२०० ई.) १८
डॉ० आशा कुमारी

४. निसंतान महिलायें और सामाजिक सामंजस्य २८
डॉ० ज़किया रफत

५. लिंग भेद व लिंग समानता : सामाजिक-दार्शनिक आयाम ३३
डॉ० (श्रीमती) सीमा श्रीवास्तव

६. जनसंचार एवं सूचना तकनीकी के साधन तथा ग्रामीण विकास ३६
डॉ. संजय जोशी

७. महाविद्यालय के छात्रों में परिसर में लगाव एवं अलगाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ४३
डॉ. उमाचरण

८. भारतीय राष्ट्रीय-आन्दोलन में रोहतक (हरियाणा) का योगदान ४६
डॉ. मीनाक्षी

९. विकेन्द्रित औद्योगिक नियोजन का क्षेत्रीय विकास में योगदान ५२
डॉ. सुरेन्द्र सिंह

१०. १८५७ ई. की चतरा की लड़ाई और विश्वनाथ शाहदेव ५८
डॉ. अशोक कुमार सिंह

११. ग्रामीण कुमाऊँ की पिछड़ी जातियों में आधुनिकीकरण ६६
डॉ. मन्जू पनेरू

१२. महिलाओं की प्रस्थिति एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ७१
कु. सरिता
डॉ. रेनू प्रकाश

१३. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजनाः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ७६
राकेश कुमार तिवारी

१४. उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें ८६
गजपाल रामराज

१५. चिरईगाँव क्षेत्र में समेकित बाल विकास सेवा योजना के अन्तर्गत टीकाकरण का अध्ययन ९०
मीनाक्षी कुशवाहा
डॉ. कल्पना गुप्ता

१६. आधुनिक फैशन : सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन ९४
डॉ. संजीता अग्रवाल

१७. ''वर्णाश्रम व्यवस्थाः प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं परम्परा'' ९९
डॉ. कुं. लीला कन्याल

१८. पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारीः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन १०५
डॉ. दिनेश कुमार चौधरी

१९. **ग्रामीण परिवार एवं वृद्धजन : एक समाजशास्त्रीय विवेचन** १०८
सुचिता पाण्डेय

२०. **समाज में अंगदान की भूमिका** ११२
आदित्य प्रताप सिंह भदौरिया

२१. **वंचित वर्ग के युवाओं के अंबेडकरवादी चिंतन पर आधुनिकीकरण का प्रभाव** ११६
डॉ. सादिक मोहम्मद खान

२२. **पंचायती राज व्यवस्था एवं भोटिया महिलाऐं- प्रस्थिति एवं भूमिका** १२२
दीप्ति

२३. **आधुनिक हरियाणा में महिला विकासः एक परिदृश्य** १२७
मन्जू बाला

२४. **उत्तराखण्ड में राजस्व पुलिस एवं नागरिक पुलिस क्षेत्रों में अपराधों का तुलनात्मक अध्ययन** १२९
कमल जोशी

२५. **ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं जीवन शैली पर नगरीय प्रभाव** १३६
अनीता बिष्ट

२६. **उत्तर भारत में आंतरिक व्यापारिक केन्द्र एवम् मार्ग : एक अध्ययन** १४०
पिंकी कुमारी

२७. **मथुरा जनपद की मुद्राएँ एवं प्रतीक चिन्ह** १४६
ज्योति मिंज

२८. **भारत में भाषाई संरचना : एक अध्ययन** १४९
राकेश चन्द्र शाह

२९. **महिला स्वास्थ्य में आशा कार्यकत्रियों की भूमिका** १५१
प्रितिमा गुप्ता

३०. **आधुनिक परिवेश में हिन्दू महिलाओं के बदलते दृष्टिकोण** १५५
मोनिका

३१. **पंचायती राज नेतृत्व में महिलाओं की सहभागिता** १५८
अंकिता सिंह

३२. **भारतीय ग्रामीण स्वास्थ्य व्यवस्था में परिवर्तन एवं विकास : एक समीक्षात्मक मूल्यांकन** १६२
अमित कुमार शर्मा

३३. **दहेज प्रथा का वर्तमान स्वरूप- एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** १६६
डॉ. अन्जू देवी

३४. **पुस्तक समीक्षा** १६९
समीक्षक
प्रोफेसर विजय एस. सहाय

३५. **डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध पुरस्कार** १७०